प्रतिदिन का भारतीय संसाधित आहार

भारत—देश और लोग

प्रतिदिन का भारतीय संसाधित आहार

के.टी. अच्चया

अनुवाद
वीरेन्द्र मुंशी

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

विषय-सूची

प्रस्तावना

(मूल अंग्रेजी पुस्तक के पहले व दूसरे संस्करण से)

संसाधित आहारों पर यह पुस्तक पठनीय भाषा में उनके रसायन, तकनीकी और पौष्टिकता की रूपरेखा प्रस्तुत करती है। संसाधित रूप में वर्णित आहारों का विस्तार बहुत व्यापक है। चावल, गेहूं और दाल जैसे मौलिक अनाज भी यांत्रिक संसाधन प्रक्रिया से गुजर कर ही बाजार में पहुंचते हैं। आज कई महानगरों और शहरों में वितरित होने वाला दूध परिष्कृत तकनीकी उत्पाद है। चाय या कॉफी के हर पैकेट के पीछे कुशलतापूर्वक नियंत्रित संसाधन क्रिया है। बाजार से खरीदे गए ब्रेड, बिस्कुट, जैम, स्कवैश, अचार, वनस्पति, चाकलेट और हल्के पेय जैसे उत्पाद हमारे लिए इस बात का उदाहरण हैं कि संसाधित आहार क्या हैं, किंतु बहुत कम लोग जानते हैं कि उनको बनाने, जीवाणु रहित करने और पैकेजिंग में कैसे आकर्षक रासायनिक, जीव-वैज्ञानिक और यांत्रिक सिद्धांतों का उपयोग किया जाता है। यहां तक कि अचार, मुरब्बे, पापड़, इडली और गुलाब जामुन जैसे लंबे समय से घर में बनाए जाने वाले उत्पाद भी हाल के वर्षों में विवेचनात्मक वैज्ञानिक अध्ययन का विषय बने हैं जिससे अब व्यस्त गृहिणी की सुविधा के लिए तकनीकी उत्पाद व्यावसायिक रूप से उपलब्ध होने लगे हैं।

इतिहास या भूगोल के पुट के साथ भारतीय आहार संसाधन का यह विज्ञान ही इस पुस्तक का विषय है। विदेशागत चीज और मदिराओं के प्रति यदा-कदा विचलन उनके विज्ञान या तकनीकी के अंतर्निहित सम्मोहन के कारण उचित है। पुस्तक के नवीन संस्करण को पूरी तरह संशोधित कर दिया गया है तथा जहां कहीं भी मेरे सामने कोई तथ्यात्मक भूलें दिखाई दीं, उन्हें भी सुधार दिया गया है।

मैसूर
1986

के. टी. अच्चया

1. आधार

अन्न और दालें

चावल

क्या कोई ऐसा भी भारतीय है, जो क्षुधावर्धक सुगंध, बर्फ से सफेद रूप-रंग, फलों के गूदे से कोमल स्वाद और चबाने में नर्म बनावट वाले उबले चावलों की थाली देखकर प्रसन्नता से भर न उठे। यहां तक कि परंपरागत प्रकारों के नाम आह्वान-सा करते हैं। बास (गंध) और मती से बासमती, दिल पसंद यानी दिल को अच्छा लगने वाला, हिम-श्वेत हंसों का राजा हंसराज, बंगाल का दूध-सा सफेद दूधकलमा और कर्नाटक का छोटे दानों वाला सन्नारसना चावल। यदाकदा नई किस्मों के नाम भी काव्यात्मक रखे जाते हैं—जया, पद्मा, सोना, मधु—फिर भी हमारे पास सीओ-25, एमटीयू-15 और टी-136 जैसे गद्यात्मक किंतु तकनीकी रूप से सुविधाजनक नाम भी हैं।

आकार, प्रकार, गंध और पकाने के ढंग को लेकर सुस्पष्ट क्षेत्रीय प्राथमिकताएं हैं। मोटे तौर पर चावल का वर्गीकरण बढ़िया, मध्यम और मोटा (घटिया) के रूप में किया जाता है। उत्तर में सुगंधित, लंबे दानों वाले प्रकारों को रोज के खाने में भी अधिक पंसद किया जाता है। दक्षिण में इनका उपयोग बिरयानी, पुलाव या घी वाले चावल बनाने में किया जाता है और रोजमर्रा के उपयोग में सामान्य रूप से मोटे प्रकार के चावलों को प्राथमिकता दी जाती है। उसना या सेला, चावल, जो रंग में थोड़ा पीलापन लिए होता है, पूर्वी भारत में लोकप्रिय है, जबकि थोड़ा अधिक उबले हुए ढंग का उसना चावल धुर दक्षिण में लोकप्रिय है। भारत में हर कहीं ऐसा चावल, जो कम से कम एक साल पुराना हो, ज्यादा पसंद किया जाता है क्योंकि यह एक-सा गाढ़ापन लिए पकता है और हर दाना अलग-अलग रहता है। यह सुदूर पूर्व के देशों के विपरीत है, जहां पकाने के बाद एक अर्ध-लसदार पुंज वांछित होता है।

कुटाई और परिष्करण

धान का एक मोटा बाहरी भूरा छिलका होता है जो उसके वजन का लगभग एक चौथाई होता है। इसके नीचे एक महीन रेशमी, हल्का भूरा आवरण-स्तर होता है, जो निकाल लिए जाने पर भूसी या चोकर कहलाता है, पारंपरिक रूप से इसे थावडु या गुरा कहते हैं, जो मवेशियों का भोजन है। हर दाने के एक सिरे पर एक बीजांकुर होता है, एक कठोर, छोटी-सी सफेद कणिका, जिसमें भ्रूण होता है, जिससे चावल का वह दाना बोने पर पौधा निकलता है। यदि मूंगफली के किसी दाने को दो भागों में विभाजित किया जाए, तो इसी तरह का बीजांकुर सरलता से देखा जा सकता है।

धान की चक्की (मिल) में कुटाई इसलिए की जाती है कि पहले मोटा छिलका फटकर उतर जाए और ऐसा करते हुए, थोड़ी या सारी भूसी और बीजांकुर भी उतर आता है। ऐसा व्यापक परिष्करण बर्फ जैसा सफेद चावल देता है, जिसकी उपभोक्ता में मांग है। फिर भी विटामिन और प्रोटीन जैसे अनेक पोषक तत्व भूसे और बीजांकुर में विद्यमान होते हैं जो परिष्कृत चावल खाने वाले को नहीं मिल पाते। इस पर बाद में चर्चा की जाएगी।

चावल की कुटाई एक पुरातन पारंपरिक प्रक्रिया है, जो कई प्रकार से की जाती है। इनमें सबसे सरल तरीका है कि धान को एक लकड़ी या पत्थर की ओखली या चक्की में रखा जाता है और फिर लकड़ी के एक मजबूत मूसल से हाथों या एक पांव से कूटा जाता है। इससे छिलका तो उतर जाता है किंतु बहुत सारा चावल भी चूरा हो जाता है। साबुत चावल को शेष से अलग करने के लिए ओसाने या फटकने की प्रक्रिया काम में लाई जाती है। कुटाई के सिद्धांत का उत्कर्ष धेनकी में पाया जाता है, जिसमें लकड़ी का एक खंभा, मध्य में धुरी के रूप में लगा होता है और जिसके एक छोर पर लकड़ी का एक छोटा मूसल लगा होता है, जो जमीन में गड़ी हुई लकड़ी की ओखली में रखे धान को ऊपर-नीचे होकर कूटता है। क्षैतिज, एक पत्थर वाले, कुटाई यंत्र (हलर) में एक खोल के भीतर दो वृत्ताकार पत्थर के बेलन घूमते हैं, जिसमें फौलाद की पत्ती लगी होती है जो धान के छिलके को तोड़ती है। पत्थर का एक खंड नालीदार होता है जिसमें पूरा धान का दाना डाला जाता है और दूसरा खंड सफेद चावल का दाना बाहर निकालता है। एक दुहरे कुटाई यंत्र में कुछ अपघर्षित छिलका बचा रहने के बाद, एक अन्य परिष्करण प्रक्रिया के द्वारा चावल के दाने निकाले जा सकते हैं, जिसमें बचे और चिपके हुए भूसे को निकालने के लिए अधिक परिष्कृत व्यवस्था की जाती है। मोटे छिलके के टुकड़े, टूटे हुए दानों और भूसी से सरलता के साथ अलग किए जा सकते हैं, जिन्हें फिर फटकने या ओसाने की क्रिया द्वारा अलग किया जा सकता है। छिलका उतारने वाले एक अन्य प्रकार के यंत्र में दो लोहे के पाट (डिस्क, तवे) होते हैं जिन पर रेगमाल और सीमेंट

का खुरदरा मिश्रण लगा होता है। ऊपर का पाट स्थिर होता है, जबकि नीचे का पाट घूमता है और ऊपर बने एक छेद (फीडर) से धान डाला जाता है, जो दोनों पाटों के बीच समायोजित अंतराल से गुजरते हुए दोनों पाटों की रगड़ से छिलका उतार देता है। बाहर निकलने वाले मिश्रण से फटकने की क्रिया द्वारा छिलका, साबुत धान, साबुत दाने, लंबे टुकड़े, छोटे टुकड़े और भूसी को अलग अलग कर लिया जाता है। खुरदरे, कांटेदार, हिलते हुए यंत्रीकृत तख्ते पर ऊपर से नीचे डालने पर साबुत चावल, धान के दानों की तुलना में अधिक सरलता से नीचे गिरते हैं और अलग से एकत्रित किए जा सकते हैं। बचे हुए धान को अगली प्रक्रिया में शामिल कर दिया जाता है। एक अन्य व्यवस्था केवल परिष्करण (पॉलिशिंग) के लिए काम में लाई जाती है। इसमें पत्थर का एक उल्टा शंकु तार की छलनी में चक्कर लगाता है, जिसमें रबर की अंगुलियां जैसी लगी होती हैं। ये दानों को रोके रखती हैं, जबकि बची हुई भूरी भूसी पर पॉलिश हो जाती है या वह सफेद हो जाती है। दानों पर चमक लाने के लिए इस प्रक्रिया के दौरान तेल या सिलखड़ी का उपयोग किया जाता है।

परंपरागत प्रक्रिया के दौरान ज्यादा दाने टूटते हैं। ये टूटे हुए दाने जो 'धारी' कहलाते हैं, बर्बाद नहीं होते बल्कि इनका विशेष प्रकार के भोजन में या जहां चावल के पिसे आटे की आवश्यकता होती है, जैसे इडली या डोसा बनाने में उपयोग किया जाता है। हर उत्पादन को अलग अलग प्राप्त करने में कठिनाई के कारण धान-संसाधन की उन्नत विधियों की खोज हुई। रबड़ के पट्टे वाले शैलर में धान को ऊपर छेद में से नहीं डाला जाता, बल्कि रबर के पट्टे के द्वारा पाटों के बीच के अंतराल में ले जाया जाता है, और अधिक उन्नत शैलर में रबर या रबर लगे बेलनों की एक जोड़ी होती है जो अलग अलग गतियों से विपरीत दिशाओं में घूमते हैं और जब उनके बीच में से धान का दाना गुजरता है, तो टूटन नगण्य होती है और उत्पादन अधिक होता है। यदि छिलका उतारने की क्रिया दो भागों में की जाए तो छिलका और चोकर को अलग अलग प्राप्त किया जा सकता है। इसमें एक नवीनतम विकास आधुनिक चावल मिल है, जिमसें धान के दाने के हर घटक को स्पष्ट रूप से अलग अलग करने के दो आवश्यक सिद्धांतों का प्रयोग किया जाता है। पहला सिद्धांत–दो सतहों के बीच अंतराल में कतरने का है, जिसमें अंतराल के आकार, दोनों सतहों के खुरदरेपन और क्रिया की गति को वांछित उद्देश्यों के अनुरूप बदला जा सकता है। यह उद्देश्य छिलका फाड़ना, छिलका कतरना, मोटा परिष्करण या बढ़िया परिष्करण, कुछ भी हो सकता है। दूसरा सिद्धांत–भार, आकार, प्रकार और प्रचुर विशिष्टताओं में अंतर के आधार पर घटकों का अलगाव जिसके लिए भार-पतन, छानना, हवा के बहाव और कंपन की क्रियाएं काम में लाई जाती हैं। सामान्यतया ये क्रियाएं एक निरंतर क्रम में आगे बढ़ती हैं। छोटी क्षमता वाली

आधुनिक चावल मिलें (चक्कियां) जो भारत भर में बिखरे हुए कामकाज के लिए अनुकूल हैं, अब देश में ही बनाई जाती हैं और जिनमें निम्नांकित इकाइयां इस क्रम में होती हैं :—(क) पूर्वमार्जक, पहले अवरोधों की एक शृंखला और फिर एक छलनी; (ख) छिलका उतारने के लिए रबर का रोल शैलर; (ग) छिलके और भूरे चावल को अलग करने वाला पृथक्कारी; (घ) भूसी उतारने का यंत्र—हलर; (च) अवरोधकों और हवा के द्वारा खींचने वाले यंत्र सहित भूसी और चावल के लिए पृथक्कारी और (छ) छलनी, जो मोटी भूसी से महीन भूसी को अलग करती है। इस प्रकार चावल के दाने का हर भाग अलग से एकत्रित कर लिया जाता है।

उसनना

धान से चावल प्राप्त करने की एक और तकनीक उसनना है, जिसमें कुछ दिनों के लिए धान को ठंडे पानी में भिगोया जाता है और फिर पानी को तब तक उबाला जाता है, जब तक कि दाना नरम न हो जाए, बाद में फिर दानों को सूखने के लिए फैला दिया जाता है। इस उपचार से छिलका आसानी से उतारने लायक हो जाता है, दाना कम भुरभुरा और अधिक लचीला हो जाता है। और मांड (स्टार्च) के श्लेषीकरण के द्वारा चावल के दाने का बाहरी भाग अधिक मजबूत हो जाता है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप बाद में धान को चक्की में डालने पर साबुत चावल का अधिक संशोधित उत्पादन प्राप्त होता है। भारत में उपजाया गया लगभग आधा चावल उसनाया जाता है और आज उसनना व्यावसायिक और उन्नत हो गया है। सीमेंट के बने द्रोणों में एक से तीन दिनों तक धान को भिगोए रखने की व्यावसायिक विधि निश्चय ही घरेलू तकनीक का उन्नत रूप है, जिसके बाद नकली छेददार पेंदे वाले धातु के बर्तनों में 10 मिनट तक उबाला जाता है, जिन पर चावल रखा होता है, जबकि उसके नीचे पानी उबलता है। व्यापक स्तर पर प्रयोग में लाई जाने वाली एक अन्य विधि में पहले एक या दो मिनट भाप दी जाती है, फिर ठंडे पानी में एक या दो दिन भिगोया जाता है, फिर पानी निथारकर कुछ मिनटों तक भाप दी जाती है और उसके बाद फर्श पर फैलाकर उसनाया हुआ चावल सुखा लिया जाता है। भिगोया हुआ चावल गर्म रेत पर भून कर भी प्राप्त किया जा सकता है। ये सारी प्रक्रियाएं धीमी हैं, इनमें कई दिन लग जाते हैं और उसनाए हुए चावल में सूक्ष्म जैविक क्रिया द्वारा खमीर उठने के फलस्वरूप एक खराब गंध आ सकती है। गीले खाद्य पदार्थों पर बढ़ने वाली कुछ विशेष प्रकार की फफूंदी यदि विकसित हो जाए, तो जहरीले माइकोटॉक्सिन (जिनमें से एफ्लेटॉक्सिन प्रसिद्ध है) भी फैल सकते हैं। नई व्यवसायिक उसनाने की तकनीक, प्रक्रिया को छोटा कर देती है, जिसमें गर्म पानी में केवल कुछ घंटों के लिए भिगोया जाता है और फिर सुखा लिया जाता है। इससे गंध और जैव

विषाक्तता दोनों का निराकरण हो जाता है, जबकि सतह के लचीलेपन का वांछित फल प्राप्त होता है।

चावल संसाधन उद्योग

भारत में हर वर्ष 520 लाख टन धान का उत्पादन होता है जो छोटी और बड़ी अनेक इकाइयों द्वारा संसाधित किया जाता है। पूरे देश भर में कोई 73,000 एकल हलर (चावल का छिलका उतारने वाले यंत्र), 2500 दोहरा हलर, 8000 हलर-शैलर (छिलका उतारने और भूसी अलग करने वाले यंत्र), 3800 शैलर और 5000 आधुनिक चावल मिलें हैं। इसमें से आधुनिक चावल मिलें पिछले दशक में हुई अपेक्षाकृत नई प्रगति है। हलर यंत्रों के स्थान पर हलर-शैलर यंत्र लगाने के लिए आर्थिक प्रोत्साहन द्वारा बढ़ावा देने का सरकार द्वारा सुविचारित प्रयत्न किया जा रहा है, जिससे चावल का अधिक उत्पादन मिलता है। व्यावसायिक रूप से उसनाने के कार्य में आधुनिक उपकरणों के उपयोग से ऐसा उत्पादन मिलने लगा है जो पूरी तरह गंध-मुक्त है, और, जैसा कि हम देखते हैं उत्कृष्ट पोषक महत्व से युक्त है। उसनाने की प्रक्रिया लंबी कर दिए जाने पर चावल सुनहरा रंग ग्रहण कर लेता है, जो सेला कहलाता है। यद्यपि पकाने में इसका यह रंग गायब हो जाता है, फिर भी पूर्वी भारत में इसकी विशेष मांग है। इस पसंद का संबंध उस पीले से क्रीम रंग से जोड़ा जा सकता है, जो चावल परिपक्व (पुराना) होने पर ग्रहण कर लेता है, जिसके कम से कम तीन कारण पाए गए हैं। एक तो प्रोटीनों और शर्कराओं के बीच होने वाली प्रतिक्रिया है जो कि सामान्य रूप से अनेक भोज्य पदार्थों में होती है और एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक के नाम पर माययार्ड प्रतिक्रिया कहलाती है। यह अवांछनीय भी हो सकती है, जैसी दुग्ध उत्पादनों में, जिनमें पोषक तत्व कम हो जाते हैं या फिर ऐसी भी हो सकती है जो भुनी हुई कॉफी, ताजा ब्रेड या गरम चपाती की क्षुधावर्धक गंध को बढ़ाती है। माययार्ड या ब्राउनिंग प्रतिक्रिया को हम इसी अध्याय के अंतर्गत आगे चपाती के बारे में चर्चा करते हुए अधिक गहराई से देखेंगे। चावल के पीले पड़ने का दूसरा कारण पोलीफेनोल कहलाने वाले घटकों के साथ होने वाली किण्वकीय ऑक्सीकरण प्रतिक्रिया भी हो सकती है। यह अनेक खाद्य-उत्पादनों में पाई जाती है और रंग को गहरा करने की क्रिया को तेज कर देती है। इसका एक बहुज्ञात उदाहरण है, सेब या नाशपाती के कटे हुए टुकड़ों को हवा में खुला रखने पर बहुत तेजी से उनके रंग का गहरा पड़ जाना। पीले पड़ जाने का तीसरा कारण चावल की सतह पर लगी फफूंद के कारण पैदा हुए वे पीले उत्पाद हैं जो माइकोटॉक्सिन कहलाते हैं, जिनमें से कुछ तो मनुष्यों और जानवरों के लिए भी विषाक्त होते हैं।

खील-मुरमुरा और चिउड़ा

धान और चावल दोनों फुलाए जाते हैं। धान को फुलाने पर जो उत्पाद मिलता है उसे खील कहते हैं और उसे पीसकर प्राप्त किया गया आटा सत्तू कहलाता है, फिर भी चावल को फुलाकर प्राप्त किए गए उत्पाद मुड़ी या मुरमुरा बनाने की क्रिया की अपेक्षा यह छोटी प्रक्रिया है। फुलाने के लिए उसना चावल ज्यादा पसंद किया जाता है। आग के ऊपर कढ़ाई में गर्म रेत में मुट्ठी से चावल डाला जाता है। धातु के करछुल से रेत को उलटा पलटा जाता है, और जैसे ही चावल फूलने और फूटने लगता है, कढ़ाई की पूरी सामग्री एक छलनी में उलट दी जाती है। फूला हुआ चावल यानी मुरमुरा छलनी में एकत्रित कर लिया जाता है और गर्म रेत को फिर से उपयोग में लाने के लिए वापस कढ़ाई में डाल दिया जाता है। नमक मिले पानी में भिगोया गया चावल पूर्वी भारत में भूनने के लिए ज्यादा पंसद किया जाता है। व्यावसायिक इकाइयों में भूनने के लिए बेलनाकार बर्तनों का उपयोग किया जाता है, जिनके द्वारा चावल गर्म रेत में से गुजरता है और छनकर वापस बेलनाकार बर्तन में आ जाता है। उपभोक्ता फुलाए हुए चावल से सफेद, चमकते हुए मोटे दानों की अपेक्षा करता है।

चपटा किया हुआ चावल यानी चिउड़ा या अवल पतला, कागजी भुरभुरा और आकार तथा रंग में यथासंभव चौड़ा और सफेद होना चाहिए। धान को नरम होने तक दो या तीन दिन भिगोकर रखा जाता है और फिर उसी पानी को कुछ मिनट के लिए उबालकर ठंडा कर लिया जाता है। फिर उन फूले हुए दानों को लोहे या मिट्टी के अवतल पात्र में रखकर तब तक तेज आंच पर चढ़ाए रखते हैं जब तक कि दाने फूट न जाएं। इसके बाद दानों को चपटा करने और छिलका अलग करने के लिए मूसल से कूटा जाता है, जिसे बाद में फटककर अलग अलग कर दिया जाता है।

चावल और उसके उत्पादों में पोषक तत्व

तालिका 1.1 के प्रथमार्थ में भूरे चावल (जिस पर अभी भी भूसी या चोकर चिपका हुआ है) परिष्कृत चावल, हाथ से कुटे चावल और उसना चावल में विद्यमान विभिन्न स्थूल पोषक तत्व दर्शाए गए हैं। परिष्कृत चावल में, उसका चोकर और छोटा-सा बीजांकुर नहीं रहता और चूंकि ये प्रोटीन, वसा, भस्म (जो कि अजैव खनिज घटकों का एक मापदंड है) और रेशा (खुरदरी अपाच्य सामग्री) से संपन्न होते हैं, इसलिए ये घटक कम हो जाते हैं। हाथ कुटा चावल, जिसके चोकर का एक बड़ा भाग उसके साथ बचा रहता है, संरचना में भूरे चावल के समान होता है। चूंकि चावल के इन सभी प्रकारों में मांड, प्रोटीन और पानी सापेक्षित अनुपात में 95 से 99 प्रतिशत हैं, इसलिए उनका ऊष्माजनक (कैलोरीफिक) परिमाण लगभग 350 के समान है।

तालिका–1.1

क. चावल के विभिन्न प्रकारों के मुख्य घटक

	भूरा चावल	*परिष्कृत चावल सफेद*	*हाथ कुटा चावल*	*उसना चावल*
		सारी संख्याएं प्रतिशत में		
मांड	77.1	80.9	78.1	78.0
प्रोटीन	7.5	7.1	7.7	7.0
वसा	2.4	0.4	1.5	0.8
भस्म	1.2	0.5	0.8	0.5
रेशा	0.9	0.1	0.9	0.1
नमी	10.9	11.0	11.0	13.6

ख. चावल के विभिन्न प्रकारों में विटामिनों और खनिजों का अवधारण

	भूरा चावल		*परिष्कृत*	*हाथ कुटा*	*उसना*
	मात्रा	*प्रतिशत*	*चावल*	*चावल*	*चावल*
	माइक्रोग्राम	*भूरे चावल में मात्रा के प्रतिशत के अनुसार*			
थायमाइन	320	100	15	66	72
रिबोफ्लेविन	56	100	35	87	66
नायसिन	4600	100	37	85	83
फॉलिक एसिड	36	100	22	60	30
	मिलीग्राम				
कैल्शियम	40	100	25	65	95
आयरन (लोहा)	2	100	155	145	133

नोट : 1 ग्राम = 1000 मिलीग्राम (मि.ग्रा.)
1 मि.ग्रा. = 1000 माइक्रोग्राम (मा.ग्रा.)

अंतर विटामिनों और खनिजों में है क्योंकि यही मुख्य रूप से भूसी (चोकर) और बीजांकुर में विद्यमान हैं जो कि धान से चावल प्राप्त प्राप्त करने की प्रक्रिया में नष्ट हो जाते हैं। तालिका के द्वितीयार्थ में इन्हीं सूक्ष्म-पोषकों के प्रतिशत दिखाए गए हैं, जो विभिन्न विधियों से चावल को संसाधित करने के बाद रह जाते हैं। पालिश किया गया चावल सबसे खराब है, पालिश करने की प्रक्रिया के बाद विटामिनों का केवल लगभग एक-तिहाई और कैल्शियम का आधा भाग ही रह जाता है। लोहे की मात्रा के आंकड़े भ्रामक हो सकते हैं, क्योंकि चावल संसाधित करने में प्रयुक्त

लोहे की कोई भी मशीन उत्पाद में धात्वीय लोहा छोड़ेगी, किंतु दुर्भाग्यवश यह ऐसे रूप में नहीं होता कि जब चावल पका कर खाया जाए, तो शरीर उसे सोख सके और काम में ला सके। हाथ से कुटे चावल में लगभग तीन-चौथाई विटामिन और कैल्शियम रह जाता है और इसी के आधार पर इसके उपयोग की सलाह दी जाती है। थायमाइन या विटामिन बी-1 का विशेष महत्व है। हमारे भोजन में इसकी कमी से बेरी-बेरी नाम की बीमारी हो सकती है जो दो प्रकार की होती है। सूखी बेरी-बेरी में, भूख कम लगती है, हाथों और पैरों में झुनझुनी और जड़ता आने लगती है और पांवों में निर्बलता आ जाती है। गीली बेरी-बेरी की पहचान है जलोदर रोग, धड़कन का बढ़ जाना, सांस का फूलना और हृदय की धमनियों का निर्बल होना, जिससे हृदय-गति तक रुक सकती है। भारत के उन भागों में जहां हाथ से कुटा या उसना चावल और चक्की में संसाधित किया चावल खाया जाता है, बेरी-बेरी रोग नहीं होता, परंतु जहां पालिश किया गया चावल मुख्य भोजन है, वहां यह रोग होता है। हाथ-कुटा चावल, यद्यपि जब ताजा होता है तो स्वादु होता है, फिर भी पकने पर पूरी तरह सफेद नहीं होता और भंडारण में जल्दी ही बिसांधा (बदबूदार) हो जाने के कारण लोकप्रियता खो रहा है। उसनने के बाद चाहे मशीन से या चाहे हाथ से कुटाई करके संसाधित किए गए चावल के अनेक गुण हैं। उसने की प्रक्रिया के दौरान, सतह पर विद्यमान पोषक तत्व दाने के पुंज के भीतर तक चले जाते हैं, और उससे चावल की सतह पर श्लेषित मांड की एक परत जम जाती है और इसे उबालने के दौरान पोषक तत्व धुलकर बह जाने से रुक जाते हैं। वास्तव में, यदि पकाए गए चावलों के नमूनों का विश्लेषण किया जाए तो विभिन्न प्रकार के चावलों के पोषक तत्वों में अंतर और बढ़ जाएंगे। व्यावसायिक उसनने की आधुनिक विधियों से अत्यंत स्वादिष्ट और सुदर्शन उत्पाद मिलता है, जिसे पकाने पर दाने आपस में चिपकते भी नहीं हैं। भंडारित उसना चावल कीड़ों और फफूंद के आक्रमण का प्रतिरोध भी दूसरे प्रकार के चावलों की अपेक्षा अच्छा करता है। ऐसा लगता है कि ऐसे चावल का उपयोग करने में अधिक लाभ हैं।

मुड़ी या मुरमुरा और चिउड़ा, दोनों पर्याप्त कठोर संसाधन से गुजरते हैं, इसलिए यह आश्चर्यजनक नहीं है कि उनके पोषकों के, विशेष रूप से विटामिनों और खनिजों के स्तर को क्षति पहुंचती है। दोनों उत्पादों में से लगभग आधा थायमिन नष्ट हो जाता है, और रिबोफ्लेविन, फुलाए गए उत्पादों में विशेष रूप से, सारा का सारा नष्ट हो जाता है। नायसिन और कैल्शियम भी, पर्याप्त बचा रहता है।

भारत में उपयोग के पूर्व कंकर-पत्थर, कचरा, चिपका हुआ पाउडर और एरंड का तेल, जो सुरक्षित भंडारण के लिए कभी कभी छिड़क दिया जाता है, को हटाने के लिए चावल धो लेने की प्रथा है। इससे बी-विटामिनों का भी एक बड़ा भाग धुलकर निकल जाता है। चावल बीनकर और एक सूखे कपड़े से उसे रगड़कर

साफ कर लेना एक अच्छा विकल्प है। विशेष रूप से दक्षिण भारत में उबालने के लिए थोड़े अतिरिक्त पानी का उपयोग करने और फिर पक जाने पर उस पानी को निकाल देने की प्रथा से भी मूल्यवान पोषक तत्व धुलकर बह जाते हैं। चावल जितना पानी सोख सकता है, केवल उतने ही पानी का उपयोग करके इससे बचा जा सकता है। उसना चावल के मामले में यह प्रथा सरल है, यद्यपि इसे धोने से धुलकर बह जाने वाली कोई हानि नहीं होती।

दुनिया भर में चावल को अतिरिक्त पोषक तत्वों से पुष्ट करने के प्रयत्न किए गए हैं, किंतु ये विशेष सफल नहीं हो पाए हैं। एक विधि तो यह है कि चावल की छोटी मात्रा को आवश्यक पोषकों से पर्याप्त पुष्ट कर दिया जाए और पकाने के पूर्व दो किलो सामान्य चावल में ऐसे 10 ग्राम चावल मिला दिए जाएं। दूसरी विधि में, सारे चावल को पोषकों की वांछित मात्रा से संसिक्त कर दिया जाए, फिर उसे किसी हानिरहित परत से या उसनने जैसे सतह के श्लेषीकरण के किसी तरीके से पक्का कर दिया जाए। भारत की चावल फसल के आकार, उसके विकेंद्रित और अधिकतर लघु स्तर पर संसाधन के कारण ऐसी पुष्टिकरण प्रक्रिया की सफलता की संभावना अच्छी नहीं है।

चावल संसाधन की अन्य संभावनाएं

चावल पर आधारित कुछ विशेष संसाधित आहार भारत के बाजार में लोकप्रिय हो सकते हैं अलबत्ता क्रय क्षमता में कमी को देखते हुए यह सीमित स्तर पर हो सकता है। तात्कालिक या झटपट (इंस्टेंट) चावल, जैसा कि प्यार से इसे कहा जाता है, विदेशों में बड़े बड़े बाजारों में बिकने वाला एक सामान्य उत्पाद है, और एक निश्चित मात्रा में डाले गए पानी में, 2 से 10 मिनट में पक जाता है और पानी भी पूरी तरह सोख लेता है। यह चावल पानी या भाप या गर्म हवा में पकाकर पूरी तरह श्लेषित किया जाता है। उसके बाद या तो धीरे धीरे सुखाकर या फिर अचानक बढ़ाए गए दबाव में या गर्म हवा की लहर में उसे फैला या फुलाकर विदारित (ताकि रसोई में अंतिम बार पकने के लिए उसमें तेजी से गर्म पानी घुस सके) कर लिया जाता है। प्रेशर कुकरों का बढ़ता हुआ उपयोग, जो सामान्य चावल (और अन्य खाद्य सामग्रियों) को भी काफी जल्दी पका देते हैं, भी एक ऐसा तत्व है जो भारत में शीघ्र पकने वाले चावलों की सफलता को सीमित करता है।

चीनी प्रभाव में आने वाले सुदूर पूर्व और दक्षिण-पूर्व एशिया के अनेक देशों में चावल के नूडल बहुत लोकप्रिय हैं। चावल का आटा थोड़े पानी के साथ पका कर लोई बना ली जाती है जिसे फिर सांचे में से गुजारा जाता है, वांछित लंबाई में काटकर सुखा लिया जाता है। लंबी और पतली सेवइयां भी चावल से बनाई जा सकती हैं। पूर्व-पक्व होने के कारण यह सुविधाजनक आहार है। यूरोप में, विशेषरूप

से इटली और अमरीकी महाद्वीप में गेहूं से बने नूडल्स और सेवइयां प्रचलित हैं। अंडा-युक्त नूडल्स में लगभग 5 प्रतिशत अंडे की जर्दी होना चाहिए, जिससे उत्पाद का रंग पीला होता है और उसमें पोषक तत्व भी जुड़ जाते हैं।

कॉर्नफ्लेक (संसाधित और चपटी की गई मकई) रोल्ड ओट्स (संसाधित जौ) और श्रेडेड व्हीट (गेहूं का संसाधित चूरा) जैसे, खाने के लिए तैयार नाश्ते के धान्य, जिसमें केवल थोड़े गर्म दूध और शक्कर की जरूरत होती है, की विशाल सफलता को देखकर चावल के उपयोग पर भी छान-बीन की गई है। चिउड़ा या पोहे जैसे चपटे किए हुए उत्पाद में अलग अलग उसना चावल के दाने होते हैं, जिन्हें पहले शक्कर की चाशनी में पकाया, फिर सुखाया और सतह को श्लेषित कर दिया जाता है। इसके बाद चपटा करने वाले बेलनों के बीच से गुजारकर तत्काल ओवन में थोड़ा सा फुला देते हैं। फुलाए हुए औद्योगिक उत्पाद दो प्रकार के होते हैं। एक में, फुलाने वाले नाल के जरिए, दबाव में अचानक कमी करके गीले दानों को अलग अलग फुला दिया जाता है। एक आधुनिक अंगीठी (कुकर-एक्स्ट्रूडर) में ये दोनों प्रक्रियाएं मिला दी जाती हैं। चावल का ढेर इसमें पकता है और बाहर निकलते ही दबाव में कमी होने के कारण फैल जाता है। अच्छे स्वाद के लिए चावल के साथ अन्य उपादान मिलाए जाते हैं या निकलने के बाद उस पर परत बढ़ा देते हैं। ऐसे कुकर-एक्स्ट्रूडर का उपयोग करके स्वादिष्ट नमकीन भी बनाया जा सकता है।

गेहूं

चालीस के दशक तक दक्षिण और पूर्वी भारत में गेहूं का उपयोग बहुत सीमित था। द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान बाध्यकारी और बाद में भी कभी कभी की गई राशनिंग ने धीरे धीरे लोगों को गेहूं को स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया। साठ के दशक के मध्य से गेहूं के उत्पादन में शुरू हुई आश्चर्यजनक वृद्धि ने इस स्वीकृति को पुष्ट किया। गेहूं का उत्पादन चावल के उत्पादन की अपेक्षा दोगुनी गति से बढ़ रहा है। दक्षिण भारत में अब सारे परिवारों में से एक-तिहाई परिवार रोज गेहूं खाते हैं और प्रतिदिन का औसत उपभोग भी प्रति व्यक्ति 40 से 50 ग्राम है। कलकत्ता शहर में भी प्रतिदिन एक समय चावल और दूसरे समय गेहूं के भोजन की मजबूत बानगी दिखाई दे रही है। दक्षिणी और पूर्वी राज्यों ने गेहूं उत्पादन को भी अपना लिया है।

धान के उत्पादन के लिए किसान के खलिहान में अभी भी व्यापक स्तर पर

प्रचलित चावल के पुष्प-गुच्छों का दांवन करने के विपरीत, गेहूं की बालियों की कुटाई भूरे दानों को छोड़ देती है, जिससे वे केवल भूसी की एक परत के साथ बाहर निकल आते हैं। निश्चय ही, अन्य बीजों के समान गेहूं में भी एक छोर पर बीजांकुर होता है। इसमें भ्रूण होता है, जिससे, यदि दाने को बोया जाए, तो

तालिका–1.2

गेहूं और उसके अवयवों की संरचना

	साबुत गेहूं	*भ्रूण पोष* 83%	*चोकर* 14.5%	*बीजांकुर* 2.5%
	संख्याएं ग्राम/100 ग्राम में हैं			
नमी	12	12	12	10
कार्बोहाइड्रेट्स	69	76	44	46
प्रोटीन	12	10	15	28
वसा	2	1	5	9
भस्म	2	0.5	10	5
कच्चा रेशा	3	0.5	14	2
	संख्याएं माइक्रोग्राम/100 ग्राम में हैं			
थायसिन	350	200	810	2000
रिबोफ्लेविन	160	70	620	700
नायसिन	5400	1100	27500	4500
पायरिडॉक्सिन	500	200	1800	3000
पैंटोथैनिक एसिड	1300	750	4500	1000
फॉलिक एसिड	36	15	65	500
बायोटिन	10	4	45	17
कैरोटिन	5	-	-	200
टोकोफेराल	500	-	-	27000
	संख्याएं मिलिग्राम/100 ग्राम में हैं			
कैल्शियम	45	18	200	70
लोहा	4	1	20	8
फॉस्फोरस	430	126	2100	1100
मैगनेशियम	180	28	680	270
पोटेशियम	450	105	210	840

नोट : एक ग्राम 1000 मिलीग्राम के बराबर है।
एक मिलीग्राम 1000 माइक्रोग्राम के बराबर है।

पौधा अंकुरित होता है। भीतरी दाने (यदि तकनीकी भाषा में कहा जाए तो भ्रूणपोष) चोकर की परत और बीजांकुर का प्रतिशत अनुपात 83, 14.5 और 2.5 है। आश्चर्यजनक है कि यह लगभग चावल के समान ही है, अलबत्ता दोनों दाने एकदम अलग दिखते हैं। तालिका 1.2 गेहूं के तीन घटकों के तत्व दर्शाती है। भीतरी भ्रूणपोष मुख्य रूप से मांड है और उसका प्रोटीन अंश कम है। चोकर में प्रोटीन, रेशे और भस्म का अनुपात ज्यादा है, जबकि बीजांकुर विशेषतया प्रोटीन और वसा से संपन्न है। विटामिन और खनिज धारिताओं में अंतर और भी अधिक आश्चर्यजनक है। चोकर में नायसिन, पैंटोथैनिक अम्ल, कैल्शियम और फॉस्फोरस का विशेष रूप से उच्च स्तर है, जबकि बीजांकुर में टोकोफेराल (विटामिन ई), थायमिन, पायरीडॉक्सीन और पोटेशियम अधिक है।

चक्की से पिसाई

हमारे देश में दो प्रकार से गेहूं संसाधित किया जाता है। एक तो है परंपरागत विधि जिसका अनेक घरों में उपयोग होता है। इसमें ग्रेनाइट पत्थर के, समान व्यास वाले दो भारी पाटों के बीच साफ किया गया गेहूं पीसा जाता है। नीचे वाला पाट स्थिर रहता है जबकि ऊपर वाले पाट को उसकी परिधि पर लगे लकड़ी के सीधे मूठ के द्वारा हाथ से घुमाया जाता है। साबुत गेहूं का पिसा हुआ आटा पाटों के बीच के अंतराल से बाहर गिरता है, जिसे एकत्र करके छान लिया जाता है ताकि मोटे रह गए कण अलग किए जा सकें। इसका उपयोग मवेशियों के खाने में किया जाता है या फिर फेंक दिया जाता है और शेष का उपयोग चपाती और अन्य भोज्य पदार्थ बनाने में किया जाता है। एक छोटी, बिजली से चलने वाली चक्की इसी सिद्धांत का परिवर्धित संस्करण है, जिसमें कभी कभी पत्थरों के स्थान पर धातु के पाटों का उपयोग किया जाता है।

पौष्टिकता की दृष्टि से साबुत गेहूं का आटा अंतर्द्रव्य (एंडोप्लाज्म) चोकर और बीजांकुर में विद्यमान सभी पोषक तत्वों को पाने का सर्वोत्तम साधन है, विशेष रूप से तब जबकि मोटे कणों को छानकर हटाने की प्रक्रिया न की जाए, जैसा कि कभी कभी किया भी जाता है। गेहूं के दाने में पोषक तत्व असमान रूप से बिखरे हुए होते हैं और साबुत गेहूं का आटा चपाती में पूर्ण उपयोगिता को निश्चित करता है।

चपाती बनाना

चपाती बनाने में जुड़े अन्य घटकों को वैज्ञानिक रूप से परखा गया है। लोई बनाने के लिए गेहूं के आटे के उपयोग का आधार, एक संसकर रचना है। गेहूं में विद्यमान ग्लुटन नामक एक विशिष्ट प्रोटीन होता है। ग्लुटनरहित अन्य धान्यों से वास्तव

में लचीली लोई नहीं बनाई जा सकती। यदि गेहूं के आटे को बहते हुए पानी की धीमी धारा में रखा जाए, तो सारे घुलनशील तत्व बह जाएंगे और ग्लुटन का एक रबर जैसा लौंदा रह जाएगा। वास्तव में चिपकने वाली मिठाई सोहन हलवा बनाने के लिए इसी प्रकार से ग्लुटन बनाते हैं। गेहूं में 10 से 13 प्रतिशत प्रोटीन होता है और 8 से 10 प्रतिशत ग्लुटन होता है। जब गेहूं का आटा गूंथा जाता है, तो वह अपने वजन के आधे से भी अधिक के बराबर पानी, बिना रिसाव के ग्रहण कर सकता है और ग्लुटन ही उसे चिपकने वाला, रबर जैसा और फैलाव का गुण देता है। विभिन्न प्रकार के गेहुंओं से अलग अलग विशेषताओं वाली लोई बनती है, जिससे चपाती, ब्रेड, बिस्कुट, केक और सेवइयां बनाने के लिए उनकी उपयुक्तता तय होती है।

परंपरागत भारतीय चपाती के लिए उपयुक्त गेहूं के आटे में अपने वजन के दो-तिहाई के बराबर पानी सोख लेने की क्षमता होती है। परिणामस्वरूप लोई चिपकती नहीं और उसमें फैलाव के प्रति एक सामान्य प्रतिरोध दिखता है, किंतु एक बार उसे फैला देने पर वह उसी रूप में बनी रहती है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह बहुत अधिक विस्तारणीय है। ग्लुटन स्वयं भी तीन घटकों का मिश्रण है। एक है ग्लायडिन जो अधिक विस्तारणीय है, किंतु उसमें लचीलापन बहुत कम है, पानी के साथ मिलकर उससे लंबी लेकिन पतली पट्टियां बनती हैं, और वह लोई की विस्तारणीयता निर्धारित करता है। ग्लुटेनिन के गुण इसके विपरीत हैं, पानी के साथ उसके मिश्रण से मोटी परतें बनती हैं, जो पर्याप्त लचीली होती हैं किंतु खींचे जाने पर टूट जाती हैं। विभिन्न प्रकार के गेहुंओं से प्राप्त ग्लुटेनिन अपने गुणों में काफी भिन्न होते हैं, लेकिन वे सभी गेहूं के आटे की लोई की मजबूती में सहयोग देते हैं। तीसरा ग्लुटन घटक अवशिष्ट प्रोटीन कहलाता है। यह भुरभुरा होता है और कणों का निर्माण करता है, जैसे कि पुराना रबर करता है। यह बताया गया है कि ऐसे गेहूं जिनमें ये तीनों घटक लगभग समान अनुपात में हों और समग्र रूप से ग्लुटन की मात्रा ऊंची हो, उनसे नर्म और अच्छी तरह फूलने वाली चपाती बनती है। अवशिष्ट प्रोटीन की अधिकता हो, तो चमड़े जैसी चपाती और ग्लायडिन की अधिकता से कड़ी चपाती मिलती है। इसी प्रकार डबलरोटी बनाने के लिए विभिन्न प्रकारों के गेहूं की उपयुक्तता सापेक्ष अनुपातों पर निर्भर करती है।

चपाती के रंग का मामला भी आश्चर्यजनक रूप से जटिल है। साठ के दशक के उत्तरार्ध में गेहूं पर केंद्रित हरित क्रांति की शुरुआत में सोनोरा जैसे बौने पौधों वाले और अधिक फसल देने वाले मैक्सिकन गेहूं को भारत में उपजाया गया। इसके दाने गहरे भूरे, लगभग लाल थे और इसके आटे से बनी चपातियां गहरे रंग की और स्वादरहित होती थीं। बहुत शिकायतें मिलीं और इसलिए गेहूं की इन गहरे रंग की किस्मों का शरबती जैसे परंपरागत भारतीय गेहूं के साथ संकरण करवाया

गया ताकि शरबती सोनोरा जैसी नई किस्में दी जा सकें, जो अधिक फसल दें, ऊंचाई में मध्यम आकार की हों और नीचे गिर न पड़ें, सघन रूप से उपजाई जा सकें। इस तरह मवेशियों के लिए अधिक चारा दें और दाने का रंग वांछित पीलापन लिए भूरा (शम्बरी रंग) हो। फिर भी, इन नई संकर किस्मों में से कुछ की चपाती अभी भी गहरे रंग की होती थी। पता लगा कि इसका कारण टयरोसिनेस नाम के एक एंजाइम या किण्वक की सक्रियता है जो अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में विद्यमान है। यह एंजाइम चोकर और बीजांकुर में विद्यमान पोलीफेनोलिक घटकों का उपचयन या आक्सीकरण कर देता है जिससे गहरे रंग वाले मेलानोइडिन उत्पाद बनते हैं। संयोगवश मेलानोइडिन उत्पाद उन रंजकों से संबंधित हैं, जो हमारी अपनी त्वचा को भूरा रंग देते हैं, जो श्वेत कुष्ठ (ल्यूकोडरमा) रोगियों या रंजकहीनता के साथ उत्पन्न (सूरजमुखी) लोगों में नहीं होता। कल्याण सोना, सी-306 और सी-308 जैसी गेहूं की किस्में सामान्य रंग की चपाती के लिए विकसित की गई हैं, और आज अर्जुन, जनक, प्रताप और डब्ल्यू एल-711 जैसी अन्य अनेक किस्में विद्यमान हैं।

चपाती बनाने में एक अन्य पेचीदा पहलू मांड (स्टार्च) के दाने हैं। गेहूं का चक्की में पीसा जाना एक अपघर्षी प्रक्रिया है और मांड की व्यष्टि कणियां बड़ी संख्या में टूट-फूट जाती हैं। कणियों में विद्यमान मांड फिर उभर जाता है, और उसमें प्रचुरता से विद्यमान बीटा एमिलेस नामक एंजाइम मांड के साथ क्रिया करके माल्टोस नाम की एक शर्करा छोड़ता है जो चपाती को थोड़ा किंतु वांछित मीठा स्वाद देती है। यहीं नहीं, क्षतिग्रस्त मांड ज्यादा पानी सोखता है जो न केवल एंजाइम द्वारा शर्करा के छोड़े जाने में सहायता करता है, बल्कि लोई को लचीला भी बनाता है, जिससे कि चपाती ज्यादा अच्छी तरह बेली जा सके। लोई को खमीर उठने के लिए थोड़ी देर रखा रहने देना चाहिए, लेकिन ज्यादा देर नहीं, क्योंकि फिर यीस्ट द्वारा माल्टोस पर आक्रमण होगा, जिससे कार्बन डाइआक्साइड का निर्माण होगा और लोई ढीली पड़ जाएगी।

ताजा सिकी चपाती की सुस्वादु गंध का कारण क्या है? यह उसी रासायनिक प्रतिक्रिया से उत्पन्न होती है जिसे माययार्ड प्रतिक्रिया कहते हैं जिसकी हम पहले ही उसना चावल के पीले पड़ने के संबंध में चर्चा कर चुके हैं। इसका पहला चरण है घटती हुई शर्कराओं (इसके उदाहरण ग्लुकोज, फ्रुक्टोज और दूध की लैक्टोज हैं परंतु साधारण शक्कर या सुकरोज नहीं) के साथ प्रोटीनों (और विशेष रूप से इसके लायसिन नामक एक घटक एमिनो एसिड) की प्रतिक्रिया जिसमें सामान्य रूप से थोड़े पौष्टिकता-मूल्य की हानि होती है। इसके बाद ये आरंभिक उत्पाद विशेष रूप से भूरे रंग के यौगिक देने के लिए गर्म करने के दौरान और अधिक टूट जाते हैं। इन परिवर्तनों से पौष्टिकता-मूल्य और कम होता है, किंतु सुस्वादु गंधों और सब्जियां व गोश्त पकाने, सिकी हुई कॉफी, सिके हुए मूंगफली के दाने, ताजा

बनी ब्रेड, सिकी हुई ब्रेड स्लाइसों और बहुत गर्म तवे पर सिकी रोटी की महकों को बढ़ाती है। इन सामग्रियों की महक घटकों के एक संश्लिष्ट मिश्रण से उठती है, जिनमें से कुछ में एक उत्तेजक, भूनी हुई या सेंकने से उत्पन्न गंध होती है, जबकि अन्य कुछ में दग्ध-शर्करा या जली हुई शक्कर जैसी और कुछ में तीखी जलती हुई सुवास होती है।

उन्नतोदर आकार में चपाती तब फूलती है, जब गेहूं की नीचे और ऊपर की परतों के बीच भाप इकट्ठा हो जाती है। गेहूं की परतों में कोई दरार या कोई कमजोर स्थान होने पर नमी बाहर निकल जाती है और फूलने में कमी रह जाती है; लोई की एक समान और अटूट परत होना आवश्यक है और यह एक अटूट परत में गीले आटे को बनाए रखने के ग्लुटन-संजाल की शक्ति पर निर्भर करता है।

गेहूं के परंपरागत उत्पाद

विशेष रूप से दरदरा पीसा गया या दांवन से टूटा हुआ निकला गेहूं दलिया कहलाता है और उबालकर इसका उपयोग किया जाता है। चावल के समान गेहूं को भी फुलाया जा सकता है, भुरभुरे फूले हुए उत्पाद को पीसकर आटा बना लिया जाता है जो सत्तू कहलाता है और जो पहले ही से पकाया हुआ होता है, इसलिए उससे विभिन्न प्रकार के आहार तत्काल बनाए जा सकते हैं।

रेशे जैसे उत्पादों में शामिल हैं बहुत बारीक बनी फिरनी जो दूध और शक्कर के साथ खाई जाती है। विशेष प्रकार के कठोर पीले गेहूं के बहुत बारीक पिसे आटे से बनी पतली लोई हाथ या मशीन के द्वारा सांचों में डाली जाती है, जो उनमें से कुंडली के आकार में निकलती है, जिसे तत्काल सख्त, भुरभुरी लड़ियों के रूप में सुखा लिया जाता है। सेंवइयों के तार थोड़े मोटे होते हैं और इसके लंबे-सीधे तारों को बंडलों के रूप में रखा जाता है। इटली की स्पैघेटी और मैकरोनी ऐसी ही होती हैं। स्पैघेटी सेंवइयों से थोड़ा मोटी और लंबी होती हैं, जबकि मैकरोनी छोटी और पोली नलियों के रूप में होती हैं। यह सारे पास्ता (लेई) उत्पाद नर्म लचीले आहार के रूप में जल्दी पक जाते हैं।

मूल रूप से मध्य-पूर्व में, और फिर बाद में यूरोप और अमेरिका में बने उसना गेहूं या बलगर गेहूं, साबुत गेहूं को पहले कुछ मिनट भाप देकर और फिर कुछ घंटों के लिए गर्म पानी में भिगोकर उसका पानी निथारकर सुखाने से पहले फिर से थोड़ी भाप देकर बनाया जाता है। साबुत या टुकड़ों में पीसकर इसका उपयोग किया जा सकता है, जिसका लाभ यह है कि यह साधारण गेहूं की अपेक्षा भंडारण-गुण, पौष्टिकता-परिमाण और स्वाद में बेहतर है।

रोलर आटा चक्की और उसके उत्पाद

भारत में कार्यरत 350 रोलर (बेलनाकार) आटा चक्कियों ने 1980 में लगभग 35 लाख टन गेहूं, या उत्पादन का 10 प्रतिशत गेहूं संसाधित किया जबकि शेष 90 प्रतिशत पारंपरिक चक्कियों में पीसा गया। रोलर आटा चक्कियां दलकर नहीं पीसतीं, किंतु विपरीत दिशाओं और भिन्न गतियों पर चलने वाले दो बेलनों के बीच दोनों का धीरे धीरे और हल्के दबाव से अपरूपण करती हैं। पहले खांचेदार बेलनों के बीच दाने के भ्रूणपोष से चोकर और बीजांकुर अलग अलग कर लेते हैं, जो बाद में पीसने के चरणों की शृंखला में चिकने बेलनों के बीच आटे में परिवर्तित हो जाते हैं। पहली तीनों चीजें निकल जाती हैं, जबकि भ्रूणपोष युक्त चोकर जिसमें अभी भी थोड़ा भ्रूणपोष रह गया हो, अलग होने के लिए बेलनों के अगले सेट में चला जाता है। प्रणाली के अंदर, उत्पाद एक से दूसरे स्थान पर हवा के प्रवाहों में जाता है और अपेक्षित उत्पादों को उनके वांछित अनुपातों में देने के लिए एक बार प्रक्रियाएं समायोजित कर दी जाएं तो रोलर आटा चक्की का काम-काज लगभग स्वचालित हो जाता है। चोकर और बीजांकुर बिल्कुल साफ तौर पर एकदम अलग अलग किया जा सकता है और गेहूं का बीजांकुर भी, जो कि चावल के बीजांकुर के समान ही वसा, प्रोटीन, रेशा, विटामिन और खनिजों से समृद्ध होता है, विकसित देशों में एक मूल्यवान उत्पाद है। कभी कभी आटे को और पीसा जाता है और उसके बाद प्रोटीन-संपन्न और मांड-संपन्न कणों को हवाई वर्गीकरण यंत्र के द्वारा अलग अलग कर लेते हैं, जो घटकों के बीच आपेक्षिक घनत्व के थोड़े-से अंतर के आधार पर काम करते हैं।

भारत में रोलर आटा चक्कियों द्वारा गेहूं के तीन उत्पाद प्राप्त किए जाते हैं। ये हैं : 50 प्रतिशत मैदा, 10 प्रतिशत रवा या सूजी और शेष 40 प्रतिशत आटा। ये अनुपात बहुधा स्थानीय क्षेत्र में मांग पर बदले जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, दक्षिण भारत में रवा अधिक प्रतिशत में उत्पादित किया जाता है क्योंकि यह व्यापक रूप से उपमा बनाने के काम आता है। यह उस क्रिया पर बल देकर किया जाता है जिसमें दाना टूटता है। रवे में दानेदार गेहूं-कण होते हैं और विभिन्न भोज्य पदार्थ बनाने के लिए महीन और मोटा रवा होता है। मैदा गेहूं का सफेद भीतरी आटा होता है, जिसमें मांड के अतिरिक्त दूसरे घटक नगण्य होते हैं और यह रोलर आटा चक्की का अंतिम उत्पाद होता है। परिणामस्वरूप प्राप्त आटा अत्यधिक विषमांग होता है, जो कि थोड़े चोकर और बीजांकुर को निकाल दिए जाने के बाद भी उसमें बचे रह गए भ्रूणपोष युक्त चोकर को पीसकर प्राप्त होता है। इन तीनों उत्पादों का गंतव्य अलग अलग होता है। मैदा, जिसे गृहिणियां कभी कभी अमरीकन आटा भी कहती हैं, बहुधा बेकिंग (नानबाई) उद्योग में जाता है, और जैसा कि हम देखते हैं, विभिन्न प्रकार के गेहूं से मैदा मिलता है, जो विशेष रूप से ब्रेड, या बिस्कुट

या केक बनाने के उपयुक्त होता है। कुछ मैदे का उपयोग मिठाइयां बनाने के लिए हलवाइयों द्वारा, रेस्तराओं और घरों में भी किया जाता है। लगभग पूरा का पूरा रवा सामान्य उपभोक्ता के लिए होता है। शेष आटा भी उपभोक्ता उत्पाद है, जो किराना दुकानों में बेचा जाता है और चपाती तथा गेहूं के अन्य आहारों को बनाने में अधिक महंगे साबुत गेहूं के आटे के स्थान पर उपयोग किया जाता है।

तालिका संख्या 1.3 के अंतर्गत गेहूं के आटे और उसके रोलर चक्की उत्पादों के संयोजन और पोषकों को दर्शाया गया है। ये गेहूं के तीन मूलभूत अवयवों, भ्रूणपोष, चोकर और बीजांकुर के स्तरों को प्रतिबिंबित करता है, जिनकी विशिष्टताएं तालिका 1.2 में पहले ही स्पष्ट की जा चुकी हैं। मैदा निश्चित रूप से मांड वाला भ्रूणपोष है, जिसमें भस्म और मोटे रेशे की मात्रा कम है। साबुत गेहूं की अपेक्षा कम प्रोटीन है, किंतु ग्लुटन का अनुपात पार्थक्य के कारण अधिक होता है। इसमें सारे विटामिन और खनिज भी कम हैं। रवा व्यवहार में टूटा हुआ, परिष्कृत गेहूं है और पोषक तत्वों की दृष्टि से गेहूं के आटे के समान है, बल्कि शायद उससे भी थोड़ा बेहतर है। शेष बचे आटे में भ्रूणपोष, और थोड़ा चोकर और बीजांकुर है। इसलिए पौष्टिकता की दृष्टि से यह मैदे से काफी अच्छा है किंतु चोकर और बीजांकुर के कम हो जाने का अर्थ है कि यह चपाती बनाने के लिए उपयोग में आने वाले साबुत गेहूं के आटे से कम पौष्टिक है।

तालिका 1.3

प्ररूपी साबुत गेहूं का आटा, मैदा, परिणामी आटा और रवे का संयोजन

	साबुत गेहूं का आटा	*मैदा*	*परिणामी आटा*	*रवा*
	संख्याएं प्रतिशतों में हैं			
नमी	12.00	12.00	12.00	12.00
कार्बोहाइड्रेट	64.10	67.30	64.20	68.60
प्रोटीन	10.80	9.80	12.40	9.40
ग्लुटन	7.90	9.20	7.10	8.00
कुल भस्म	1.50	0.76	1.66	0.60
मोटा रेशा	2.20	0.17	2.10	4.45
वसा	1.50	0.80	2.50	1.00
मद्यसारीय अम्लता	0.15	0.10	0.17	0.10

तदनुसार, ऐसे परिणामी आटे में पोषक तत्वों को जोड़ने का सुझाव दिया गया है। सत्तर के दशक में मुंबई, दिल्ली और कलकत्ता की कुछ रोलर आटा चक्कियों

द्वारा कुछ वर्षों तक इस सुझाव पर वास्तव में अमल भी किया गया, परंतु अब नहीं किया जाता। संयुक्त राज्य अमेरिका और युनाइटेड किंगडम (ब्रिटेन) में सारे आटे में पोषकों को मिलाकर पुष्ट किया जाता है और क्योंकि ब्रेड बड़ी मात्रा में खाया जाने वाला प्रधान भोजन है इसलिए स्वास्थ्य में कुछ नाटकीय सुधार का श्रेय ऐसे पुष्टिकरण को दिया गया है। संयुक्त राज्य अमेरिका में पुष्टिकरण का स्तर अब प्रति 100 ग्राम पर थायमाइन 500 माइक्रोग्राम, रिबोफ्लेविन 320 माइक्रोग्राम, नायसिन 4000 और लोहा 3500 माइक्रोग्राम है, जबकि प्रति 100 ग्राम में कैल्शियम 2000 मिलिग्राम और विटामिन डी वैकल्पिक संयोजन है। पोषकों के ये स्तर गेहूं में प्राकृतिक स्तर के लगभग बराबर या थोड़े ऊंचे हैं।

गेहूं की किस्में

अब हम विभिन्न किस्मों के गेहूं के स्वभावों पर उनकी उपयोगिता की दृष्टि से विचार करने के लिए तैयार हैं। जैसा कि हम देख चुके हैं कि चपाती बनाने के लिए जिन गुणों की आवश्यकता होती है, वे ब्रेड बनाने के लिए आवश्यक गुणों से अलग होते हैं। कुछ पारंपरिक, सुनहरे से पीले रंग की भारतीय किस्में, जिन्हें व्यवसाय में कभी शरबती कहा जाता था, चपाती बनाने के लिए विशेष रूप से उपयुक्त समझी जाती थीं। इसके विपरीत एक तरफ मध्यम कठोर किस्म के दड़ा गेहूं हैं, जो विशेष रूप से दलिया, रवा और ऐसे ही कामों के लिए बहुत उपयुक्त हैं। ये सारी किस्में गेहूं (ट्राइटिकम) परिवार की ग्रीष्मकालीन जातियों से हैं। ड्यूरम जातियों के बहुत कठोर गेहूं का एक छोटा भाग भी था जो मध्य और प्रायःद्वीपीय भारत के काली मिट्टी के क्षेत्रों में उपजाए जाते थे। ये कठोर किस्में खींचकर बनाए गए गेहूं के उत्पादों, जैसे सेंवइयों और उत्तर की बारीक डोरी जैसी पूर्व पक्व फिरनी या दक्षिण की फेनी, जो दूध और चीनी के साथ बहुत स्वादिष्ट लगते हैं, बनाने के लिए बहुत उपयुक्त हैं। इस प्रकार गेहूं की पारंपरिक किस्में दीर्घावधि से चले आ रहे भोज्य उपयोग के लिए सुसंगत थीं।

दोनों, पश्चिमी ढंग के बेकरी उत्पादों की बढ़ती लोकप्रियता और पारंपरिक विशिष्टताओं से भिन्न विशिष्टताओं से युक्त अधिक फसल देने वाली किस्मों के अचानक प्रवेश ने यथास्थिति को बदल दिया है। गेहूं के बेकरी उत्पादों के लिए जिन गुणों की आवश्यकता है, उनके संदर्भ में संयुक्त राज्य अमेरिका में उपजाई जाने वाली गेहूं की पांच मुख्य किस्मों का उदाहरण देखा जा सकता है। प्रोटीन और ग्लुटन की अधिक मात्रा से युक्त शीतकाल में आने वाला कठोर लाल गेहूं ब्रेड बनाने के लिए उपयोग किया जाता है, जिसमें कभी कभी बसंत ऋतु में आने वाला और भी कठोर लाल गेहूं मिलाया जाता है। ये किस्में बिस्कुट या केक बनाने के लिए उपयुक्त नहीं हैं, जबकि तथाकथित पश्चिमी, सफेद और नर्म लाल,

शीतकालीन गेहूं बेहतर हैं। बहुत कठोर गेहूं ड्यूरम सेमोलिना (एक प्रकार का रवा) स्पैघेटी और मैकरोनी बनाने के लिए विलक्षण रूप से उपयुक्त है। क्योंकि भारत में हाल ही में प्रवर्तित की गई गेहूं की किस्मों को मुख्य रूप से घर में चपाती बनाने की आवश्यकता की पूर्ति भी करनी है, वे प्रायः बेकरी उत्पादों के निर्माण के लिए आवश्यक विभिन्न गुणों के उपयुक्त नहीं हैं। निस्संदेह भविष्य में विशेष कामों के लिए विशेष किस्में उपजाई और आरक्षित रखी जाएंगी।

गेहूं की गुणवत्ता और बेकिंग

हम देख चुके हैं कि ग्लुटन का प्रकार चपाती बनाने के लिए गेहूं के आटे की उपयुक्तता का निश्चय करता है, और अन्य बेक किए गए आहारों के बारे में भी यही सत्य है। भली भांति गूंधे हुए लोई के गोले पर विस्तार परीक्षण के प्रयोग द्वारा उपयुक्तता का निश्चय किया जाता है, और चपाती, ब्रेड और बिस्कुट बनाने के लिए उपयुक्त आटे के लिए परिणाम (पृष्ठ 18 पर) आकृतियों में दर्शाए गए हैं। ब्रेड की लोई सबसे मजबूत है जिसका बड़ा आकार टिकाऊ लोई का परिचायक है, अच्छी ऊंचाई अधिक लचीलापन दर्शाती है और मध्यम चौड़ाई मध्यम विस्तार क्षमता को प्रतिबिंबित करती है। बिस्कुट के कमजोर आटे में कमजोर लचीलापन या ऊंचाई है, परंतु यह बहुत अधिक विस्तार-क्षम है। चपाती की लोई लचीलेपन और विस्तार-क्षमता में दोनों के बीच में है। एक अन्य परीक्षण में भी लोई की मजबूती नापी जाती है, जिसमें लोई का गोला पानी में रखा जाता है : एक कठोर ब्रेड लोई लगभग तीन घंटों तक ज्यों की त्यों रहेगी, जो कि चपाती लोई से दुगना समय है। हल्के दुग्धाम्ल में रखे आटे का लसीलापन, एक विशेष विस्कोसिमीटर (लसीलापन नापने का एक यंत्र) का उपयोग करके दुग्धाम्ल में रखी गई लोई की हलचल के प्रति प्रतिरोध द्वारा नापा जाता है। यह विशेष रूप से बिस्कुट और केक के लिए आटे की क्षमता निश्चित करने की एक अन्य विधि है। दो एमीलेज एंजाइम, जिन्हें मिलाकर द्विस्थैरिक (डायस्टैटिक) क्रिया कहा जाता है, का स्तर ब्रेड लोई के खमीरीकरण में महत्वपूर्ण है, किंतु चपाती बनाने में उसकी महत्ता कम है। एंजाइम क्रिया जितनी अधिक होगी, उतना ही अच्छी ब्रेड के उत्पादन के लिए लोई में कम खमीर उठाना पड़ेगा, जबकि कठोर ग्लुटन को अतिरिक्त एंजाइम मिलाकर नरम बनाया जा सकता है। एंजाइम से संबंधित एक अन्य परीक्षण से समय समय पर आटे के स्थगन के लसीलेपन का निश्चय किया जाता है, जबकि इसका तापमान बढ़ा दिया जाता है, जिससे पता चलता है कि कितने अतिरिक्त एंजाइम की आवश्यकता है। पिसाई के दौरान मांड के कितने कण नष्ट हो गए हैं? यव-शर्करा (माल्टोस) की मात्रा का अनुमान इसका एक अच्छा पैमाना है। हम देख चुके हैं कि चपाती बनाने में यव-शर्करा की ऊंची मात्रा अच्छी होती है, किंतु ब्रेड और इससे भी अधिक बिस्कुट
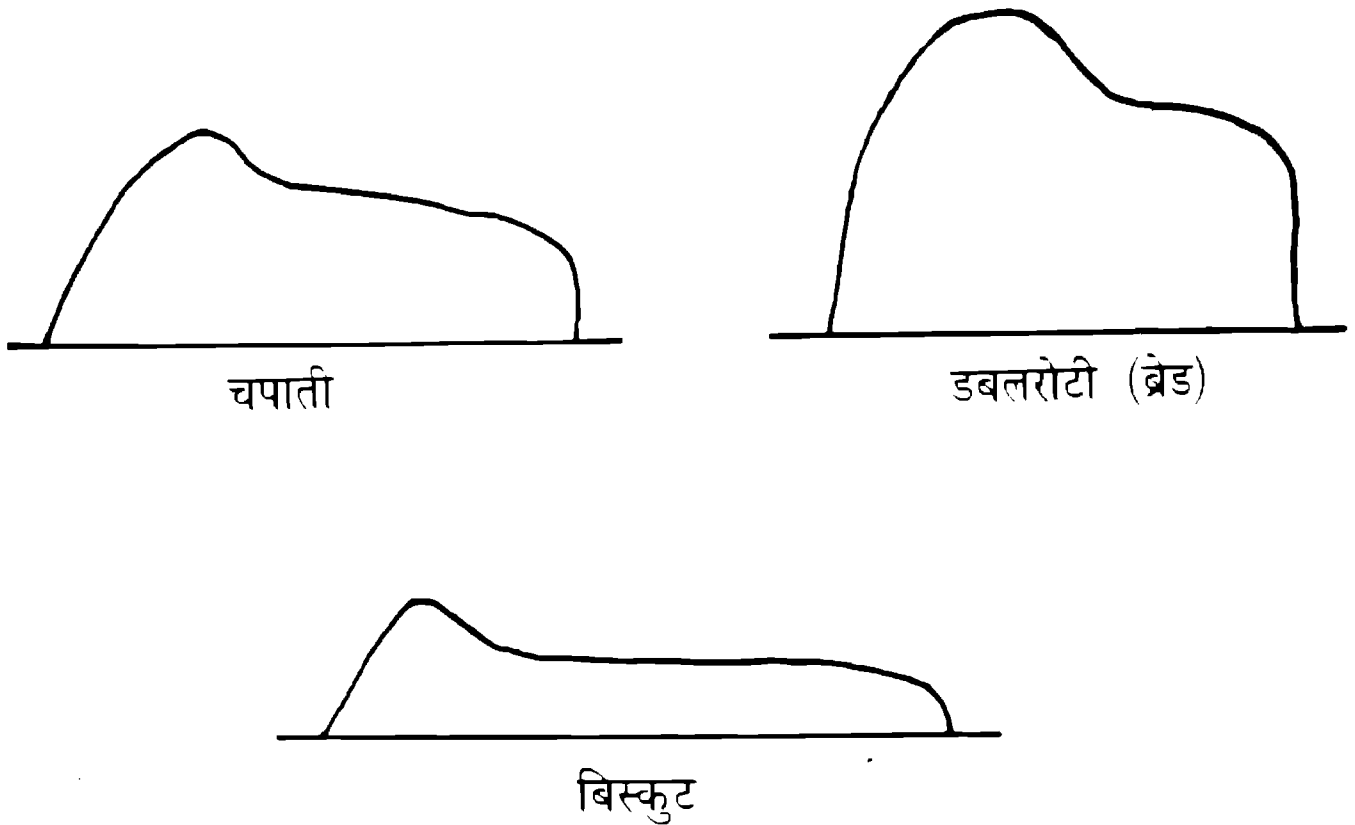
और केक के लिए यव-शर्करा की मात्रा कम पसंद की जाती है। गेहूं के किसी भी नमूने की बेकिंग गुणवत्ता के समग्र त्वरित परीक्षण के रूप में एक निश्चित अवधि के बाद पानी में रखे जाने पर तलछट के रूप में बचे आटे की मात्रा गेहूं की क्षमता के उलटे अनुपात में होती है। अधिक निश्चित आकलन के लिए, ब्रेड बनाने के पहले, कड़ाई से नियंत्रित स्थितियों में परीक्षण बेकिंग की जाती है, ताकि लोफ (डबल रोटी) के आयतन, रूप, कणों के रंग और कणों की बनावट का आकलन किया जा सके। तदनुसार गेहुंओं के सम्मिश्रण का निर्णय किया जा सकता है। हवा के प्रवाहों से गेहूं के आटे के पृथक्करण की क्रिया द्वारा प्रोटीन और ग्लुटन से समृद्ध भागों को गेहूं की उन किस्मों में मिलाने के लिए अलग कर लिया जाता है, जिनमें प्राकृतिक रूप से इन घटकों की कमी होती है। यहां तक कि पृथक किया गया ग्लुटन (जो गीले और सूखे, दो रूपों में बेचा जाता है) ग्लुटन रहित आटे की क्षमता को सुधारने के लिए उपयोग किया जा सकता है, ताकि डबलरोटी बनाने में उसका उपयोग किया जा सके। इस प्रकार जब एक क्षमतावान लोई के योग्य विस्तार प्रतिमान किसी लोई में दिखे, किंतु क्षेत्रफल में कम हो, तो उसमें ग्लुटन मिलाकर डबलरोटी बनाने में उपयोग किया जा सकता है और यदि नर्म लोई के रूप में फैलाया जा सके तो चपातियां बनाई जा सकती हैं। स्वाभाविक रूप से चपाती की लोई में पोटेशियम ब्रोमेट जैसे एक रासायनिक संशोधक को मिलाकर अच्छी डबलरोटी बनाई जा सकती है क्योंकि यह रसायन बहुत कम मात्रा में भी ग्लुटन को विलक्षण रूप से मजबूत कर देता है और खमीर की क्रिया को बढ़ा देता है।

विशेष आटे

अपने आप उठने वाला आटा, आटे और सोडियम बाइकार्बोनेट के मिश्रण के 5 प्रतिशत से भी कम का सम्मिश्रण होता है। सोडियम बाइकार्बोनेट के इस मिश्रण में कैल्शियम फास्फेट जैसे एक या एकाधिक अम्लीय पदार्थ सोडियम बाइकार्बोनेट की क्षारीयता के ठीक अनुरूप मात्रा में मिले होते हैं। बेकिंग पाउडर उसी मिश्रण का सांद्र रूप है जिसमें आटे का स्तर 95 प्रतिशत नहीं, बल्कि केवल 30 प्रतिशत होता है। इस प्रकार के आटों का मुख्य उद्देश्य, जैसा कि उनके नामों से सूचित होता है, घर में बिस्कुट और केक बनाने के लिए त्वरित रासायनिक खमीरीकरण या लोई को उठाने में सहायता करना है।

अन्य धान्य

हठीले ग्राहक

चावल और गेहूं को बढ़िया अनाज के रूप में वर्गीकृत किया गया है परंतु हमारे देश में अनेक प्रकार के मोटे अनाज भी होते हैं। जिन्हें अनुर्वर भूमि पर उपजाया जाता है। इनकी बाहरी परत कठोर और रेशेदार होती है और इनसे मोटा आटा मिलता है जो चावल और गेहूं के आदी लोगों को पसंद नहीं आता, किंतु जिसका स्थानीय उपयोग है। यदि नई विधियों का उपयोग करके इन्हें उचित रूप से संसाधित किया जाए, तो इन अनाजों के संरचनागत गुणधर्मों को भोजन सूत्रीकरण के हित में बदला जा सकता है।

पहले ज्वार (चोलम या सोरगम) पर विचार करें। इसे भारी चक्की में पीसकर मोटा आटा प्राप्त होता है, जिससे, विशेषरूप से पश्चिमी भारत में भाकरी नाम की रोटी बनाई जाती है। ज्वार के मोटे भारी छिलके को सूखा उतारने से पोषकों की गंभीर हानि होती है परंतु थोड़े समय के लिए सतह को आरंभिक रूप से भिगोने पर बाद में साधारण चावल चक्की में अपघर्षण से छिलका उतारने में आसानी होती है। ज्वार का आटा चावल के स्थान पर डोसा के लिए बढ़िया उपादान बनता है और यदि गर्म पानी का उपयोग करके लोई बनाई जाए तो स्वादिष्ट चपाती बनती है। फिर भी ज्वार के कण या रवा पकाने में कठिन होता है।

अन्य सामान्य मोटे अनाज बाजरा के संबंध में भी लगभग यही सब सच है।

मकई (भुट्टा) का भारत में अधिकाधिक उत्पादन, मुख्य रूप से मवेशियों के खाद्य या मांड के व्यावसायिक उत्पादन के लिए किया जा रहा है। मैक्सिको में

गीली-पिसी हुई मक्की को नींबू के पानी में पकाकर रात भर भीगने देते हैं। पिसे हुए आटे का उपयोग टॉरटिला नाम की रोटी बनाने में किया जाता है जो कुर्ग की चावल की चपातियों के समान दिखती है। मक्की के रवे की संरचना और महक अच्छी होती है। अमेरिका में शुरू शुरू में बसने वाले गोरी जातियों के लोग मकई को भारतीय (इंडियन) मक्का कहते थे। मकई से ही व्यावसायिक रूप से "कार्न फलैक्स" बनाए जाते हैं। दबाव के अंदर अच्छी तरह पकाने के बाद मकई के दाने भारी बेलनों के बीच से गुजारे जाते हैं, जिससे वे दवकर चपटे हो जाते हैं। इन चपटे टुकड़ों को फिर कुरकुरा होने तक सुखा लिया जाता है जिससे इनमें महक आ जाए। वास्तव में पकाने में कठिन अनेक खाद्य सामग्रियों जैसे मोटे अनाज या साबुत दालें, इस तरह चपटी करना, रसोईघर में उन्हें जल्दी पकाने के लिए एक तकनीकी साधन है। मकई के दानों को गर्म हवा में फुलाकर बना पॉप कॉर्न अब भारत में सामान्य चबैना है। मक्की के अतिरिक्त ज्वार और बाजरा को भी फुलाकर सूक्ष्म रंध्र युक्त चबाने के योग्य संरचना और स्वीकार्य सुवास वाले उत्पाद प्राप्त किए जा सकते हैं। मकई और बाजरा दोनों के पिसे आटे को विशेष रूप से मुरुक्कु, चकली, खारा सेंब और थेंगोली जैसे नमकीन आहार बनाने के लिए उपयुक्त पाया गया है, जिन्हें कुरकुरा बनाने के लिए तल लिया जाता है।

बैंगनी आवरण युक्त छोटे गोल दानों वाला अनाज रागी या नचना कर्नाटक और महाराष्ट्र में सामान्य है। उत्पाद को भिगोकर दो दिनों तक रखकर अंकुरित कर लिया जाता है, फिर सुखाकर थोड़े नमक और मिर्च के साथ पीस लिया जाता है जिसे छोटे बच्चों के लिए दलिया या फिर शेष परिवार के लिए गोलों के रूप में भाप में पकाकर उपयोग किया जाता है। अंकुरित रागी का चूर्ण व्यावसायिक रूप से अलग अलग ब्रांड में उपलब्ध है, जिसका उपयोग पेय या नाश्ते में दलिया के रूप में किया जाता है। रागी को भी गेहूं के समान पीसा जा सकता है।

बार्ली (हिन्दी और बांग्ला में जौ या जब) को उसके बाहरी छिलके से अलग करके उसके सफेद बीजांकुर को अलग कर दिया जाता है जिसे मुक्ता बार्ली के रूप में बेचा जाता है। पौष्टिक दृष्टि से उसमें मांड के अलावा कुछ नहीं है जो बार्ली-जल तैयार करते हुए धुल जाता है। बार्ली का और बड़ा उपयोग बीयर और ह्विस्की के निर्माण में होता है जैसा कि अध्याय 12 में बताया गया है।

मोटे अनाजों में पोषक तत्व

तालिका 1.4 में गेहूं के साथ मोटे अनाजों की संरचना की तुलना की गई है। केवल रागी में प्रोटीन की मात्रा थोड़ी कम होने (फिर भी चावल से अधिक है जो कि 6.4 प्रतिशत है) और अन्य अनाजों में विद्यमान एक से दो प्रतिशत की तुलना में बाजरा में वसा के उच्च प्रतिशत (5.0 प्रतिशत) के अतिरिक्त सभी अनाज विलक्षण

रूप से समान हैं। फिर भी, रागी में कैल्शियम का स्तर अपवाद स्वरूप बहुत प्रभावशाली है जो कि अन्य अनाजों में विद्यमान 10 से 40 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम की तुलना में 344 मिलीग्राम है। क्योंकि बढ़ते हुए बच्चों को उस उम्र में कैल्शियम की आवश्यकता होती है जब उनके दांत और हड्डियां बन रही हों, इसलिए मां का दूध छोड़ देने वाले तथा बढ़ते बच्चों के लिए रागी से भोज्य पदार्थ बनाए जाने की उत्तम संभावनाएं हैं। यही नहीं, ऐसा लगता है कि यह शरीर में क्षार संतुलन बनाए रखता है तथा अंकुरित करने और भूनने के बाद इसका स्वाद भी अच्छा होता है।

तालिका 1.4

गेहूं की तुलना में मोटे अनाजों के पोषक तत्व

	गेहूं	*ज्वार*	*बाजरा*	*मकई (सूखी)*	*रागी*	*(जौ) बार्ली*
			संख्याएं प्रतिशत में हैं			
नमी	12.0	12.0	12.0	12.0	12.0	12.0
कार्बोहाइड्रेट	65.6	72.6	67.9	68.8	72.9	70.1
प्रोटीन	10.8	10.4	11.6	11.3	7.4	11.5
वसा	1.5	1.9	5.0	3.6	1.3	1.3
मोटा रेशा	2.2	1.6	1.2	2.8	3.7	3.9
कुल एश	1.5	1.6	2.3	1.5	2.7	1.2
			संख्याएं प्रति 100 ग्राम/माइक्रोग्राम में हैं			
थायमाइन	350	370	300	420	420	470
रिबोफ्लेविन	160	130	250	190	100	200
नायसिन	5400	3100	2300	1800	1100	5400
			संख्याएं प्रति 100 ग्राम/मिलीग्राम में हैं			
कैल्शियम	45	37	42	10	344	26
लोहा	4	6	5	2	6	3

सागू या साबुदाना

साबुदाना छर्रों जैसी छोटी सफेद गोलियों के रूप में मिलता है जो पकने पर चिपचिपा और पारभासी पुंज बन जाता है। अच्छा भी दिखता है और स्वादिष्ट भी लगता है, किंतु पौष्टिकता की दृष्टि से मांड के अलावा लगभग कुछ नहीं है। पकाने के बाद अर्ध पारदर्शी दिखना उस मांड पर निर्भर करता है, जिसका उपयोग दाने बनाने के लिए किया गया हो। चावल, गेहूं, ज्वार या मकई से बनाया गया साबुदाना न केवल

धीमे पकता है, बल्कि अपारदर्शी बनता है जो लगभग पके हुए चावल जैसा दिखता है। भारत में टैपियोका जैसी जड़ों या कंदों से या मलेशिया और इंडोनेशिया में पारंपरिक रूप से उपजाये जाने वाले सागू ताड़ के तने के गूदे से प्राप्त मांड से साबुदाना बनाया जाता है जो इसे वांछित पारभासी रूप और चिपचिपापन देता है।

तमिलनाडु और केरल में टैपीयोका की जड़ों को छीलकर धोने के बाद स्टील के ड्रम में लगी आरे जैसी रेती का उपयोग करके पानी में विच्छेदित किया जाता है। इससे निकलने वाला टैपियोका-दूध जमाने वाले कूंडों (सैटिंग टैंकों) पर रखी कपड़े की छलनी पर से गुजारा जाता है, जिससे केवल मांड के महीन कण ही छन कर आते हैं। उन्हें जमने, धूप में सूखने देने के बाद धातु की मोटी छलनियों से गुजारा जाता है। इस तरह बने छोटे दानों को कपड़ा मढ़ी लकड़ी की तश्तरियों में रखकर गोलाकार घुमाया जाता है। दाने एक दूसरे से चिपककर गोल आकार धारण कर लेते हैं। फिर उन्हें हल्के से गर्म किया जाता है ताकि उनकी सतह श्लेषीय और कठोर हो जाए, फिर उन्हें गर्म हवा से सुखा लिया जाता है। एक समान श्लेषीकरण आवश्यक है, ताकि साबुदाने के कण, निर्माण और बाद में पकाने के दौरान आपस में न चिपकें। अंत में दाने धूप में सुखा लिए जाते हैं।

पौष्टिक दृष्टि से साबुदाना मांड पर आधारित, प्रति 100 ग्राम में 350 कैलोरी का स्रोत है। यह 87 प्रतिशत मांड और 12 प्रतिशत पानी है, शेष में केवल प्रोटीन, वसा और खनिजों के अंश हैं और कोई विटामिन नहीं है।

दालें और दलहन

विकसित देशों में, लेग्यूम (Legume) या पल्स (Pulse) में मसूर, मूंग, अरहर, मटर आदि और सेम (बालौर आदि) शामिल हैं। भारत में, ग्राम (Gram) मुख्य रूप से दलहनों जैसे चना, मसूर, अरहर, मूंग आदि के खड़े (साबुत) रूप का संकेत देता है, और विखंडित चने, मूंग, अरहर, मसूर आदि के लिए दाल शब्द का उपयोग किया जाता है। दालें भोजन का एक महत्वपूर्ण अंग हैं और अनेक रूपों में उपयोग की जाती हैं। इन्हें मोटे या पतले विशेष प्रकार के बर्तन (बटलोई आदि) में पकाते हैं, या अनाजों के साथ अलग अलग विधियों से मिलाकर खिचड़ी, इडली, डोसा, बड़ा और दही-बड़ा, मुरुक्कु, ढोकला और पूरन-पोली बना सकते हैं। बेसन जैसा चने की दाल का आटा तले हुए नमकीन के लिए महत्वपूर्ण लपसी है और मैसूर पाक जैसी मिठाई के लिए आधार भी है।

भारत में दलहनों की बहुत बड़ी संख्या उपलब्ध है। चना, तुवर या अरहर

दाल, मूंग दाल, मसूर दाल, उड़द या माश दाल, कुलथी और काला तुवर (भारतीय सोयाबीन) तो हमारे प्रतिदिन के सामान्य उपयोग में आते हैं। अन्य कम सामान्य वाल (फलियों से प्राप्त बीज), राजमा (मोठ, सालन या फरासबीन), ऐवर या वालपपड़ी (फील्ड बींस), वाकला (ब्रॉडवींस), लोबिया (कारु पी, चौला), खेरी (मॉठ बीन), सतारी (राईस वीन), सिम (स्कारलेट रनर वीन), गुआर (क्लस्टर बीन), बड़ा सिम (स्वोर्ड बीन), और मूंगफली (ग्राउंड नट) हैं।

फसल में प्राप्त दलहनों का कुछ भाग घर में ही संसाधित करते हैं। परंतु महत्वपूर्ण विशाल मात्रा का उत्पाद होने के कारण, जानवरों की शक्ति का उपयोग करने वाली कोई 10,000 पारंपरिक चक्कियों और बिजली से चलने वाली लगभग 1000 इकाइयों में भी संसाधन होता है। आइए, अपनी अनेक दलहनों की प्रौद्योगिकी पर दृष्टि डालें।

एक या दो भाग

दलहनों को प्रायः दाल में विभाजित करके खाया जाता है और इसका अर्थ यह भी है कि इनका छिलका उतार दिया जाता है। इसमें दो विधियों का उपयोग करते हैं। सूखी विधि में, दाने धूप में, कभी कभी थोड़ा पानी छिड़कने के बाद, सुखा लेते हैं और फिर लकड़ी, लोहे या पत्थर के ऊखल में भारी मूसल से कूट लेते हैं, जिसके बाद विभाजित टुकड़ों से छिलका फटककर अलग कर देते हैं। निश्चित रूप से बड़ी मात्रा में विभाजित टुकड़े प्राप्त होते हैं। हाथ से या बिजली से संचालित घूमते हुए पत्थर या लकड़ी के पाटों के बीच चक्की में पीसना अधिक कौशलपूर्ण, सूखी, ग्रामीण प्रथा है। गीली विधि विशेष रूप से तुवर जैसी दलहनों के लिए उपयोग में लाई जाती है, जिनमें छिलका भीतर की दाल के साथ एक गोंद जैसे पदार्थ के साथ अधिक मजबूती से चिपका होता है। दलहन को कुछ घंटों के लिए पानी में भिगो देते हैं, लाल मिट्टी के साथ मिलाते हैं और 2 से 4 दिनों तक धूप में सुखाते हैं, जिसके बाद उसे कूटकर या चक्की में डालकर दाल बना ली जाती है। उड़द और मूंग जैसी दलहनों में थोड़ा-सा अलसी या एरंड का तेल मिलाकर, धूप में सुखा लेते हैं, फिर उसमें कुछ अपघर्षी पत्थर-चूर्ण मिलाया जाता है और चक्की में पीसकर उसका छिलका उतार लेते हैं। चक्की से पीसने की सभी शैलियों में पहली बार में बिना छिलका उतरे रह गये दाने अलग कर लिए जाते हैं, कभी कभी धूप में सुखाकर और फिर से चक्की में डालकर दूसरी श्रेणी की दाल प्राप्त की जाती है। कुछ मामलों में खड़ी दलहन के बाहरी छिलके को, तेल लगाने के पहले उपयुक्त अंतराल वाले बेलनों के बीच से गुजारकर, खुरच दिया जाता है, ताकि भेदन सरलता से हो सके। इन सभी पारंपरिक विधियों में छिलका उतारने और टुकड़े करने के दोनों कार्य एक ही प्रचालन में हो जाते हैं।

इन सबकी सबसे बड़ी कमजोरी टुकड़ों का ऊंचा अनुपात है। ये छिलकों या चूनी में चले जाते हैं, जिसे मुर्गियों और मवेशियों को खिलाया जाता है। टुकड़ों से साबुत दलों में विभाजित दाल की मात्रा कम प्राप्त होती है। आधुनिक परिष्कृत प्रक्रियाएं चरणबद्ध रूप से आगे बढ़ती हैं। छिलके को ढीला और भुरभुरा बनाने के लिए दलहन को पहले गर्म हवा से उपचारित करते हैं जिससे उसका नमी का स्तर घट जाता है, और फिर उसे अनुकूलन घानी में रखा जाता है, जिसके द्वारा साधारण हवा खींची जाती है। यह तब तक किया जाता है, जब तक कि पूर्ण रूप से छिलका उतारने के लिए नमी का सही स्तर (जो हर दलहन के लिए अलग होता है) न बन जाए। इसे फिर पत्थर की तह वाले बेलनों के बीच से अपघर्षी मार्जन द्वारा साफ कर लेते हैं।

दलहनों में आवरण और भीतरी दाल के बीच एक चिपचिपी परत होती है, जो हर दलहन में अलग अलग प्रकार की होती है। परिणामस्वरूप, हर दलहन के लिए अपघर्षी दबाव, साबुत दलहन को डालने की मात्रा और बेलनों के बीच अंतराल को समायोजित करने की आवश्यकता होती है। जब यह कर लेते हैं, तो लगभग पूरा छिलका निकल आता है। बाद में फिर, एक अन्य क्रिया में साबुत दलहन को हल्के दबाव से आसानी के साथ दाल के दो भागों में विभाजित कर सकते हैं।

दलहन आधारित उत्पाद

बाजार में अनेक दलहनें विभाजित दालों के रूप में मिलती हैं। कुछ संसाधित दानों के उत्पाद भी बड़े पैमाने पर बनाए जाते हैं और हम उनकी प्रौद्योगिकी की छान-बीन कर सकते हैं।

बेसन : यह चने की दाल का आटा है। दाल को धूप में सूखने के लिए रख देते हैं, और जब यह गर्म ही होती है, तभी उसे पत्थर की आटा चक्की में पीस लेते हैं। कभी कभी ज्यादा महीन करने के लिए दुबारा भी पीसते हैं। घर्षण से इतना अधिक ताप उत्पन्न होता है कि बेसन वास्तव में गर्म निकलता है और उसे ठंडा करने की आवश्यकता पड़ती है। होटलों और बड़े संस्थानों में ज्यादा गाढ़ा या पतला घोल बनाने के लिए इसे पानी में पीसा जाता है।

इन लोइयों को, उचित रूप से नमक और मसाले मिलाकर, सांचों से गुजार कर गर्म तेल में डाला जाता है, जिससे सेव, मुरुक्कु और थेंगोल जैसे गहरे तेल में तले नमकीन, गर्म जांगरी और लड्डू प्राप्त होते हैं। केवल चने और उड़द का उपयोग ही इन नमकीनों के लिए क्यों किया जाता है, इसका कारण उनके अत्यधिक लसदार स्वभाव में निहित है, जो उन्हें उत्तम संचन, वहिर्वेधन और बंधन का गुण देता है। पकौड़ों और भाजियों को गहरे तेल में तलने के लिए बेसन के घोल का

उपयोग इसी प्रकार परिपूर्ण उत्पादों में अत्याधिक कुरकुरेपन पर आधारित है, जो अन्य दलहनों के आटे में नहीं है।

फुलाए हुए दाने : हम देख चुके हैं कि चावल, गेहूं और मक्की को फुलाया जा सकता है। भारत में चने और अन्य देशों में लोबिये को भी फुलाया जाता है। धान्य अपने आयतन के 8 से 10 गुना तक फूलते हैं, जबकि चना केवल डेढ़ गुना फूलता है, जिससे हल्का, रंध्रयुक्त, चर्वणीय संरचना और खुशनुमा उत्तेजक स्वाद वाला उत्पाद मिलता है। इसे फुलाने के लिए चने को थोड़ा गर्म करके जरा से पानी से नम करने के बाद गर्म रेत में तब तक भूंजते हैं जब तक कि चने फूटने लगें और हल्की-सी रगड़ से छिलका आसानी से उतरने लगे। बड़े प्रचालनों में आज, घूमते हुए बेलनों में गर्म रेत भरी होती है और मुख्य रूप से मशीनीकृत ये प्रक्रियाएं निरंतर चलती रहती हैं। फुलाए हुए चने स्वयं भी एक नाश्ता हैं परंतु अन्य नाश्तों में मिश्रण के संघटक भी हैं। भुने हुए चावल और वहिर्वेधित सेव का उपयोग करके कुरकुरे मिश्रण बनाए जाते हैं, और भूंजे हुए चनों को गुड़ की चाशनी मिलाकर लड्डू बनाते हैं। चने की पाचकता और पौष्टिकता-परिमाण दोनों अधिक हैं।

तैयार मिश्रण : दक्षिण भारतीय घरों में दालों का उपयोग रसम और सांबर जैसे आहारों को बनाने में आधार के रूप में किया जाता है। ऐसे उत्पादों के लिए व्यावसायिक त्वरित मिश्रण बनाने में पूर्व पक्वता और फिर दाल के निर्जलीकरण पर ध्यान देना आवश्यक है ताकि वह पानी के साथ उबालने पर लगभग तत्काल पुनर्गठित हो जाए। पूर्व पक्वता में और फिर उपयोग की गई सब्जियों को सुखाने में भी सावधानी रखनी जरूरी है, ताकि उसमें मिलाए गए मसालों (मिर्च, मेथी, राई, हींग, धनिया, हल्दी) में भूने जाने की सही महक हो। यह भी निश्चित करना चाहिए कि उसे इस तरह डिब्बाबंद किया जाए कि मिश्रण सूखा बना रहे और उसकी गंध न बिगड़े। अच्छी तरह से बनाए गए उत्पाद उत्तम गुणवत्ता के और बहुत सुविधाजनक हो सकते हैं, फिर भी मसाले के वैयक्तिक तत्व से रहित होंगे, जिस पर भारतीय गृहिणी गौरव अनुभव करती है।

चकली मिश्रण में चावल का आटा, दाल का आटा, मसाले और वसा की आवश्यकता होती है और मिश्रण करने से पहले हर एक को सर्वोत्तम रूप से संसाधित किया जाना चाहिए। भंडारण गुणवत्ता बढ़ाने के लिए डिब्बाबंद करने से पहले इन मिश्रणों को विसंक्रमण हेतु धूमित करना असामान्य नहीं है।

त्वरित मिश्रणों की अन्य श्रेणी इडली और डोसा जैसे परिचित दक्षिणी खमीरयुक्त उत्पादों की है। इन्हें पारंपरिक रूप से टुकड़ा चावल और उड़द दाल को एक साथ

पानी मिलाकर, लंबे समय तक पीसकर और फिर रात भर प्राकृतिक एंजाइमों के द्वारा खमीरीकरण के लिए छोड़कर बनाते हैं। इडली गाढ़े घोल से बना भाप में पकने वाला उत्पाद है, जबकि डोसा एक पतले घोल से तवे पर तला गया चीला (पैनकैक) है। इनके तैयार मिश्रण से घंटों तक पीसने और खमीर उठाने के काम में गृहिणी को छुट्टी मिल जाती है। सिद्धांत यह है कि कार्बन डायआक्साइड गैस के बनने के लिए नानबाई के यीस्ट या बेकिंग सोडा (सोडियम बायकार्बोनेट) जैसे खमीर उठाने वाले कारक का, सही ढंग की रंध्रयुक्त संरचना और स्वाद तथा महक दोनों के लिए चावल और दाल के संघटकों को एक निश्चित अंश में मोटा या महीन पीसा जाए। इसी खमीरीकरण के पीछे जटिल रसायन और जीव-रसायन कारण हैं। यद्यपि चावल कुछ थोड़े सूक्ष्म जीव देता है, परंतु मुख्य भूमिका तो उड़द की दाल की होती है। पहली बात तो यह है कि यह अधिकांश सूक्ष्म जीव देती है, जिसके कारण कार्बन डायआक्साइड गैस और अम्लीय स्वाद वाले पदार्थ मिलते हैं। इसमें एक चिपचिपा पदार्थ भी होता है जो अन्य प्रोटीन घटकों द्वारा बनाए गए झाग को टिकाऊ बना देता है। ये दोनों क्रियाएं मिलकर खमीरीकरण की गैसों को पकड़ लेती हैं, जो घोल के फूलने या उठने में और भाप में पकाने के बाद रंध्रयुक्त संरचना में सहायक होती हैं। कई अन्य दालों में झाग के आधारभूत तत्व पाए गए हैं, किंतु उनमें टिकाऊ बनाने वाला चिपचिपा घटक नहीं होता, और इसलिए उनमें सही ढंग से खमीर नहीं उठता।

किसी दाल के छिलके और उसके भीतरी अंग के बीच विद्यमान गोंद खमीरीकरण की प्रक्रिया और दलहन का छिलका उतारने की प्रक्रिया में भूमिका निबाहते हैं। गुआर फली या क्लस्टर बीन दाल में गोंद वास्तव में आयतन का 40 प्रतिशत होता है, जबकि मुख्य दाल 45 प्रतिशत और छिलका शेष 15 प्रतिशत रहता है। गुआर के गोंद में विलक्षण गुण होते हैं जो इसे खाद्य-उद्योग में मिश्रण बनाने, गाढ़ा बनाने और टिकाऊ बनाने वाले घटक के रूप में, और कागज-निर्माण, कपड़ा, अयस्क-प्लवन और पेट्रोलियम पदार्थों की ड्रिलिंग जैसे अ-खाद्य उद्योगों में, महत्व दिलाते हैं। गुआर की फलियों या सेम को गर्म करके या धूप में पहले सुखा लेते हैं, शैलर या रोलर मशीन में उन्हें फाड़कर छिलका अलग कर दिया जाता है, इसके बाद केवल पिसा हुआ चूर्ण स्वयं एक गोंद पदार्थ रह जाता है। गोंद की शुद्धता बढ़ाकर विभिन्न श्रेणियां प्राप्त की जाती हैं, जो उच्च प्रोटीनयुक्त अवशेष रह जाता है, वह महत्वपूर्ण मवेशी-खाद्य है। भारत में गुआर-गोंद विशाल मात्रा में बनाया और निर्यात किया जाता है।

संपुटिका में प्रोटीन

भारत में प्रोटीन-पौष्टिकता का एकमात्र अवलंब दालें हैं। वे मटन की कीमत से

एक पंचमांश में खरीदी जा सकती हैं और फिर भी मांस के 18 से 19 प्रतिशत स्तर की तुलना में उनमें 23 से 27 प्रतिशत प्रोटीन होता है। किसी समय अंडों, मांस और दूध को बेहतर प्रोटीन समझना एक सामान्य बात थी क्योंकि उनमें आठों आवश्यक एमिनो एसिड का बेहतर संतुलन भी है और इनमें से दो अम्लों, लायसिन और मेथियोनाइन-प्लस सिस्टाइन का स्तर भी ऊंचा है, जो कि प्रायः पूर्ण भोजन में सीमित होते हैं। सारे दाल-प्रोटीनों में लायसिन असाधारण रूप से अधिक पाया जाता है। बहुत-सी दालें तो गुणवत्ता के लिए बहु विज्ञापित सोयाबीन से भी इस संबंध में अधिक संपन्न हैं। दूसरी ओर चावल, गेहूं, बाजरा, ज्वार और रागी जैसे धान्यों में मैथियोनाइन-सिस्टाइन का तो पर्याप्त स्तर है किंतु उनमें लायसिन की कमी होती है। इसलिए जब धान्यों के साथ दालें खाई जाती हैं तो सुदृढ़ीकरण का प्रभाव होता है। परिणामस्वरूप धान्यों और दालों से मिले कुल प्रोटीन की गुणवत्ता दूध या मांस के प्रोटीन स्तर के लगभग बराबर हो जाती है। यदि अंक दिए जाएं, तो दूध और मांस के प्रोटीन को 100 में 70-72 अंक मिलेंगे, जबकि धान्य-दाल के सम्मिश्रण को 60-65 मिलेंगे। भारत में प्रतिदिन की प्रोटीन पौष्टिकता के लिए यह जीवन का एक आश्वस्तिकारक तथ्य है।

दालें हमारे भोजन में अन्य पोषक तत्व भी देती हैं जिनमें से तीन बी-विटामिन, थायमाइन, रिबोफ्लेविन और नायसिन प्रति 100 ग्राम दाल में क्रमशः लगभग 0.45, 0.20 और 2.50 मिलीग्राम के स्तर पर होते हैं। यह मात्रा किसी भी वयस्क की प्रतिदिन की आवश्यकता का लगभग तीसरा, छठा और आठवां भाग है। इस प्रकार, धान्यों से इन विटामिनों के अंतर्ग्रहण में कमी की पूर्ति में दालें उपयोगी हैं। धान्यों से विटामिनों का अंतर्ग्रहण स्वयं काफी अधिक है क्योंकि दालों की अपेक्षा धान्यों का उपभोग 10 से 15 गुना अधिक है। अधिकांश दालों के प्रति 100 ग्राम में 3 से 5 मिलिग्राम लोहा (आवश्यकता का लगभग एक-चौथाई) होता है। चावल परिष्करण या गेहूं की दलाई-पिसाई के विपरीत दलहनों का छिलका उतारने की प्रक्रिया में ये पोषक निकल नहीं जाते क्योंकि वे दलहन के छिलके या उसके निकट नहीं, बल्कि उसके अंग में होते हैं।

बहुत-सी दालों में (विशेष रूप से दलहनों की अपेक्षा सेमों में) ऐसे प्रतिपोषक तत्व होते हैं, जो लाल रक्त-कणों को एक साथ चिपकाए रखते हैं, इसे हेमाग्लुटिनिन कहा जाता है। कच्ची दालों में एक अन्य पदार्थ होता है जो घेघा (गुलकंड) को फुला देने का कारण बनता है, जिसे (उसके अंग्रेजी नाम गोइट्र्‌ के अनुकरण में) गोउट्रोजेन कहा जाता है। इसका प्रभाव अधिकांश दालों में आयोडीन की कमी से और अधिक बढ़ जाता है। एक तीसरा तत्व ट्रायप्सिन-विरोधी है जो ट्रायप्सिन एंजाइम को प्रोटीनों को पचाने से रोकता है। ये तथ्य डराने वाले लग सकते हैं किंतु भाग्यवश ये सारे पौष्टिकता विरोधी तत्व बहुत कम मात्रा में रहते हैं, इसलिए व्यवहार में

कोई हानि नहीं होती। वास्तव में यह देखा गया है कि पकी हुई दाल को घोटकर ऐसे बच्चों को भी सुरक्षापूर्वक दिया जा सकता है, जो एक साल के हो गए हैं, विशेषकर मैथियोनाइन-सिस्टाइन प्रदान करने के लिए थोड़े-से दूध के साथ पौष्टिकता के आधार पर संपूरक के रूप में दे सकते हैं।

फिर भी, भोजन के रूप में दालों में एक कमी है और इसका संबंध प्रोटीन से नहीं, बल्कि कार्बोहाइड्रेट से है। जब मांड या सुक्रोस, ग्लुकोस, फ्रुक्टोस, माल्टोस या गैलेक्टोस जैसी शर्कराएं कार्बोहाइड्रेट में विद्यमान हों, तो पाचक एंजाइम उन्हें बिना किसी कठिनाई के तोड़ सकते हैं, जिससे शरीर को ऊर्जा मिलती है। परंतु दालों में विद्यमान सुंदर से नामों वाली तीन शर्कराएं वर्बेस्कोस, स्टेचियोस, रैफीनोस, इस प्रकार सरलता से सक्रिय नहीं होतीं। तदनुसार वे बड़ी आंत में पहुंच जाती हैं, जहां उपस्थित सूक्ष्म जीव उनमें खमीर उठाकर गैसें पैदा कर देते हैं। इससे बेचैनी और यहां तक कि पीड़ा भी हो सकती है, और बाहर निकालने पर बदबू भी आती है। मूंग की दाल सबसे कम गैस पैदा करती है और इसलिए बच्चों को खिलाने के लिए पसंद की जाती है। उसके बाद तुवर और उड़द की दाल आती है, जबकि चने की दाल सर्वाधिक गैस-निर्माण करती है। 48 से 72 घंटों तक अंकुरित करने से ये कष्टदायक शर्कराएं घटकर अपनी मूल मात्रा की एक-चौथाई या उससे भी कम रह जाती हैं और इस प्रकार खमीरीकरण भी, जैसे कि इडली बनाने में, घट जाता है।

अधिकांश दालों में विद्यमान एक अन्य पौष्टिकता-विरोधी घटक फायटेट कहलाता है, जो फॉस्फोरस युक्त एक यौगिक है। फायटेट थोड़ा उपद्रवी है, क्योंकि यह कैल्शियम, लोहा, मैगनेशियम और जस्ता जैसी धातुओं को भोजन में से शरीर द्वारा अवशोषित करने से रोकता है। जहां भोजन में पर्याप्त खनिज हों, जैसे कि कैल्शियम, तो इसका प्रभाव नहीं होगा, किंतु अन्य खनिजों के मामले में, जिनकी मात्रा प्रायः दालों में कम होती है, स्थिति अधिक गंभीर हो सकती है।

हर गृहिणी जानती है कि दलहनों को पकने में समय लगता है और राजमा, लोबिया तथा चने जैसी कुछ दालों को नर्म होने के लिए रात भर पानी में भिगोकर रखा जाता है। खाद्य-प्रौद्योगिकी ने दाल बनाने की ऐसी विधियां विकसित कर ली हैं कि उन्हें काफी तेजी से पकाया जा सके। एक विधि यह है कि पहले दाल को नर्म कर लेते हैं, फिर उसे पतला पतला चपटा करके सुखा लेते हैं। दूसरा रास्ता यह है कि छिलके को भाप दी जाए, ताकि भीतरी दाल से वह अलग किया जा सके। छिलके को घिस देना या रगड़ देना एक अन्य विधि है। इसमें प्रोटीन पर आक्रमण करने वाले कुछ एंजाइमों से उस पर क्रिया द्वारा छिलके को ढीला कर दिया जाता है। निश्चय ही यह सारी प्रक्रियाएं लागत बढ़ा देती हैं, और चूंकि प्रतिदिन पर्याप्त मात्रा में दलहनों का उपयोग किया जाता है, इसलिए यह इन जल्दी पकने वाले उत्पादों के व्यावसायीकरण में एक महत्वपूर्ण अवरोधी तत्व बन जाता है।

2. तेल व्यापार

वनस्पति तेल, वनस्पति और मार्जरीन

हममें से अधिकांश लोग रसोईघर में पकाने के द्रव में तेल का उपयोग करते हैं, या वनस्पति का उपयोग करते हैं, जो ठोस होता है। सामान्य बोलचाल में जो द्रव होता है, वह तेल कहलाता है और जो ठोस पदार्थ होता है उसे वसा कहते हैं। वैज्ञानिक दोनों के लिए वसा शब्द का प्रयोग करते हैं। भोजन में पोषकों की तीन मुख्य श्रेणियों में वसा एक है, अन्य दो कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन हैं। इस अध्याय में द्रव और ठोस दोनों पदार्थों के लिए वसा शब्द का प्रयोग किया गया है।

ऐतिहासिक विकास

सारे संसार भर में अनादि काल से पकाने के लिए विभिन्न प्रकार की वसाओं का उपयोग किया जाता रहा है। पश्चिम के देशों में पकाने के लिए वसा को पशुओं के मांस से प्राप्त करना सामान्य था। सभी प्रकार के मांस में वसा की परतें पाई जाती हैं, जिससे वह चितकबरा दिखाई देता है, और वसा के दाने या पुंज भी, जिसे भारत में चर्बी कहते हैं, विद्यमान होते हैं। यदि चर्बी को पानी के साथ उबाला जाए, तो इन पुंजों से चर्बी फट पड़ती है और ऊपर तैरने लगती है। ठंडा होने पर वह जम जाती है और फिर उसे निकाल लेते हैं। जब ऐसी वसा बकरी या भेड़ के गोश्त से प्राप्त होती है, तब इसे 'टैलो' और सूअर के मांस से प्राप्त होने पर 'लार्ड' कहा जाता है। पश्चिम के लोगों, और चीनी, अमरीकी इंडियनों के लिए अभी हाल तक 'टैलो' और 'लार्ड' पकाने के मुख्य माध्यम थे।

भारत ने एक दूसरा रास्ता अपनाया और हमारी वसा अधिकांशतः वानस्पतिक तेल बीजों या तिलहन से प्राप्त हुई। इनमें सबसे आरंभिक हैं तिल बीज, सरसों बीज और विशेष रूप से समुद्रतटीय क्षेत्रों में नारियल का गूदा। लगता है कि इन तेलों का उपयोग 2700 ई. पू. में विद्यमान सिंधु घाटी सभ्यता के भी पहले से हो रहा है। वास्तव में, प्राचीन काल से चले आ रहे इन पारंपरिक तेलों में एकमात्र मुख्य

परिवर्धन मूंगफली का तेल है, जो कि सोलहवीं शताब्दी में वास्कोडिगामा का अनुगमन करके आए पुर्तगाली व्यापारी लेकर आए थे। आज मूंगफली का तेल हमारा मुख्य तेल है, जो कि वानस्पतिक तेलों के संपूर्ण उत्पादन का आधे से भी अधिक भाग है। इसके बाद सरसों का तेल, फिर करडी या कुसुम का तेल तथा गम तिल का तेल और अन्य आते हैं।

ये सारे द्रव तेल हैं, किंतु भारत में घी के रूप में एक बहुत महत्वपूर्ण ठोस वसा थी। इसका विकास आर्यों के आगमन के बाद हुआ होगा, जो लगभग 1500 ईसा पूर्व के बाद आवेगों में आते रहे, क्योंकि उन्होंने ही सबसे पहले पशुओं को घरेलू बनाया। घी की लोकप्रियता के अनेक कारण हैं : आकर्षक गंध, स्वाद और अनुभूति, चिरोट्टी और मैसूर पाक जैसे आहारों के लिए आवश्यक परतदार संरचना को बनाने का ठोस वसा का गुण, पवित्र गाय के साथ संबंध, और बच्चों के लिए भी सरल और पूर्ण पाचकता। आर्थिक रूप से समर्थ होने पर भारतीय पाक-प्रणाली में घी का स्थान गौरवपूर्ण रहा है। विकल्प वानस्पतिक तेल था। हम अध्याय 3 में दुग्ध उत्पादन के रूप में घी पर फिर चर्चा करेंगे, और यहां वानस्पतिक तेल के बारे में ही चर्चा करेंगे।

पारंपरिक तेलों का निर्माण और उपभोग

द्रव तेल पारंपरिक रूप से घानी या कोल्हू में दबाव को काम में लाकर तेल बीजों से प्राप्त करते हैं। इसमें लकड़ी, पत्थर या लोहे का बना एक कुंड या ओखली होती है, जिसमें एक मोटा और मजबूत मूसल एक भारवाही पशु द्वारा उसके आसपास गोल चक्कर में घूमते हुए घुमाया जाता है। बीजों को ओखली में डालते हैं और बीच बीच में पानी से नम करते रहते हैं, मूसल की निरंतर धीमी गति के कारण घर्षण से बीज गर्म होने लगते हैं और मूसल तथा कुंड की दीवार के बीच पड़ते दबाव से तेल बाहर निचुड़ आता है। माना जाता है कि इस क्रिया में तेल पानी के द्वारा स्थानांतरित हो जाता है। मूंगफली, सरसों और तिल जैसे तेल बहुल बीजों से उनमें विद्यमान तेल का तीन-चौथाई या अधिक घानी में दबाकर प्राप्त कर सकते हैं।

एक अन्य विधि में, जो व्यापक स्तर की अपेक्षा घर में तेल बनाने के लिए उपयोग में लाई जाती है, पानी के साथ कुचले हुए तेल बीजों को उबाल लिया जाता है और जब तेल ऊपर तैरने लगता है, तब उसे काछकर निकाल लेते हैं। विशेष रूप से नारियल के ताजा गूदे या सूखे खोपरे से इसी प्रकार नारियल का तेल बनाते हैं।

इन विधियों से प्राप्त किए गए तेल उसी रूप में उपयोग किए जाते थे, जिस रूप में वे प्राप्त होते थे। इस प्रकार तेल की सहज गंध और रंग बने रहते थे। फलस्वरूप

इसके कारण कुछ स्थानीय तेलों के लिए सुस्पष्ट अभिरुचियां विकसित हुईं। अपनी विशिष्ट इत्र जैसी सुगंध के कारण नारियल का तेल केरल में उत्कृष्ट समझा जाता है। घानी में बनाए गए सरसों के तेल में एक तेज तीखापन होता है। इस गंध के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी यौगिक एलिल आइसोथियोसायनेट कहलाता है। यह बंधे हुए रूप में बीज में ही विद्यमान होता है, जिसमें से यह एक एंजाइम के द्वारा मुक्त होता है, जो बीज में ही प्रसुप्त पड़ा रहता है। धीमी पेराई की क्रिया के दौरान घानी में सामान्य गर्मी विकसित होने पर यह प्रक्रिया होती है। वास्तव में गीलेपन और गर्मी की ये स्थितियां ऐसी एंजाइम प्रतिक्रिया के लिए लगभग आदर्श हैं। सरसों का तेल जितना तीखा होता है उतना ही अधिक वह बंगाल, उत्तर प्रदेश, पंजाब और हरियाणा में खाना पकाने के लिए अच्छा समझा जाता है। तिल के तेल में एक उत्तेजक प्राकृतिक गंध होती है और उसमें भंडारण के उत्कृष्ट गुण होते हैं। यह हमेशा से भारत के अनेक भागों में उत्कृष्ट समझा जाता है, विशेष रूप से दक्षिण में, जहां इसका एक नाम 'मीठा तेल' भी है।

वसा के आंतरिक अवयव

सारे तेल और वसा, ग्लिसरोल (माधुर्यकारक तत्व) के साथ वसीय अम्लों का सम्मिश्रण हैं। ग्लिसरोस और कुछ नहीं, बल्कि लोकप्रिय ग्लिसरीन है और इसकी रासायनिक संरचना में त्रिशूल के समान तीन कांटे होते हैं। वसीय अम्ल मछली की रीढ़ के समान होते हैं। (पृष्ट 34 पर चित्र देखें) कार्बन परमाणुओं की लड़ी होती है, जिससे हाइड्रोजन (उद्जन) परमाणु चिपके रहते हैं। पिछले छोर पर एक अम्लीय या

क्या वसीय अम्ल ऐसे दिखाई देते हैं

मछली की
रीढ़ की हड्डी

स्टिअरिक अम्ल
(संतृप्त)

```
    H H H H H H H H H H H H H H H H H
    | | | | | | | | | | | | | | | | |    //O
H - C-C-C-C-C-C-C-C-C-C-C-C-C-C-C-C-C-C
    | | | | | | | | | | | | | | | | |    \
    H H H H H H H H H H H H H H H H H     OH
```

ओलीक अम्ल
(असंतृप्त
एक दोहरा बंध)

```
    H H H H H H H H     H H H H H H H
    | | | | | | | |     | | | | | | |    //O
H - C-C-C-C-C-C-C-C-C=C-C-C-C-C-C-C-C-C
    | | | | | | | | | | | | | | | | |    \
    H H H H H H H H H H H H H H H H H     OH
```

लिनोलीक अम्ल
(असंतृप्त
दो दोहरे बंध)

```
    H H H H H       H       H H H H H H H
    | | | | |       |       | | | | | | |    //O
H - C-C-C-C-C-C=C-C-C=C-C-C-C-C-C-C-C-C
    | | | | | | | | | | | | | | | | |    \
    H H H H H H H H H H H H H H H H H     OH
```

कारबोक्सिल समूह होता है। ऐसे तीन वसीय अम्ल इन कारबोक्सिल पूंछों से ग्लिसरोल के तीन कांटों से चिपके होते हैं। वसीय अम्ल कई प्रकार के हैं, किंतु सामान्यतया चार प्रकार के पाए जाते हैं, और एक से दूसरी वसा में अंतर केवल उनकी तुलनात्मक मात्रा में निहित है। दो सामान्य वसीय अम्ल हैं—पॉमिटिक और स्टिअरिक : पहले की रीढ़ में 16 कार्बन हैं तो दूसरे में 18, और दोनों कार्बनों में हाइड्रोजन परमाणु पूरी तरह से भरे हुए हैं, इसलिए इन वसीय अम्लों को संतृप्त (सेचुरेटेड) कहा जाता है।

दो अन्य सामान्य वसीय अम्लों में, कुछ खाली स्थान हैं : एक खाली स्थान का अर्थ है कि दो हाइड्रोजन परमाणु गायब हैं। यह दूसरे बंधन से दर्शाया गया है, और यदि यह विद्यमान हैं तो यह असंतृप्तता (अनसेचुरेशन) दर्शाता है। यहां दो बहुत सामान्य असंतृप्त वसीय अम्ल हैं। ओलीक (तैलीय) अम्ल में उसके 18-कार्बन रीढ़ के ठीक बीच में एक दोहरा बंधन है, लिनोलीक अम्ल में ऐसे दो दोहरे बंधन हैं, एक ठीक बीच में और एक कारबोक्सिल पूंछ से और आगे स्थित है। सचित्र उदाहरण में वसीय अम्ल अधिक और असंतृप्त वसीय अम्ल कम हैं और यहां तक कि असंतृप्त अम्लों का लिनोलीक की अपेक्षा ओलीक होना अधिक संभावित है। एक द्रव तेल में दोनों असंतृप्त अम्लों का एक ऊंचा अनुपात होगा,

किंतु विभिन्न तेलों में ओलीक और लिनोलीक अम्लों के अनुपात अलग अलग होंगे।

तेल को शोधित क्यों किया जाता है?

ताजा बीजों को कुचलकर बनाए गए ताजा तेल में सारे वसीय अम्ल ग्लिसरोल से बंधे रहते हैं, किंतु यदि बीज पुराना है या तेल को लंबे समय तक रखा गया है, तो कुछ वसीय अम्ल नमी या एंजाइमों के कारण ग्लिसरोल से अलग हो जाते हैं। यह ऐसी प्रक्रिया है जो हवा, गर्मी और प्रकाश के कारण तेज हो जाती है। इन वसीय अम्लों में गंध और स्वाद, दोनों होते हैं। इससे भी गंभीर बात यह है कि उन पर हवा में उपस्थित आक्सीजन शीघ्र ही आक्रमण करके छोटे छोटे खंडों में तोड़ देती है, जिनमें बहुत बड़ी बासीपन की गंध होती है। यही वसा और वसायुक्त आहारों के बासीपन का मूल कारण है।

प्राकृतिक तेल सामान्य रूप से पीलापन लिए हुए दिखते हैं, जो कि तेल बीजों से आए रंजक पदार्थों का परिणाम है। हमारे सारे पारंपरिक तेल, तिल, सरसों और मूंगफली रंग युक्त हैं। कुछ अन्यों की अपेक्षा सरसों जैसे तेल अधिक रंग युक्त हैं। यहां तक कि जो तेल पकाने के काम में नहीं लाए जाते, उनमें भी पीलापन लिए भूरा आभास होता है, जैसे कि एरंड का तेल जो कि विरेचक भी है और गांव की गाड़ियों के पहियों को चिकना करने के लिए उपयोग किया जाता है और अलसी का तेल, जो रंग बनाने के काम आता है। सोयाबीन का तेल हरी आभा लिए पीले रंग का होता है जिसमें सेम जैसी या कटु गंध होती है। बिनौले का तेल रंग में एकदम काला होता है, जैसा कि मोटरगाड़ियों में उपयोग किया हुआ इंजन का तेल होता है।

यह स्पष्ट है कि ये नए तेल उस रूप में पकाने के काम में नहीं लाए जा सकते जैसे कि वे प्राप्त किए जाते हैं। उन्हें उन्नत करना पड़ता है। यह काम परिष्करण, विरंजन और निर्गंधीकरण की तिहरी, संसाधन प्रक्रिया द्वारा करते हैं, जो वानस्पतिक तेल से रंग और गंध को निकाल देती है। चूंकि ऐसे सौम्य तेल अब लोकप्रिय हो गए हैं, इसलिए मूंगफली जैसे तेलों से भी रंग और गंध मिटाने की प्रथा बन गई है। सरसों, नारियल और तिल जैसे तेलों को अभी भी अपरिष्कृत रूप में पसंद किया जाता है, परंतु उन्हें भी इसी प्रकार परिष्कृत कर सकते हैं।

परिष्करण प्रक्रिया में, तेल के साथ किसी क्षारीय पदार्थ, सामान्य रूप से कास्टिक सोडा (सोडियम हाइड्रोक्साइड) को मिलाया जाता है। दोनों को किसी बड़े पात्र में खूब अच्छी प्रकार से मिलाते हैं। विद्यमान मुक्त वसीय अम्ल कास्टिक के साथ मिल जाते हैं, जो कुछ रंजक पदार्थों को भी संकलित कर लेता है। जब कास्टिक का घोल निथारा जाता है, तो गर्म पानी के साथ एक या दो बार धोने के बाद,

प्राप्त हुआ तेल मुक्त वसीय अम्लों से रहित होता है और पर्याप्त परिमाण में अपना रंग भी खो चुका होता है। रंग को और अधिक निकालने के लिए, कुछ विशेष पदार्थों की थोड़ी थोड़ी मात्रा के साथ तेल को गर्म करते हैं। ये पदार्थ अवशिष्ट रंजक पदार्थों को अपनी ओर खींचते और सोख लेते हैं। इस प्रकार के एक पदार्थ में विशेष प्रकार की प्राकृतिक मिट्टियां होती हैं, जिन्हें अम्लों से उपचारित और गर्म करके सक्रिय किया जाता है, जिससे वे रंग को सोख लेने का गुण विकसित कर लेती हैं। दूसरे प्रकार के विरंजक पदार्थ में कुछ विशेष प्रकार के काठ कोयले, जैसे चीड़ की लकड़ी, नारियल के खोल को जलाकर प्राप्त किए गए कोयले, विशेष प्रकार का कोयला, भूरा कोयला हैं। इन सबको विशेष रूप से सक्रिय किया जा सकता है, जिससे वे रंग सोखने की क्षमता प्राप्त कर लेते हैं। वास्तविक विरंजन क्रिया में, परिष्कृत तेल को गर्म करते हैं और फिर उसमें इन सक्रिय मिट्टियों और कार्बनों को अच्छी तरह मिलाकर तेल को छान लेते हैं, जिसमें अधिकांश रंग निकल जाता है। फिर भी तेल में गंध रह जाती है और वह पूरी तरह सौम्य नहीं होता। यह काम निर्गंधीकरण अर्थात गंध मिटाने की एक प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। परिष्कृत और विरंजित किया हुआ तेल बहुत उथली तश्तरियों या थालों में फैला देते हैं, उच्च दाब पर भाप को तेल में से गुजारते हैं जबकि इसके साथ साथ कम दाब या निर्वातक को भी सक्रिय कर दिया जाता है। गंधदायक यौगिक भाप के साथ निकल जाते हैं और परिणामस्वरूप मिलने वाला तेल पानी जैसा सफेद और गंधहीन होता है।

तेल में अंतिम रूप से उपचारक विरोधी (एंटी आक्सीडेंट) कहलाने वाले संश्लिष्ट रसायन बहुत लघु मात्रा में (0.05 प्रतिशत) मिला देते हैं जिससे परिष्कृत तेल में बासीपन की गति धीमी पड़ जाती है, किंतु भारत में ऐसे संयोजन के लिए विशेष अनुमति की आवश्यकता होती है।

उद्‌जनीकरण (हाइड्रोजनेशन)

उद्‌जनीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें द्रव तेल को धीमे धीमे ठोस वसा में बदल दिया जाता है। यह समझने के लिए कि ऐसा क्यों होता है, हमें वापस वसीय अम्लों की ओर जाना पड़ेगा। याद कीजिए कि इनमें एक कारबोक्सिलिक समूह होता है, जो कार्बन परमाणुओं की लंबी शृंखला के अंतिम सिरे पर होता है, जिससे हाइड्रोजन के परमाणु चिपके होते हैं।

यदि किसी द्रव तेल को ठोस बनाना है, तो असंतृप्त अम्लों को, विशेष रूप से लिनोलीक अम्ल को हाइड्रोजन मिलाकर संतृप्त करना होगा। इसके साथ ही ओलीक अम्ल को संतृप्त नहीं करना चाहिए, क्योंकि उससे वह स्टीअरिक अम्ल बन जाता है, जो वसा को बहुत कठोर बना दे सकता है। यही नहीं, उद्‌जनित

उत्पाद मुंह में तत्काल घुलेगा भी नहीं। यह मुंह में बहुत अरुचिकर चिकनाई की अनुभूति छोड़ता है। रेफ्रिजरेटर से मैसूर पाक या हलवे जैसी मिठाई निकालकर अपने मुंह में रखते हुए आपने ऐसा अनुभव किया होगा (इनके निर्माण में ठोस वसा का उपयोग किया जाता है) हाइड्रोजनेशन की क्रिया केवल वही करती है जिसकी आवश्यकता है। यह लिनोलीक अम्ल के दुहरे बंधनों में से एक को संतृप्त करती है, और ओलीक अम्ल को नाममात्र के लिए संतृप्त करके स्टीअरिक बनाती है। कुल मिलाकर वसा कठोर हो जाती है।

मान लीजिए कि परिष्कृत तेल को एक बड़े पात्र में कोई ले और उसे गर्म करे। अब यदि गैस हाइड्रोजन बुलबुलों के द्वारा तेल में मिलाएं तो यह संतृप्त नहीं होगा : हाइड्रोजन को पानी और उसे असंतृप्त दुहरे बंधनों में स्थानांतरित करने के लिए किसी चीज की आवश्यकता पड़ेगी। यह काम किसी उत्प्रेरक के उपयोग द्वारा किया जाएगा जिसमें एक प्रकार के रंध्रयुक्त पदार्थ पर निकल के बहुत छोटे कण पतले पतले फैलाने पड़ेंगे। यह उत्प्रेरक का वहन करने वाला सहायक पदार्थ तेल के पुंज में समान रूप से लटका दिया जाता है, जिसके साथ पैडल लगा हुआ एक विलोड़क जुड़ा होता है, जो उसे सारे समय हिलाता रहता है। धीमे धीमे द्रव तेल ठोस होने लगता है, और यह तब तक किया जाता है जब तक कि पिघलने का बिंदु 37° सेल्सियस तक न पहुंच जाए जो कि हमारे शरीर के तापमान से बस थोड़ा ही कम है। फिर वसा को बर्तन के बाहर निकाल लेते हैं। उत्प्रेरक और वाहक को अनेक कैनवास कपड़ा लगे चौखटों से छानकर अलग कर देते हैं। ये चौखटे 'फिल्टर प्रेस' में एक साथ आजू बाजू लगे होते हैं। अंतिम चरण के रूप में उद्जनित तेल को फिर से निर्गंध किया जाता है, ताकि हाइड्रोजनेशन के दौरान यदि थोड़ी बहुत गंध विकसित हो गई हो तो वह भी निकल जाए।

भारत में, इस प्रकार बनाए गए हाइड्रोजनेटेड उत्पादों में कुछ चीजें मिलाना कानूनी रूप से अनिवार्य है। चूंकि वनस्पति भौतिक रूप से घी के समान दिखता है, इसलिए घी में मिलावट करने के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है। इसे रोकने के लिए, तिल का तेल 5 प्रतिशत मिलाया जाता है। यह इसलिए कि प्रयोगशाला में किए जा सकने वाले कुछ रंग परीक्षणों में तिल का तेल प्रतिक्रिया करता है। इसलिए, इसकी उपस्थिति और प्रकारांतर से घी में वनस्पति की उपस्थिति पता लगाई जा सकती है। वनस्पति की पौष्टिकता बढ़ाने के लिए उसमें प्रति 100 ग्राम में लगभग 760 माइक्रोग्राम विटामिन 'ए' मिलाना अनिवार्य कर दिया गया है, ताकि इतनी मात्रा में वनस्पति का उपयोग करते हुए एक वयस्क की विटामिन 'ए' की कुल आवश्यकताओं को, जो कि 750 माइक्रोग्राम है, पूरा करने की अपेक्षा की जा सके। व्यवहार में, भंडारण और पकाने के दौरान इस विटामिन 'ए' की गुणवत्ता अपेक्षाकृत जल्दी नष्ट हो जाती है, और यह संदेहास्पद है कि उपभोक्ता

द्वारा इसके अधिकांश का वास्तव में उपभोग होता भी है या नहीं। यदि निर्माता चाहे, तो थोड़ा विटामिन 'डी' भी मिलाया जाता है। यह विटामिन संयोजन डिब्बे पर दर्शाया जाता है।

वनस्पति का पोषक गुण सुधारने के लिए अभी हाल ही में एक कदम और भी उठाया गया है। जैसा कि हम देख चुके हैं, हाइड्रोजनेशन प्रक्रिया लिनोलीक अम्ल का स्तर कम कर देती है, और हाइड्रोजनेटेड उत्पाद में अम्ल का केवल लगभग 2 से 5 प्रतिशत ही रह जाता है। लिनोलीक अम्ल शरीर के लिए आवश्यक है, जिसे वह स्वयं अपने आप नहीं बना सकता, और भोजन से ही उसकी पूर्ति होनी चाहिए। शरीर में अम्ल अनेक महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाता है। एक तो यह त्वचा को लचीला बनाता है, विशेष रूप से शिशुओं में (मां के दूध में उपस्थित वसा में पर्याप्त अनुपात में अम्ल होता है, किंतु गाय या भैंस के दूध में और उनसे बने बाल-आहारों में उपस्थित वसा में लिनोलीक अम्ल अपेक्षाकृत नहीं होता) लिनोलीक अम्ल का एक अन्य कार्य एथरोस्क्लेरोसिस से संबंधित है। इस रोग में रक्त-वाहिनियों के आंतरिक अस्तर पर परतें जम जाने से वे अवरुद्ध हो जाती हैं, और जब इसके परिणामस्वरूप हृदय की धमनियों तक रक्त अपर्याप्त मात्रा में पहुंचता है, तब वे काम करना बंद कर सकती हैं। यह दर्शाने वाले पर्याप्त प्रमाण मिले हैं कि लिनोलीक अम्ल से संयंत्र द्रव तेल जैसे कुसुम, तिल, बिनौला और मूंगफली के तेल रक्त-वाहिनियों की दीवारों पर इस तरह की परतों को बनाने से रोकते हैं। यह निश्चय करना अपेक्षाकृत कठिन है कि प्रतिदिन ऐसा कितना लिनोलीक अम्ल आवश्यक है। किंतु, चूंकि वनस्पति में यह बहुत कम होता है, इसलिए 5 प्रतिशत तिल के तेल के अतिरिक्त, इस अम्ल से युक्त स्वयं तिल या कुसुम जैसा तेल 5 प्रतिशत और मिलाए जाने का निर्णय किया गया है। परिणामस्वरूप डिब्बे में बंद और हमारे द्वारा खरीदे और खाए जाने वाले तैयार वनस्पति में लगभग 7 से 10 प्रतिशत लिनोलीक अम्ल होता है।

नवीनतम शोध से लिनोलीक अम्ल के महत्व के नए प्रमाण सामने आए हैं। शरीर में अम्ल प्रोस्टाग्लैंडिन कहलाने वाले एक संश्लिष्ट यौगिक में परिवर्तित हो जाता है। शरीर में प्रत्येक अवयव स्वयं अपने प्रकार के प्रोस्टाग्लैंडिन बनाते हैं, और लगता है कि उनके बहुत-से महत्वपूर्ण कार्य हैं। प्रोस्टाग्लैंडिन रक्तचाप नियमित करते हैं और मांसपेशियों के संकुचन तथा रक्त के थक्के जमाने में भूमिका निभाते हैं। लगता है कि वे स्नायुओं के द्वारा मस्तिष्क तक संदेशों के प्रसारण में भी शामिल हैं। वे उर्वरता, उचित रूप से गर्भाधान और बच्चों के सामान्य प्रसव में भी लिप्त हैं। इसलिए लिनोलीक अम्ल की पर्याप्त पूर्ति को निश्चित करना समझदारी है क्योंकि वे हमारी रसोई या भोजन की मेज पर उपयोग किए जाने वाली वसा में, प्रोस्टाग्लैंडिन के स्रोत हैं।

पकाने के लिए वसा का चयन

जैसा कि अब करते हैं, अनिवार्य रूप से थोड़ा द्रव तेल संयोजित करने के बावजूद, वनस्पति को लिनोलीक अम्ल का बढ़िया स्रोत मानना कठिन है। नारियल और सरसों के तेल भी बढ़िया स्रोत नहीं माने जाते। वास्तव में नारियल तेल में बहुत सारे संतृप्त वसीय अम्ल होते हैं, जिसके कारण यह सर्दी के महीनों में ठोस बन जाता है। जो केश तेल के रूप में इसका उपयोग करते हैं उन्होंने शीत ऋतु में तेल को पिघलाकर बोतल से बाहर निकालने में होने वाली परेशानी को अनुभव किया है। नारियल तेल का लिनोलीक अम्ल केवल 2 प्रतिशत है। सरसों का तेल द्रव है, फिर भी उसमें केवल 15 प्रतिशत लिनोलीक अम्ल है। इसके अतिरिक्त एक बड़ी मात्रा में, 40 प्रतिशत से भी अधिक एक असामान्य वसीय अम्ल इसमें मौजूद होता है जिसे इरूसिक अम्ल कहा जाता है। इसकी रीढ़ 22 कार्बन की होती है जिसमें केवल एक दुहरा बंधन होता है। पशुओं पर किए गए परीक्षण में पाया गया है कि इरूसिक अम्ल हृदय की मांसपेशियों में घुसपैठ करके वहीं जम जाता है, जिससे उनका लचीलापन कम हो जाता है। फिर भी, जिन्होंने सरसों के अतिरिक्त कोई अन्य तेल नहीं खाया, उन लोगों के हृदय की शव परीक्षा में कोई असामान्य बात दिखाई देती नहीं लगती, इसलिए शायद इरूसिक अम्ल से मानव शरीर प्रभावित नहीं होता। घी में भी केवल 2 प्रतिशत लिनोलीक अम्ल और साथ में काफी अधिक संतृप्त अम्ल होते हैं, फिर भारत में पकाने के वसा माध्यम के रूप में इसकी प्रतिष्ठा बहुत ऊंची है।

कुछ विशेष सुवासित बनाने के उद्देश्य से, ये अपरिष्कृत तेल भारतीय पाक-प्रणाली में अपेक्षाकृत महत्वपूर्ण हैं। नारियल-तेल की महक के बिना केरल का अवियाल संपाक अपना आकर्षण खो देगा। इसी प्रकार किसी अन्य तेल में बने केले के चिप्स भी मजेदार नहीं लगेंगे। सरसों के तेल के तीखेपन के अभाव में बंगाली मछली या झींगा करी अरुचिकर भोजन होगी। चपाती पर या कुछ मिठाइयों में या पुलाव में घी की सुवास आनंददायक होती है। केक बनाने के लिए वनस्पति या शॉर्टनिंग (चर्बी) कहलाने वाली विशेष हाइड्रोजनेटेड वसा अच्छी और हल्केपन तथा संरचना के लिए आवश्यक होती है। स्वाद के इन आनंदों को छोड़ देना खेदजनक बात होगी।

हमें छोड़ना भी नहीं चाहिए। इन वसाओं का एकांतिक प्रयोग ही हमारे लिए पीड़ादायक हो सकता है। हमें केवल करना यही है कि हम इन वसाओं से केवल किसी एक को ही न अपनाएं बल्कि हमारे अधिकांश भोजन पकाने में लिनोलीक अम्ल की अधिकता वाले द्रव तेलों का उपयोग करें। सेफ्लावर अर्थात करड़ी या कुसुम के तेल में सबसे अधिक लगभग 70 प्रतिशत यह अम्ल है, तिल के तेल में 40 प्रतिशत और मूंगफली के तेल में 20 प्रतिशत है। भारत

में नए प्रविष्ट होने वाले सनफ्लावर (सूरजमुखी) के तेल में इसकी मात्रा लगभग 50 प्रतिशत है।

पाम (खजूर) के तेल में लगभग 10 प्रतिशत और पामोलिन में लगभग 12 प्रतिशत लिनोलीक अम्ल होता है। वनस्पति तेलों की पंक्ति में ये नए प्रवेशकर्ता तेल क्या हैं? पाम-तेल, नारियल परिवार के एक वृक्ष तैलीय पाम (खजूर) के फलों से निकाला जाता है। मलेशिया में बड़े पैमाने पर इसकी खेती होती है और यह तेल बहुत बड़ी मात्रा में प्राप्त किया जाता है। देश में तेलों की कमी की पूर्ति करने के लिए भारत इसे आयात कर रहा है, वैसे ही जैसे पहले हमने संयुक्त राज्य अमेरिका से सोयाबीन-तेल, कनाडा से रेप/सरसों-तेल और सोवियत संघ से सूरजमुखी का तेल आयात किया था। इन सबकी अपेक्षा पाम-तेल सस्ता है। यद्यपि यह तेल हमारे लिए नया हो सकता है, किंतु अफ्रीका और मलेशिया में यह लंबे समय से पकाने के काम में उपयोग किया जाता रहा है। पाम-तेल के साथ एक तकनीकी समस्या यह है कि इसमें जल्दी ही ठोस हो जाने की प्रवृति है और जब इसे जहाजों से उतारना होता है, तब इस कारण कठिनाई होती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए पाम-तेल से अधिक ठोस भाग को निकाल देते हैं, और द्रव भाग, जिसे पामोलीन कहते हैं बिना कठिनाई के जहाज पर चढ़ाया जा सकता है।

पौष्टिकता का कोण

लिनोलीक अम्ल के माध्यम से हम पहले ही पौष्टिकता की चर्चा में हैं। हमें प्रतिदिन कितनी वसा की आवश्यकता है? कोई भी निश्चित नहीं बता सकता, और यहां तक कि इन मामलों में निर्णायक भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (इंडियन काउंसिल आफ मेडिकल रिसर्च) भी कोई निश्चित आंकड़ा नहीं देती। वे केवल यही सुझाव देते हैं कि, संतुलित भोजन में कुल कैलोरी का लगभग 18 से 20 प्रतिशत वसा से प्राप्त होना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि सामान्य सक्रिय आदतों वाले एक वयस्क आदमी को प्रतिदिन लगभग 45 ग्राम और स्त्री को 40 ग्राम वसा की आवश्यकता होती है। किशोर बच्चों को भी इतनी मात्रा चाहिए, और 5 वर्ष का बच्चा लगभग 25 ग्राम वसा से काम चला सकता है। इससे अधिक मात्राओं से बचना चाहिए। इससे कम मात्राएं कोई हानि पहुंचाती हुई प्रतीत नहीं होतीं।

वसा से हमें बहुत सारी कैलोरी मिलती है। जो कुछ हम खाते हैं उसके प्रत्येक ग्राम से कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन केवल चार कैलोरी की पूर्ति करते हैं, किंतु वसा नौ कैलोरी देती हैं। इसलिए वसा को कैलोरी से घनीभूत आहार कह सकते हैं। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि सारे प्रकारों की वसा हमें समान संख्या में कैलोरी देती है। इसलिए कैलोरी की दृष्टि से कहा जाए तो इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि आप कौन-से तेल या वसा के प्रयोग का निर्णय करते हैं। आपके चयन से

आपको वसा से मिलने वाली ऊर्जा की मात्रा प्रभावित नहीं होगी। गंध और स्वाद का भी पौष्टिकता परिमाण से संबंध नहीं है। विभिन्न तेलों की विशिष्ट गंधों का कारण बहुत कम मात्रा में उन सहयोगी पदार्थों की उपस्थिति है, जिनकी कोई निजी पोषक गुणवत्ता नहीं है। ये सहयोगी पदार्थ स्वयं वसा में ही रहते हैं। नारियल या सरसों जैसे गंधयुक्त तेल के स्थान पर किसी द्रव तेल या वनस्पति या घी का प्रयोग करने से कैलोरी के रूप में हमें कोई हानि नहीं होगी।

महत्वपूर्ण लिनोलीक अम्ल के वाहक होने के अतिरिक्त, भोजन में वसा खाने का आनंद देती है। वसारहित भोजन बहुत अरुचिकर और स्वादरहित होता है। वसा भोजन करने के बाद परितृप्ति की एक रुचिकर अनुभूति देती है, जिसका आंशिक कारण यह है कि वसा की उपस्थिति भोजन का, पेट के निचले पाचन क्षेत्र में, उतरना विलंबित कर देती है।

भोजन में वसा ऐसे विटामिनों की वाहक है जो वसा में घुल जाते हैं। विटामिन 'ए' भी इनमें से एक है, घी जैसी वसा छोटी मात्रा में विटामिन 'ए' से युक्त होती है, किंतु यह वनस्पति तेलों में नहीं होती। विटामिन 'डी' भी वसा में घुलनशील है, शार्क और कॉड मछलियों के यकृतों से प्राप्त तेलों में यह विटामिन बहुत अधिक मात्रा में होता है। वसा में विटामिन 'ई' भी होता है, चूहों को इसकी आवश्यकता होती है, परंतु मानवों के लिए यह कहां तक आवश्यक है, इसमें थोड़ा संदेह है। वसा में घुलनशील विटामिनों के वाहक रूप में वसा की भूमिका भारत में हमारे लिए महत्वपूर्ण प्रतीत नहीं होती। हम अपना अधिकांश विटामिन 'ए' एक अन्य विधि से पाते हैं। कैरोटीन कहलाने वाला एक पीला-सा पदार्थ (इसका यह नाम इस पदार्थ की वाहक गाजर पर है) अनेक वनस्पतियों और फलों में विद्यमान रहता है। जब हम उन्हें खाते हैं, तो शरीर उन्हें विटामिन 'ए' में परिवर्तित कर देता है। वसा में घुलनशील एक अन्य विटामिन भी शरीर में ही बनता है। त्वचा में एक ऐसा पदार्थ होता है, जो, जब हम पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है, तो विटामिन 'डी' में परिवर्तित हो जाता है, और यह पदार्थ हमें शाकाहारी भोजनों से प्राप्त होता है।

ऊर्जा देने के अतिरिक्त वसा एक ऐसा साधन है जिसमें शरीर अतिरिक्त ऊर्जा को भंडार करके रखता है, मोटा होना इस बात का निश्चित संकेत है कि वह आवश्यकता से अधिक वसा खा रहा है। कुछ लोगों में वसा का संचय शरीर के कार्य करने में असंतुलन के द्वारा संयोजित होता है। वसा त्वचा के नीचे एक परत बनाती है, और शरीर के तापमान को एक-सा बनाए रखने की भूमिका का निर्वाह करती है। वसा की परतें अस्थि प्रक्षेपों पर गद्दी जैसी पाई जाती हैं या यकृत जैसे कुछ अवयवों के आसपास लिपटी रहती हैं। जब कोई शरीर दबाव में होता है, जैसे कि उपवास में, तो वसा प्रतिरोध को बढ़ाने में सहायता करती है। जब हम पर्याप्त वसा का सेवन करते हैं, तो निरंतर कार्य के लिए हमारी क्षमता बढ़ती है।

मार्जरीन

भारत में मार्जरीन को शायद ही कोई भोजन कह सकता है क्योंकि इसका उपयोग बहुत कम है, किंतु पश्चिम में यह मेज पर तेजी से मक्खन का स्थान लेता जा रहा है, क्योंकि लोग मक्खन जैसी संतृप्त वसा को खाने के प्रति रुचि नहीं रखते क्योंकि उसमें कोलेस्ट्रोल होता है और लिनोलीक अम्ल बहुत कम होता है। मार्जरीन का आविष्कार लगभग सौ वर्ष पूर्व फ्रांस में हुआ था, जब नेपोलियन तृतीय ने मक्खन के विकल्प के लिए पुरस्कार घोषित किया। मूलभूत रूप से यह लगभग 15 प्रतिशत पानी के साथ मिश्रित हाइड्रोजनेटेड वसा है। आज के उत्पाद अनेक रूपों में मक्खन का उन्नत रूप हैं : वे जटिल रूप से सुवासित हैं, उनमें लिनोलीक अम्ल और विटामिनों जैसे अनेक संयोजित पोषकों का ऊंचा अनुपात है। वे इस तरह बनाए जाते हैं कि नर्म बने रहें और रेफ्रिजरेटर से बाहर निकालने के तत्काल बाद भी फैलाने योग्य रहें, वे निम्न कैलोरी के रूप में वजन पर दृष्टि रखने वालों के लिए उपलब्ध हैं (जिसमें लगभग 40 प्रतिशत केवल पानी होता है)। वे निश्चय ही मक्खन की अपेक्षा काफी सस्ते हैं। इस प्रकार तकनीकी ने हमें एक ऐसा उत्पाद दिया है जिसने मक्खन जैसे प्राकृतिक खाद्य को बहुत पीछे छोड़ दिया है। ऐसे उच्च गुण वाले मार्जरीन के लिए, उसके अनेक लाभों को देखते हुए भारत में स्थान की गुंजाइश लगती है। वर्तमान कानूनों के अनुसार रंग और गंध को संयोजित नहीं किया जा सकता, इसलिए मार्जरीन बहुत आकर्षक उत्पाद नहीं है।

बेकरी वसा

बेकरी वसा हाइड्रोजनेटेड वसा है, जो विशेष रूप से केक, बिस्कुट और ब्रेड (डबलरोटी) बनाने के लिए बनाई गई है। महीन ठोस रवों का निर्माण मलाईदार गाढ़ापन और फेंटने से उत्पाद में हवा या नाइट्रोजन का एक बड़ा आयतन देता है। दोनों गुण बेक किए गए उत्पाद में हल्केपन को निश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं (अध्याय 8)।

मोनोग्लिसराइड्स

जब ग्लिसरोस के तीन कंटकों में से केवल एक के साथ कोई वसीय अम्ल जुड़ा होता है, तो जो परिणाम होता है, वह मोनोग्लिसराइड है और ऐसे उत्पाद ग्लिसरोल की बहुलता के साथ वसा की प्रतिक्रिया कराने से बनते हैं। ग्लिसरोल मोनोस्टीअरेट या जी एम एस जैसे मोनोग्लिसराइड शक्तिशाली मिश्रण माध्यम हैं, जिनकी बेक किए गए आहारों, आइसक्रीम और ऐसे ही आहारों के निर्माण में केवल थोड़ी-सी मात्रा आवश्यक होती है।

3. दुग्ध गंगा

दूध और उसके उत्पाद

दुग्ध क्रांति

तीस वर्ष पहले घर के दरवाजे पर बंधी गाय या भैंस से दूध मिलता था। महानगरों और शहरों में अब यह दृश्य बदल गया है और दूध की खुदरा बिक्री बोतलों, प्लास्टिक की थैलियों या विक्रेता मशीनों से होती है। प्रतिदिन की इस घटना के पीछे एक विराट तकनीकी विकास है, जो शताब्दियों से चली आ रही पूरी पारंपरिक प्रणाली में आमूल परिवर्तन कर रहा है। फिर भी, भारत में उत्पादित दूध का केवल एक दशमांश ही अभी आधुनिक प्रणाली से गुजर रहा है, किंतु प्रणाली के विस्तार के साथ साथ यह अनुपात तेजी से बढ़ रहा है। आइए, इस तकनीकी क्रांति पर एक दृष्टि डालें।

दूध ग्रामीण परिवारों से आता है, जिनके पास एक या दो गायें या भैंसें हैं। इन्हें घर पर ही दुहा जाता है और महिलाएं ये दूध संचय-केंद्र तक लाती हैं। बहुत थोड़ी मात्रा में दूध लेकर उसका परीक्षण किया जाता है और गुणवत्ता के अनुसार ठीक उसी दिन भुगतान कर दिया जाता है। इस प्रकार किसान को नकद पैसा मिल जाता है, जिससे वह अपने पशु को ठीक से खिला सके और वह अधिक दूध दे। संग्रह करके एकत्र किया हुआ दूध ट्रक द्वारा शीत-केंद्र पर ले जाया जाता है जहां उसे तत्काल ठंडा किया जाता है, जिससे उसमें विद्यमान जीवाणुओं को बढ़ने से रोका जा सके। दुग्धशाला या डेयरी पास हो तो दूध सीधे वहीं भेज दिया जाता है।

डेयरी में एक निरंतर और व्यस्त क्रम चलता है। अनेक केंद्रों से आए ठंडे दूध को पहले थोड़ा गर्म कर पतला कर लिया जाता है और फिर या तो उसे छान लिया जाता है या सेंट्रीफ्यूज (अपकेंद्रण यंत्र) में गोल घुमाया जाता है। इन दोनों तरीकों से, यदि दूध में कोई अदृश्य अवांछित या विजातीय पदार्थ हो, तो वह निकल

जाता है। इसके बाद दूध को 5 डिग्री या उससे भी कम तापमान तक ठंडा कर देते हैं और यह काम बहुत ठंडे पानी या लवण-जल में डूबे धातु के बहुत पतले, चपटे टिनों से निरंतर गुजार कर किया जाता है। ठंडा करने के बाद दूध का संग्रहण करके विश्लेषण करते हैं और फिर या तो मलाई या मलाईदार दूध मिलाकर उसका मानकीकरण किया जाता है, जिससे प्रतिदिन गृहिणी को समान संरचना का दूध मिले।

निर्जीवीकरण (पैश्चुराइजेशन) का अगला कदम महत्वपूर्ण है। यह नामकरण महान फ्रांसीसी वैज्ञानिक लुई पाश्चर के नाम पर किया गया है, जिसने कोई एक शताब्दी से भी पहले यह बताया कि गर्मी जीवित सूक्ष्म जीवों को मार सकती है और इस प्रकार भोजन को खराब होने से रोका जा सकता है। यही कारण है कि भारतीय घरों में आते ही ताजा दूध को गर्म करने का काम सामान्य बात है। कारखाने में निर्जीवीकरण तापमान जितना कम होगा, उतना ही अधिक समय उसे संक्रमण रहित बनाने में लगेगा। दूध का निर्जीवीकरण 30 मिनट तक 63 डिग्री से. पर या 15 सेकेंड तक 72° से. पर (जिसे उच्च तापमान–न्यून समय पैश्चुराइजेशन या ऑपेराइजेशन कहा जाता है) किया जा सकता है। दोनों प्रकार के जीवाणु, जो वास्तव में हानिकर नहीं हैं (किंतु दूध को खराब कर सकते हैं) और जो रोगजनक कहे जाते हैं, निर्जीवीकरण से नष्ट हो जाते हैं। किंतु यदि जीवाणु पहले ही बहुगुणित होकर बीजाणु बन गए हैं, तो वे निर्जीवीकरण में भी वच जाएंगे और कुछ समय बाद वे दूध में फिर जीवाणु छोड़ेंगे। ताजा दूध को एक बार निर्जीवीकरण करके तत्काल उसे 5° से. या इससे भी कम तक ठंडा कर दिया जाए, तो न केवल वह सुरक्षित हो जाता है, बल्कि उसे दीर्घ जीवन भी मिल जाता है। इसका अर्थ हुआ कि इसे वितरण के लिए रेल या सड़क के टैंकरों में भरकर (निश्चय ही शीत स्थिति में) 300 किलोमीटर दूर तक के शहरों में ले जा सकते हैं। पुनः आश्वस्त होने के लिए शहर पहुंचने पर ग्राहकों को वितरित करने के पहले एक बार निर्जीवीकरण किया जाता है।

वितरण तीन तरीकों से किया जाता है। एक तो धातु के ढक्कन लगी बोतलों में, जिन्हें वापस करना होता है, और दूसरे प्लास्टिक की मोटी थैलियों में। तीसरा तरीका है वैंडिंग (खुदरा बिक्री) मशीनों द्वारा, जिनसे किसी सहायक कर्मचारी से खरीदे गए धातु के विशेष टोकनों का उपयोग करके ग्राहक के अपने बर्तन में ठंडा किया हुआ दूध निश्चित मात्रा में प्राप्त किया जाता है। बोतलों से वितरण प्रणाली के परिणामस्वरूप दूध पाने के लिए लंबी पंक्तियां लगने लगी थीं। प्लास्टिक की थैलियों में वितरण के द्वारा इससे तो बचा जा सकता है, लेकिन विशाल संख्या में थैलियां कूड़े के रूप में निकलती हैं। वैंडिंग मशीन में ये दोनों बातें नहीं होतीं, परंतु उसे बार बार दूध भरने, ठंडा रखने और कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है।

इस प्रकार दूध का किसान-उत्पादक अपने दूध के लिए उचित और स्थिर मूल्य नकद प्राप्त करता है, और उपभोक्ता को भी मानक गुणवत्ता के पौष्टिक दूध की सुविधाजनक रूप से पूर्ति होती है।

दूध का उत्पादन और वितरण

विराट संगठनात्मक परिवर्तनों ने इस सरल तथ्य को प्रोत्साहित किया है कि हम सब को दूध मिले। इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ कि लाखों निजी उत्पादकों से दूध एकत्र किया जाए, गुणवत्ता के आधार पर प्रत्येक को उसी दिन नकद मूल्य दे दिया जाए और उन्हें साहूकारों के चंगुल में फंसने से बचाया जाए। ऐसे दूध-उत्पादक किसानों की सहकारी समितियों ने डेयरी कार्य के लिए आवश्यक अन्य सुविधाओं के सामान्य निर्माण में सहायता की है। कम उत्पादन देने वाली स्थानीय गायों का अधिक उत्पादन देने वाले विदेशी पशुओं के वीर्य से कृत्रिम गर्भाधान कराके ऐसी संतति प्राप्त की गई, जिनका दुग्ध उत्पादन अनेक गुना अधिक है, और इस प्रक्रिया को तीव्र करने के लिए ''बुल-मदर फार्म'' कहलाने वाले कृत्रिम गर्भाधान केंद्र स्थापित किए गए। संकर नस्लों के लिए आवश्यक पौष्टिक चारा और पशु- चिकित्सकीय देखभाल सहकारी समितियों द्वारा स्थापित पशु-आहार-संयंत्रों और स्वास्थ्य इकाइयों द्वारा प्रदान की गई है।

तकनीकी मोर्चे पर धारणा यह है कि संग्रहण के तुरंत बाद ग्रामों से प्राप्त दूध ठंडा करने के लिए दूध शीतल-केंद्रों तक, फिर निर्जीवीकरण के लिए संभरक डेयरियों तक, और रेल या सड़क मार्ग से प्रशीतित परिवहन द्वारा महानगरों में स्थापित मदर डेयरियों तक पहुंचता है, जहां दूध को फिर से निर्जीवीकृत करके नगर निवासियों में वितरित किया जाता है। ऑपरेशन फ्लड प्रोजेक्ट के माध्यम से भारत को विश्व खाद्य कार्यक्रम के अंतर्गत दूध की वसा और मलाईरहित दूध का चूर्ण उपहार के रूप में प्राप्त होता है। इन्हें उचित अनुपातों में असंक्रमित पानी के साथ मिलाकर उचित संरचना का पुनर्गठित दूध बनाने के लिए, जिसे अन्य दूध के साथ मिलाया जाता है, तकनीकें और सुविधाएं विकसित की गई हैं। इस तरह के दूध के विक्रय से प्राप्त धन का उपयोग दूध की आधारभूत संरचना के निर्माण में किया गया है। अपेक्षा है कि कुछ ही वर्षों में देश की सारी मांग को पूरा करने के लिए भारत में पर्याप्त दूध का उत्पादन होने लगेगा। चूंकि दूध एक महंगा आहार है, इसलिए आय के आधार पर इसे खरीदने की एक निश्चित सीमा है। चावल और गेहूं जैसे खाद्यान्न भी अधिशेष में इसलिए नहीं हैं कि प्रत्येक को पर्याप्त खाना मिल रहा है, बल्कि इसलिए है कि प्रत्येक के पास पर्याप्त क्रय क्षमता नहीं है।

दूध के प्रकार

अतीत में हम केवल गाय या भैंस के दूध के बारे में विचार करते थे। दक्षिण भारत में गाय का दूध पसंद किया जाता था, जिसमें 4.5 प्रतिशत वसा होती थी और जो पीला मक्खन व घी देता था। भैंस का दूध वसा (7 से 8 प्रतिशत) और अन्य यौगिकों से अधिक समृद्ध और अधिक मक्खन व घी देता था। इनका रंग भी सफेद होता था। पुनर्मिश्रित या टोंड दूध, जो अब बोतलों या थैलियों में हम तक पहुंचता है, तकनीकी रूप से मानकीकृत उत्पाद है जिसमें 3.0 प्रतिशत वसा और 8.5 प्रतिशत अन्य यौगिक होते हैं, यद्यपि 4.5 प्रतिशत वसा और 8.5 प्रतिशत अन्य यौगिक से युक्त मानक दूध के लिए भी एक कानूनी प्रावधान है। इन सबसे गाय या भैंस के वास्तविक दूध की अपेक्षा मलाई और घी कम मिलेगा, परंतु चाय या कॉफी बनाने या दही जमाने के लिए ऐसा दूध उचित है। इसका अर्थ यह भी है कि उपलब्ध दूध-पूर्ति को और अधिक लोगों तक पहुंचाया जा सकता है।

वितरित किया जाने वाला थोड़ा दूध समांगीकृत होता है, जिसका अर्थ यह है कि दूध को बहुत महीन रंध्रों से गुजारकर वसा को अत्यंत महीन कणों में तोड़ दिया जाता है। यदि ऐसे दूध को रेफ्रिजरेटर में रखा जाए तो उस पर मलाई की मोटी परत नहीं जमेगी क्योंकि वसा के कण सरलता से आपस में संलीन नहीं होते। इसी कारण से समांगीकृत दूध उसी प्रमाण में परिवहन और वितरण में सुविधाजनक है। ऐसे दूध पर घर में मलाई नहीं जमेगी या उससे बनाए गए दही को मथने पर मक्खन भी नहीं बनेगा। फिर भी यह चाय या कॉफी में तत्काल घुल जाता है। शिशु-आहार के रूप में समांगीकृत दूध सुविधाजनक रूप से पतला हो जाता है और बच्चे के पेट में आसानी से पच जाता है।

चूर्ण किए गए उत्पाद

दुग्ध-चूर्ण : दूध में जो 85 प्रतिशत पानी होता है, उसको हटाने से पौष्टिक दुग्ध-चूर्ण प्राप्त होता है। इस प्रकार परिमाण बहुत घट जाता है, जिससे एक सुचालनीय उत्पाद की सुविधा मिलती है जो द्रव दूध की अपेक्षा बहुत कम नाशवान होता है। यदि मलाई अलग करने वाले यंत्र का उपयोग करके, वसा को पहले ही निकाल लें, तो मलाईरहित दूध पाउडर मिलता है, जिसमें कोई वसा नहीं होती। मलाईदार दूध पाउडर में 25 प्रतिशत वसा होती है और मलाईरहित दूध पाउडर में 1.5 प्रतिशत, प्रोटीन क्रमश : 27 और 36 प्रतिशत और दोनों उत्पादों में 5 प्रतिशत पानी तब भी शेष रहता है।

पानी को इन दो में से किसी एक तरीके से हटाया जाता है। एक तो है ड्रम में सुखाना जिसमें एक बेलनाकार पात्र की सतह पर, दूध की पतली धारा प्रवाहित की जाती है। पात्र को भाप का उपयोग करके गर्म किया जाता है जो

पात्र के भीतर स्थान में घूमती रहती है, जहां एक निर्वात बनाया जाता है। ड्रम की सतह पर दूध एक अविच्छिन्न परत के रूप में सूख जाता है, जिसे, उसके साथ लगी एक तीखी धार वाली पत्ती से फीतों के रूप में खुरचकर पीस लिया जाता है। फुहार के द्वारा सुखाने में एक बेलनाकार कोठी के ऊपर टोंटी के जरिए दूध इस प्रकार डाला जाता है कि एक बहुत महीन कुहरा-सा बन जाता है। बेलनाकार कोठी के अंदर 160^0 से. गर्म हवा सर्पिल गति से नीचे की ओर तेजी से गुजारी जाती है, जिससे उत्पाद बहुत तेजी से आलोड़ित होता है। सुखाने वाले यंत्र के फर्श पर दूध का पाउडर हल्के हल्के गिरता है, जिसे यंत्र द्वारा समेट लिया जाता है, जबकि कुछ बहुत बारीक कण, जो आसानी से नीचे नहीं बैठते, उन्हें प्रणाली से लगातार बाहर फेंकी जाती निकास वायु में से एकत्र कर लिया जाता है। मलाईदार दूध के पाउडर में, पर्याप्त वसा होती है, इसलिए इसे नाइट्रोजन के आवरण में हवारहित टिन में सावधानी से बंद करना आवश्यक है, जिससे कि एक बार खोलने पर उसे खराब होने से बचाया जा सके। इसका जल्दी उपयोग कर लिया जाना चाहिए। मलाईरहित दूध पाउडर को सामान्य रूप से प्लास्टिक पोलिथिलिन फिल्म, एल्यूमीनियम फॉइल और कागज को एक साथ चिपकाकर या लेमिनेट करके बनाई गई सम्मिश्रित थैली में बंद किया जाता है ताकि उसमें नमी और हवा प्रवेश न कर सके। फिर इस थैली को सहारा देने के लिए कार्ड बोर्ड के डिब्बे में रखा जाता है। शुष्क-शीत-भंडार दूध के पाउडर को सुरक्षित रखने में सहायता कर सकते हैं।

ड्रम में सुखाए गए दूध-पाउडरों में एक विशिष्ट प्रकार की जली हुई या दुग्ध-शर्करा जैसी गंधी होती है और इनका रंग श्वेताभ होता है। उनकी संरचना मोटी होती है और पानी में उतने जल्दी नहीं घुलते जितने कि फुहार से सुखाए गए उत्पाद, जिनमें प्रोटीन न्यून-ताप-विस्थापित या तकनीकी रूप से कहें तो कम विकृत होते हैं। सूखे दूध में विद्यमान दुग्ध-शर्करा (लैक्टोस) बहुत आर्द्रताग्राही होती है, जिससे गीले मौसम में खुले पैकेट या टिन में पाउडर पिंड रूप धारण कर लेता है और उसे पानी में घोलने में कठिनाई बढ़ जाती है। गर्म पानी मिलाने के पहले दूध-पाउडर के साथ दानेदार शक्कर मिलाने से उसे पानी में घुलने में सहायता मिलती है। दूध-पाउडर में कभी पानी नहीं डालना चाहिए। इससे वह लौंदे के रूप में पिंड बन जाएगा।

शिशु आहार : बच्चों को पिलाने के लिए जब पशुओं के दूध का उपयोग किया जाता है, तो साधारणतया उसमें पानी मिलाकर पतला कर लिया जाता है, जिससे कि उसमें विद्यमान वसा और प्रोटीन उस स्तर तक कम हो जाएं जितने वे मां के दूध में विद्यमान रहते हैं। इसी कारण से अतिरिक्त शक्कर भी मिलाई जाती है। भैंस के दूध से व्यावसायिक रूप में शिशु आहार बनाने के लिए पहले वसा

का स्तर 7 या 8 प्रतिशत से घटाकर केवल 2.5 प्रतिशत कर दिया जाता है। फिर फास्फेट प्रतिरोधी लवण मिलाया जाता है। यह विद्यमान कैल्शियम के साथ प्रतिक्रिया करके दूध का थक्के जमाने वाला प्रतिबल (कर्ड टेंशन) कम कर देता है, जो न केवल इसलिए भी कि बाद में शिशु के पेट में नर्म, सरलता से पचने वाला थक्का बन सके। अब शक्कर मिलाते हैं, ताकि अंतिम रूप से घटकर प्रोटीन 22 प्रतिशत और वसा लगभग 18 प्रतिशत रह जाए। शिशु के लिए आवश्यक निश्चित मात्रा में लोहा भी मिलाया जाता है। उत्पाद को 80^0 से. पर गर्म करके असंक्रमित कर दिया जाता है और फिर पानी की बड़ी मात्रा को हटाने के लिए उसे सांद्रित कर दिया जाता है। इसके बाद समांगीकरण की प्रक्रिया की जाती है। इसके अंतर्गत बहुत महीन टोंटी के द्वारा उच्च दबाव के तहत उत्पाद को गुजारा जाता है, जिससे वसा महीन कणों में टूट जाती है जो उत्पाद की घुलनशीलता को सरल बना देती है। यह समांगीकृत सांद्र फिर या तो ड्रम में सुखाने की प्रक्रिया से या अधिक सामान्य रूप से फुहार द्वारा सुखाने की प्रक्रिया से पाउडर में परिवर्तित कर दिया जाता है। फिर इसमें शिशु की आवश्यकता के अनुरूप मात्रा में विटामिन और खनिज मिलाए जाते हैं। असंक्रमित डिब्बों में नाइट्रोजन गैस के अंतर्गत सारी हवा निकालकर भर देते हैं और ढक्कनों को सील बंद कर देते हैं।

भारतीय मानक संस्थान (आई. एस. आई.) ने वैज्ञानिकों, निर्माताओं और सरकारी निकायों के प्रतिनिधियों की समितियों के माध्यम से सहमति के आधार पर काम करके शिशु-आहारों और निश्चय ही अनेक खाद्य उत्पादों के लिए मानक निर्धारित किए हैं। देश में आहार कानूनों पर अमल आहार-मिलावट-निवारण अधिनियम और नियमों के अंतर्गत आता है, जिसमें एक विस्तृत प्रणाली के अंतर्गत खाद्य-निरीक्षक खाद्य के नमूने लेते हैं, सरकारी विश्लेषक उनकी जांच करते हैं, और केंद्रीय खाद्य प्रयोगशालाएं निर्देश केंद्रों के रूप में काम करती हैं। उन निर्माताओं के विरुद्ध मुकदमे चलाए जाते हैं, जिनके उत्पाद कानून का उल्लंघन करते पाए जाते हैं। आइ. एस. आई. और पी. एफ. ए. के अधिकारी खाद्य-मानकों का निर्धारण करने के लिए मिलकर काम करते हैं।

दूध-छुड़ाने वाले आहार : एक बच्चा जो 6 माह या उससे ऊपर होता है, दूध के अतिरिक्त नर्म ठोस आहार के लिए तैयार होता है। ऐसे दूध छुड़ाने वाले आहारों में सामान्य रूप से अन्न और दूध, दोनों रहते हैं, यद्यपि उन्हें दूध के बिना भी बना सकते हैं। संघटकों को मिलाया और पकाया जाता है और घोल को गर्म बेलनाकार पात्रों पर सुखाया जाता है, पतले-चपटे टुकड़े करके डिब्बाबंद कर दिया जाता है। ऐसे दुध-छुड़ाने वाले आहार पानी या दूध के साथ दलिया के रूप में खाए जाते हैं।

यवयुक्त दूध-पाउडर : केवल एक शताब्दी पूर्व 1883 में अमेरिका में विलियम हॉर्लिक ने यवयुक्त (माल्टेड) दूध आहार बनाने की विधि का आविष्कार किया था जिसमें मलाईदार या मलाईरहित दूध या उनके पाउडर के साथ यव का सत्व और धान्य का मोटा आटा इस तरह मिश्रित किया जाता है कि समस्त मांड-सामग्री का पूरी तरह से जल-अपघटन हो जाता है। प्रोटीन भी आंशिक रूप से टूट जाते हैं। कोको पाउडर को छोड़कर अतिरिक्त शक्कर, वसा, रंग या संरक्षकों की अनुमति नहीं है। उत्पाद में वसा 7.5, प्रोटीन 14 और शर्कराएं 72 प्रतिशत हैं। प्रोटीन और वसा आंशिक रूप से पाचक रूप में होते हैं, जो बच्चों, स्वास्थ्य लाभ चाहने वालों और वृद्ध लोगों के उपयोग के लिए सहायक हैं। यवयुक्त (माल्टेड) गंध आकर्षित करती है।

बार्ली (जौ) को बियर बनाने के लिए (देखिए अध्याय 12) अंकुरित करते हैं और पानी को निकालकर सुखा लेते हैं। सामान्य रूप से ऐसे सूखे जौ को जौ युक्त दुग्ध आहार बनाने वाले कारखाने खरीद लेते हैं, पीसते हैं और गर्म पानी में भिगो कर एंजाइमों को घुलनशील बनाते हैं। गेहूं के आटे को पानी में अलग से पकाकर लेई बना लेते हैं और दोनों को सामान्य तापमान पर लगभग एक घंटे मिलाते हैं, जिससे मांड टूटकर माल्टोस और डैक्स्ट्रिन में और गेहूं के प्रोटीन छोटी छोटी इकाइयों में बदल जाएं। ठोस पदार्थों को नीचे बैठ जाने देते हैं और पानी को एक बर्तन में निकाल लेते हैं। इसके बाद ठोस पदार्थों को दो बार और पानी में से निकालते हैं। इस प्रकार प्राप्त द्रव में मलाईदार दूध मिलाते हैं, और इस मिश्रण को पहले सांद्रित करते हैं, फिर या तो ड्रम पर या स्प्रे की प्रक्रिया द्वारा या अधिकतर किसी ओवन में तश्तरियों में पतली परतों के रूप में सुखा लेते हैं। सूखे हुए उत्पाद को तोड़कर मोटा या महीन पीसा जाता है, जिसके बाद यवयुक्त (माल्टेड) दुग्ध आहार डिब्बों में बंद कर देते हैं जिसमें सामान्य रूप से अंदर की ओर धातु की सील लगा देते हैं, ताकि किसी तरह की गड़बड़ी न की जा सके। खोलने के बाद भी उत्पाद काफी लंबे समय तक ताजा बना रहेगा, शायद इसलिए कि प्रत्येक वसा कण (जो कि अधिकांश खाद्य-उत्पादों में बासीपन का मुख्य कारण है) पर प्रोटीनों, शर्कराओं और लवणों की एक पतली परत चढ़ी होती है, जिससे हवा द्वारा ऑक्सीडेशन से वसा बची रहती है।

यवयुक्त दुग्ध आहार घर में भी बनाया जा सकता है। पहले या तो भीगे हुए जौ, गेहूं, रागी या ज्वार को तब तक अंकुरित कीजिए जब तक कि अंकुर फूट न पड़ें। सावधानी से रगड़कर छिलका उतार दीजिए और छाया में सुखा लीजिए। फिर अंकुरित सामग्री को हल्के हल्के तब तक भूनिए जब तक कि एक रुचिकर गंध न आने लगे। ठंडा करके महीन पीस लीजिए। इसका एक किलोग्राम 250 ग्राम दूध पाउडर, 25 ग्राम पिसी हुई शक्कर, 5-5 ग्राम सोडियम बाइकार्बोनेट (बेकिंग

सोडा) और पोटेशियम बाइकार्बोनेट (बाजार में यह मिश्रण पापड़खार के नाम से बिकता है) एक चाय का चम्मच पूरा भरकर महीन संसाधित नमक और चुटकी भर वैनिला के साथ अच्छी तरह मिला दीजिए। इच्छा हो तो 3 बड़े (खाना खाने के) चम्मच भर कोको पाउडर और चाय के एक चम्मच भर चाकलेट मिलाने से एक भूरे रंग का सुगंधित उत्पाद मिलेगा।

आइसक्रीम और उसके मिश्रण : आइसक्रीम-पाउडर एक नया डिब्बाबंद उत्पाद है, जिसकी लोकप्रियता, आइसक्रीम के समान ही, तेजी से बढ़ रही है। पहले आइसक्रीम के संघटकों को और इसे बनाने के लिए उपयोग किए जाने वाले सिद्धांतों को देखें। दूध की वसा की 10 से 12 प्रतिशत मात्रा ही आइसक्रीम को उसका अंतिम ढांचा और मलाईदार स्वाद देती है। उसी मात्रा में उपयोग किया गया मलाईरहित दूध-पाउडर, दुग्ध-शर्करा (लैक्टोस), कैल्शियम, फॉस्फोरस, सोडियम, पोटेशियम, मैगनेशियम इत्यादि जैसे खनिज घटक, दूध के प्रोटीन आइसक्रीम की सघनता और मृदुता को निश्चित करते हैं। लैक्टोस से थोड़ा मीठापन भी मिलता है। फिर भी, लगभग 14 प्रतिशत अतिरिक्त शक्कर सामान्य रूप से स्वाद और ढांचे के लिए मिलाई जाती है। एक अन्य महत्वपूर्ण घटक स्थिरताकारक, साधारणतया जिलेटिन या कार्बोक्सीमिथाइल सेल्यूलोस (सी. एम. सी.) है, ये पानी को विशाल मात्रा में सोखकर आइसक्रीम में बड़े रवों के निर्माण को निश्चित करते हैं। पायसीकारक वसा के विखंडन में सहायक होते हैं, और इसलिए जब उत्पाद को फेंटा जाता है तो झाग को स्थिर बनाते हैं : सामान्य रूप से वसीय अम्ल मोनोग्लिसराइड्स (जैसे ग्लिसरोल मोनोस्टीअरेट या जी. एम. एस.) का उपयोग किया जाता है, जो, जैसा कि हमने अध्याय 2 में देखा है, वनस्पति तेलों से प्राप्त किए जाते हैं। पायसीकारक (इमल्सीफॉयर) बर्फ के छोटे रवे और छोटे छोटे वायु कोष्ठ भी बनाते हैं, जो दोनों ही मिश्रण में बेहतर वितरण के लिए उत्तरदायी हैं। आइसक्रीम में लोकप्रिय सुगंध वैनिला, स्ट्रॉबेरी, कोको, कॉफी, पिस्ता इत्यादि हैं।

बड़े पैमाने पर आइसक्रीम बनाने के लिए, सारे द्रव संघटक निर्जीवीकृत करने वाले एक कुंड में डालकर गर्म और मिश्रित कर लिए जाते हैं और सूखे संघटक शक्कर के साथ अच्छी तरह मिलाकर धीरे-धीरे (द्रव को) हिलाते हुए डाले जाते हैं ताकि पिंड न बन जाए। फिर रोगकारक जीवाणुओं को नष्ट करने के लिए निर्जीवीकरण किया जाता है। यह काम या तो न्यून तापमान-दीर्घावधि (30 मिनट तक 69^0 से. पर) या उच्च तापमान-लघुकालिक (25 सेकेंड तक 80^0 से. पर) क्रिया द्वारा किया जाता है। इसके बाद समांगीकरण होता है और यह उसी प्रकार किया जाता है, जैसे दूध में किया जाता है। वसा का बहुत महीन प्रलंबन किया जाता है, जिससे कि वह आपस में चिपककर पिंड न बन पाए। यह बहुत महीन रंध्रों में से गर्म

द्रव मिश्रण को तेजी से गुजारकर किया जाता है। जैसे ही उत्पाद निकलता है, उसे तत्काल 3 से 4 घंटों के लिए लगभग 5^0 से. पर ठंडा करते हैं। यह एक ऐसी परिपक्वता-प्रक्रिया है, जो संरचना और ढांचे को उन्नत करने में उपयोगी सिद्ध होती है। इसके बाद कोई भी रंग या गंध मिलाई जाती है। फिर मिश्रण को तेजी से जमाने की महत्वपूर्ण क्रिया आती है (छोटे रवे प्राप्त करने के लिए), जबकि इसके साथ ही हल्कापन देने के लिए काफी हवा फेंट दी जाती है। यह अविश्वसनीय लगता है कि बड़े निरंतर फ्रीजरों में जमने और हवा भरने का काम 5^0 से. पर केवल 24 सेकेंड में हो जाता है। एक पंप के जरिए मिश्रण को फ्रीजर में डाला जाता है, जो वहां जमता है और बाहर आ जाता है। विभिन्न फ्रीजरों में क्रिया थोड़ी धीमी है, जो 6 से 10 मिनट लेती है, और प्रशीतकों द्वारा ठंडे किए गए पात्रों में खंडों में की जाती है। इनमें घूमने वाली खुरचनी पत्तियां लगी होती हैं जो दीवारों और फेंटने वाले बीटरों पर से प्रशीतित सामग्री को हटाती हैं। बीटर उत्पाद के अंदर हवा फेंट देते हैं। वृहदाकार डिब्बाबंद आइसक्रीम की पट्टियां आरंभिक मिश्रण के आयतन की लगभग दो गुना होती हैं और इस 100 प्रतिशत की वृद्धि को फैलाव कहते हैं। सॉफ्टी (मृदु) आइसक्रीम के लिए जिसे प्रशीतक कोष्ठ से निकालते समय कठोर नहीं बल्कि नर्म होना चाहिए, फैलाव को केवल 30 से 50 प्रतिशत तक रखते हैं, जबकि इसमें वसा भी ईंट जैसे आकार की बड़ी आइसक्रीम (10 प्रतिशत) की अपेक्षा कम (3 से 6 प्रतिशत) होती है। ईंट के आकार की आइसक्रीम फ्रीजर में से निकालने के बाद रात भर बहुत ठंडे स्थान में रखी जाती है, जिससे कि वह मोम या प्लास्टिक लगे कार्डबोर्ड के डिब्बों, प्लास्टिक ट्यूबों, मोमिया कागज या पन्नी में बंद करने के पूर्व स्थिर और कठोर हो जाए। सॉफ्टी आइसक्रीम कठोर नहीं होती और सीधे फ्रीजर से निकलकर खुदरा बिक्री इकाई तक पहुंचती है।

फ्रीजर में रुचिकर परिवर्तन होते हैं। तापमान तेजी से गिर जाता है, जबकि, मिलाने की क्रिया से वसा की गोलियां टूटती हैं और हवा को भीतर खींचती हैं, लसीलापन घट जाता है। फिर बर्फ के रवे, जो कि शुद्ध जल हैं, बनते हैं और इस तरह शेष पानी में शक्कर इतनी अधिक सांद्र होती है कि शेष पानी जमता नहीं। सघन प्रशीतन के बाद भी जमी हुई आइसक्रीम में थोड़ा शक्कर-युक्त पानी बच ही जाता है।

आज सूखे आइसक्रीम पाउडर उपलब्ध हैं। इस मिश्रण को पहले 71^0 से. पर गर्म करके समांगीकृत, असंक्रमित कर लिया जाता है और फिर स्प्रे के द्वारा सुखाकर अपेक्षाकृत मोटे कण प्राप्त करते हैं, जिन्हें छानकर डिब्बाबंद कर देते हैं। कुछ उत्पादों में शक्कर मिलाई जाती है, जबकि कुछ अन्य उत्पादों में उपभोक्ता अपने स्वाद के अनुसार महीन पिसी हुई शक्कर मिला सकता है। इसे सामान्यतया

लगभग चार महीनों तक रखा जा सकता है।

मलाई और संघनित दूध

मलाई : जब दूध को ठंडक में अक्षुब्ध रूप से छोड़ दिया जाए, तो वसा की गोलियां परस्पर चिपककर ऊपर उठ जाती हैं, और मलाई की एक मोटी परत बन जाती है, जिसे गृहिणी दूध पर से उतार लेती है। औद्योगिक रूप से दूध में से मलाई का यह संलयन एक क्रीम सैपरेटर में किया जाता है, जो इस सिद्धांत पर काम करता है, कि अपकेंद्रीय या चक्रणी शक्ति भारी मलाईदार दूध से उसमें तैरने वाली हल्की वसा को खींच लेगी। मशीन को घर में हाथ से या औद्योगिक रूप में बिजली से चलाया जाता है और उसमें सामंजस्य करके 20 से 60 प्रतिशत तक वसा युक्त मलाई प्राप्त की जा सकती है। इसे असंक्रमित, समांगीकृत और ठंडा करके डिब्बाबंद कर दिया जाता है। और फिर पूरे डिब्बे को एक बार फिर से असंक्रमित किया जाता है। डिब्बे में बंद मलाई मीठी या सादा हो सकती और उसमें वसा साधारणतया 20 प्रतिशत होती है।

संघनित दूध (कंडेंस्ड मिल्क) : नाम वास्तव में उत्पाद को सही सही व्यक्त करता है, क्योंकि यह दूध ही है जिसे निर्वात के अंतर्गत एक बर्तन में उबालकर या संघनित करके उसके भीतर विद्यमान पानी के स्तर को 80 प्रतिशत से घटाकर 20 से 30 प्रतिशत तक कर देते हैं। तदनुसार अन्य घटक भी सांद्रित हो जाते हैं : वसा और प्रोटीन प्रत्येक लगभग 9 प्रतिशत और दुग्ध-शर्करा 11 प्रतिशत। साधारणतया 40 प्रतिशत सांद्रण को अंतिम रूप देने के लिए अतिरिक्त शक्कर मिलाई जाती हैं, किंतु मीठा किए बिना भी संघनित दूध बनाया जाता है। मलाईरहित संघनित दूध, मीठा और फीका, दोनों मिलते हैं, जिनमें केवल 0.5 प्रतिशत वसा होती है। सांद्रण के पश्चात एक चिकना उत्पाद देने के लिए समांगीकरण किया जाता है। डिब्बा बंद करके डिब्बा भी संक्रमित कर दिया जाता है। संघनित दूध का हल्का भूरा रंग और विशिष्ट स्वाद प्राकृतिक और मिलाई गई दोनों प्रकार की शर्करा के थोड़ा जलने के परिणामस्वरूप मिलता है। मिलाई गई शर्करा संरक्षण और अंतिम असंक्रमणशीलता को बढ़ाती है, यद्यपि, यह आवश्यक नहीं कि हमेशा ऐसा किया ही जाए।

मक्खन और घी

मक्खन : घरों में, प्रथा के रूप में दूध का दही जमाने के लिए रात भर रख दिया जाता है, और दही को पतला करके मथ लिया जाता है, जिससे छाछ (या मोरू) और मक्खन मिलते हैं। मक्खन को (उदाहरण के रूप में मकई की रोटी) या मसाला

डोसा के साथ) खाया जाता है, या उसे गर्म करके घी प्राप्त किया जाता है। कभी कभी उबालकर ठंडे किए हुए दूध पर से रोज मलाई उतारकर कुछ दिनों तक इकट्ठा कर लेते हैं और फिर मथकर (कभी कभी सिर्फ बोतल में केवल हिला-हिलाकर भी) मक्खन प्राप्त किया जाता है।

व्यावसायिक रूप से मक्खन बनाने के लिए मलाई वाला रास्ता अपनाया जाता है। क्रीम पृथक्कारी में 30 से 40 प्रतिशत मलाई अलग करके रात भर 5^0 से 10^0 से. पर काल प्रभावन के लिए छोड़ देते हैं और फिर दो प्रकार के शुद्ध संवर्धकों को मिलाकर 15 से 16 घंटों तक परिपक्व होने या खमीर उठने के लिए छोड़ दिया जाता है। इन संवर्धकों में 'स्ट्रेप्लोकोकस लैक्टिस' और 'स्ट्रेप्टोकोकस क्रेमोरिस' जैसी बैसिली जो दूध में विद्यमान दुग्ध-शर्करा को लैक्टिस अम्ल में परिवर्तित कर देती है और 'स्ट्रेप्टोकोकस डायसेटिलिस', 'ल्यूकोनोस्टओक सिट्रोवोरम' और 'ल्यूकोनोस्टोक डैक्सट्रेनिकम' जैसे जीवाणु, जो मक्खन को प्रसन्नतादायक सुगंधित स्वाद प्रदान करते हैं, शामिल हैं। इसमें से प्रमुख है डायसेटिल, जो एक हजार किलोग्राम मक्खन में केवल एक ग्राम घी, जो दस लाख का केवल एक भाग है, भी मक्खन को खूब महकाने लिए पर्याप्त है। महक के हल्के अवयव एसेटिक और प्रोपायोनिक अम्ल हैं। इसके बाद परिपक्व मलाई को एक मक्खन मथनी में लगभग 10° से. पर घुमाया जाता है। यह अनिवार्य रूप से एक ऐसा साधन है जो मलाई को आलोड़ित करता है और वसा की अलग अलग गोलियों को ठेलने और उनके संलयन का कारण बनता है, जिससे वसा की गोलियां मक्खन के बड़े मटर के दानों के गुच्छों के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं, जो पानी वाले भाग से अलग निकल आती हैं। मथने के दौरान ही मक्खन या थोड़ा पीला रंग मिलाया जाता है ताकि मक्खन का आकर्षण बढ़ जाए। एक रंग तो एनोटो कहलाता है, जो कुछ विशेष बीजों से प्राप्त होता है, और दूसरा कैरोटीन है, जो गाजर और आम में विद्यमान नारंगी-पीला रंग होता है। पानी की परत निकाल लेने के बाद ताजे ठंडे पानी में मक्खन को हल्के हल्के हिलाकर धोया जाता है। इसके बाद मक्खन को अनवरत गूंथा जाता है, जिसके कुछ उद्देश्य हैं : निर्धारित 16 प्रतिशत पानी की कानूनी सीमा से अतिरिक्त पानी निकल जाए, स्वाद और गुणवत्ता बनाए रखने के लिए मिलाया गया 2 प्रतिशत लवण पूरे मक्खन में समान रूप से मिल जाए, मक्खन की गोलियां मिलकर एक मृदु पिंड बन जाए और पिंड में समान रूप से हवा (एक किलोग्राम मक्खन में लगभग 40 सी सी हवा विद्यमान रहती है) मिल जाए। फिर इसे बटर पेपर में लपेट देते हैं, हर पट्टी को कार्ड-बोर्ड के एक डिब्बे में बंद कर देते हैं, और डिब्बों को किसी शीतल कोष्ठ में रखते हैं।

घी : व्यावसायिक घी निर्माण में परिपक्व मलाई से निकाला गया मक्खन आवरणयुक्त

बर्तन में पिघलने तक गर्म किया जाता है, जिसके बाद तापमान बढ़ाकर पानी को भाप बनाकर उड़ा देते हैं। इसके साथ ही बुदबुदाहट और चटचटाने की आवाज होती है। तापमान तब तक नहीं बढ़ता जब तक कि सारा पानी निकल नहीं जाता। जब यह अचानक बहुत बढ़ जाता है तब उसे सावधानी से नियंत्रित किया जाना चाहिए ताकि घी जले नहीं और वह उस रुचिकर गंध को पा ले जिसके लिए उसकी इतनी प्रतिष्ठा है। गर्म घी को भूरे रंग की तलछट से अलग कर निकाल लेते हैं। और बोतलों या टिन में बंद कर शीत भंडार में रख दिया जाता है। तीव्र प्रशीतन से, पहले तो छोटे बीज-रवे बनते हैं और फिर धीमे प्रशीतन से द्रव आधार में वे बड़े रवे बन जाते हैं, जो उपभोक्ता को आकर्षित करते हैं।

दही से घी बनाने की पारंपरिक विधि में मक्खन सावधानी से गर्म किया जाता है, जिससे दूध या दही के खमीरीकरण और बाद में मक्खन के पिघलने के दौरान बने घटकों से घी में एक गहरी खुशबू आ जाती है। घी को उसकी महक देने वाले उत्पादों के बारे में जानकारी कम ही है, किंतु अधिकांश खाद्य-सुगंधों के समान वह भी एक बहुत जटिल मिश्रण है। व्यवहार में यही समझा जाता है कि मक्खन का जलीय घटक ही गर्म करने के दौरान खुशबू देता है। यदि मक्खन पिघल जाए, और फिर वसा को गर्म कर घी बनाया जाए, तो सुगंध बहुत कम होती है और इसी प्रकार रंग भी। परिपक्व हुए बिना मलाई को गर्म करके प्राप्त किया गया घी भी अपेक्षाकृत स्वादहीन होता है। अपरिपक्व ताजा मलाई को गर्म करके प्राप्त किया गया घी भी बनाया जा सकता है, जो और भी नीरस होता है। यद्यपि यह धीमी प्रक्रिया है क्योंकि मक्खन में विद्यमान 16 प्रतिशत की तुलना में मलाई में बहुत अधिक अर्थात 65 प्रतिशत पानी होता है। गर्म करते समय ऐसी सामग्री में साइट्रिक एसिड, दही, छाछ या मलाई रहित दूध पाउडर मिलाने से, कहा जाता है कि स्वाद और रंग दोनों में सुधार होता है।

दही; योगर्ट और श्रीखंड :

उबले हुए दूध को शरीर के तापमान के स्तर तक ठंडा करके उसमें पिछले दिन के शेष अच्छे दही को 2.5 प्रतिशत की मात्रा में (एक लिटर में एक बड़ा चम्मच) मिलाकर बीजित कर देने के बाद रात भर किसी गर्म जगह पर अविच्छिन्न खमीरीकरण के लिए रख कर, घरों में दही जमाने की विधि से हर गृहिणी परिचित है। फिर भी बाजार से बहुत बड़ी मात्रा में अभी भी दही खरीदा नहीं जा सकता, अलबत्ता मक्खन और आइसक्रीम जैसे प्रशीतन की आवश्यकता रखने वाले उत्पाद पर्याप्त रूप में व्यापकता से उपलब्ध हैं।

विकसित देशों में व्यावसायिक योगर्ट पिछले दो दशकों में एक बहुत ही लोकप्रिय खाद्य बन चुका है। दही में विद्यमान दो मिश्रित जीवाणुओं के स्थान पर, उसी

मात्रा में दो शुद्ध संवर्धक 'स्ट्रेप्टोकोकस थर्मोफिलस' और 'लैक्टोबैसिलस बल्गारिकस', पूर्ण या आंशिक रूप से वसा निकाले हुए समांगीकृत दूध में 43^0 से 44^0 से. पर हल्के हल्के हिलाकर प्लास्टिक या मोमिया कार्डबोर्ड के कुंडों में भर दिया जाता है। इसे फिर 3 घंटों के लिए 41^0 से 42^0 से. पर खमीरीकरण के लिए छोड़ दिया जाता है, जिसके बाद 8 घंटों तक 5 से 7 से. पर ठंडा होने के लिए रख दिया जाता है। गंध, रंग, शक्कर और फल उसके ऊष्मायन के पहले या बाद में हर पैकेज में जा सकते हैं और इसके अम्लीय स्वाद को हल्का और परिवर्तित करने में, सादे योगर्ट को सुगंधित करने में और विशेष रूप से बच्चों के लिए इसके आकर्षण को व्यापक बनाने में सहायता की जा सकती है।

संवर्धित छाछ इसी प्रकार मलाईरहित दूध से बनाई जाती है। एसिडोफिलस दूध, जिसके बारे में स्वास्थ्य संबंधी अनेक दावे किए जाते हैं, या तो पूर्ण मलाईदार, मलाईरहित या आंशिक रूपसे मलाईरहित दूध के ऊष्मायन परिपाक से निकाला जाता है। यह काम ठीक 38^0 से 39^0 से. पर 'लैक्टोबैसिलस एसिडोफिलस' के शुद्ध खिंचाव के बाद मृदु ठोस पिंड को, लैक्टोस या डेक्स्ट्रिन मिलाकर हल्के हल्के घुलाते हुए एक समान गाढ़ापन आने तक हिलाते हुए किया जाता है। इसमें बहुत सावधानी की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि मौका मिलते ही अन्य जीवाणु एसिडोफिलस जीवाणु से अधिक बढ़ जाते हैं। ये दोनों ही उत्पाद भारत में उपलब्ध नहीं हैं।

श्रीखंड का व्यावसायिक उत्पादन बड़ौदा में बाजार परीक्षण के स्तर पर करने के बाद व्यापक रूप से उपलब्ध है। पैश्चुराइज्ड मलाईरहित दूध से बने दही को दबाकर उसका अधिकांश पानी निकाल दिया जाता है और सफेद दही (चक्का) में शक्कर और इलायची के दाने मिलाए जाते हैं। उत्पाद को प्लास्टिक टबों में बिकने के पूर्व तक प्रशीतक (फ्रीजर) में रखा जाता है।

चीज़

भारतीय चीज़ : परिपक्व चीज़ उपमहाद्वीप में सामान्य पारंपरिक उत्पाद नहीं है। उत्तर और उत्तर पूर्व के कुछ पर्वतीय क्षेत्रों, बांदल, सुरती, ढाका, कलिंपोंग में चीज़ का निर्माण किया जाता है।

व्यावसायिक रूप से भारत में केवल एक संसाधित चीज़ ही बनाया जाता है। पहले विभिन्न घानों से कच्चे चीज भंडार का चयन किया जाता है जो आयु में भिन्न हों और इसलिए अम्लता, गंध, पिंड और गैस में भिन्न हों। इस प्रकार से 3 माह पुराने नर्म, चिकने और दृढ उत्पाद के 3 भाग को 6 से 12 माह पुराने तेज गंध वाले दानेदार, भुरभुरे चीज के साथ ग्राइंडर में मिला लेते हैं। इस गर्म पिघले हुए मिश्रण में पानी, रंग, लवण, कोई संरक्षक (प्रिजर्वेटिव) और कोई एमल्सी फायर, जो डाइसोडियम फॉस्फेट और ट्राइसोडियम साइट्रेट का मिश्रण होता है, मिलाया

जाता है, ताकि एक सुचिक्कन, लचीला, प्रवाही-सा उत्पाद मिले, जिसे टिन के डिब्बों या छोटे छोटे खंडों में एल्यूमीनियम फॉइल में बंद कर दिया जाता है। संसाधित चीज़ में 47 प्रतिशत पानी और 21 प्रतिशत वसा होती है। टिन या पैकेट खोलने के बाद भी इसे पर्याप्त लंबे समय तक रखा जा सकता है, परंतु उस स्थिति में यह सूख सकता है और अपनी चिकनी और फैला सकने वाली संरचना खो सकता है।

विश्व चीज़ : सर्वाधिक प्रसिद्ध 400 प्रकार के विश्व चीज़ों में कुछ संक्षिप्त रूप से उल्लेखनीय हैं। ताजा चीज़ों में घरेलू (कॉटेज) चीज शामिल है, जो केवल मलाईरहित दूध का दही है, जिसे उसका पानी निकालकर दानेदार या टुकड़ों में परिवर्तित कर देते हैं, सुदृढ़ता के लिए गर्म करके मलाई से लपेट देते हैं। ताजा क्रीम चीज़ या तो मलाईयुक्त दूध या स्वयं मलाई से बनाया जाता है, जिसे दबाकर और सांचों में ढालकर चिकना बना दिया जाता है। इसका एक उदाहरण *इटैलियन मोजरैला* है, जो इसकी अपनी छाछ में नम रखा जाता है। इटली का ही *रिकोटा* एक असामान्य चीज़ है, जो दही के पानी को गर्म और अम्लीय अवक्षेपण करके प्राप्त करते हैं। अगली श्रेणी में नर्म-परिपक्व चीज़ आते हैं, जो बाहरी केंद्र की ओर परिपक्व होते हैं क्योंकि जीवाणु संवर्धक इसकी सतह पर छिड़का जाता है। इसका परिणाम भी नर्म पपड़ी के रूप में होता है। पतला लाल-भूरा या हरे छींटों वाला फ्रांसीसी चीज़ कैमंबर्ट, और इसी प्रकार फ्रांस का ही बड़ा, गोल, पतला, लाला धब्बों वाला ब्राई चीज़ भी उदाहरण के रूप में उल्लेखनीय है। अर्ध-मृदु चीज़ दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार को समय समय पर नमक के पानी, दही के पानी, मदिरा (वाइन), बीयर या साइडर (सेब के आसव) से धोते हैं, ताकि ऊपरी परत लचीली बनी रहे, जबकि भीतर खमीरीकरण चलता रहे। मंस्टर और बेल पाइस, दोनों गंध में हल्के और संरचना में मक्खन जैसे चिकने हैं और इसके उदाहरण हैं। अन्य प्रकार में अनेक अर्ध-मृदु चीज़ आते हैं, जिनमें भीतर आई दरारों में प्रसारित होती पैनिसिलिन फफूंद के द्वारा नीली-हरी नसों का जाल बन जाता है। इंग्लैंड का *स्टिल्टन* एक वसा संपन्न प्रकार है, जिसमें प्राकृतिक जल निकास से दरारें पड़ जाती हैं, जबकि 'रॉकफोर्ट' भेड़ के दूध से बना फ्रांसीसी चीज़ है, जिसमें एक तेज 'बकरी जैसी' गंध होती है और जिसे ठंडी, सीलनदार प्राकृतिक गुफाओं में परिपक्व किया जाता है क्योंकि उस क्षेत्र में ऐसी गुफाएं बहुत हैं। प्रसिद्ध इतालवी चीज़ *गोरगोंजोला* जबान पर डंक-सा मारता है। इसे परिपक्व होने के दौरान भोंका जाता है, ताकि ऐनिसिलियम फफूंद को भीतर पहुंचने में सहायता मिले। एक थोड़ा कठोर चीज़ बेल्जियम का *लिंबर्गर* है, जो छोटे खंडों के रूप में बनाया जाता है, बैसिलस लिनंस जीवाणुओं को दही की सतह पर पोत दिया जाता है और भूरापन लिए लाल रंग के आवरण

से युक्त और चटक मीठी गंध का चीज़ प्राप्त होता है।

अर्ध कठोर चीज़ की श्रेणी में अनेक प्रसिद्ध चीज़ आते हैं। स्विटजरलैंड के दो चीज़ *एमेंटल* और ग्रुयेरे अपनी सुनहरी परत और पिंड के छेदों या 'आंखों' के कारण विशिष्ट हैं। स्ट्रैप्टोकोकस थर्मोफिलस, लैक्टोबैसिलस हैल्वेटिकस और प्रॉपीओनिक जीवाणु छिद्रों का कारण हैं। नीदरलैंड्स का बेलनाकार *गौडा* चीज़ एक मृदु पीला उत्पाद है और इसी के समान इसी देश का *इडाम* है, किंतु अपने गोल आकार और लाल रंग के मोम आवरण के कारण विशिष्ट है। एक विशेष श्रेणी में लगभग 40 फ्रांसीसी चीज़ आते हैं, जो बकरी के दूध से बनाए जाते हैं। इनकी अपनी विशिष्ट गंध और सफेद या नीली परत होती है। अंततः ऐसे चीज़ भी हैं जो परिपक्व कठोर, दानेदार और प्रचुर गंधयुक्त होते हैं। इस श्रेणी में आते हैं, क्रीम रंग का सुदृढ़ पिंड वाला इंग्लिश चीज़ *चैडर* और तेज स्वाद वाला इतालवी *पारमेसन*, जो सामान्य रूप से स्पेघेटी, पीजा और पाई पर पीसकर डाला जाता है और जो खराब हुए बिना मानव जीवन से भी अधिक समय तक रहने के लिए ख्यात है।

जबकि ये चीज़ कभी स्थानीय रूप से, शताब्दियों के अभ्यास से विकसित हुई विधियों से बनाए जाते थे, अब व्यापक आकर्षण रखने वाले अनेक प्रमुख चीज़ प्रकारों के लिए मानक औद्योगिकी प्रक्रियाएं विकसित कर ली गई हैं। इसलिए अब संयुक्त राज्य अमेरिका ब्रिटेन की अपेक्षा अधिक "इंग्लिश" *चैडर* और स्विटजरलैंड की अपेक्षा फ्रांस अधिक *ग्रुयेरे* और जर्मनी अधिक *एमेंटल* बनाता है।

खोआ आधारित मिठाइयां : खोआ या मावा वाष्पित दूध है, जो एक खुली कढ़ाई में धातु की एक खूंटी से लगातार हिलाते और खुरचते हुए गर्म किया जाता है, जब तक कि वह लोई जैसा गाढ़ा न हो जाए। सूखे खोआ उत्पाद को 'पिंडी' कहा जाता है, जिसमें पानी 32 प्रतिशत होता है। इसे बर्फी और पेड़ा जैसी मिठाइयां बनाने के काम में लाया जाता है। एक सूखा हुआ उत्पाद, 'धाप', जिसमें 37 से 47 प्रतिशत पानी रहता है, गुलाब-जामुन और पंतुआ बनाने में उपयोग करते हैं, जबकि पुराने और अत्याधिक अम्लयुक्त दूध से बना दानेदार खोआ कलाकंद, पेठे की बर्फी इत्यादि बनाने के लिए पसंद करते हैं। भैंस के दूध में 7 से 8 प्रतिशत तक वसा होती है और अधिक वसायुक्त होने के कारण उससे गाय के 4 से 5 प्रतिशत वसायुक्त दूध की अपेक्षा अधिक चिकना खोआ बनता है।

खोआ बनाने की एक अनवरत तकनीक विकसित कर ली गई है। इसकी आधारभूत इकाइयों में भाप से गर्म किए जाने वाले ड्रम होते हैं जिनमें खुरचनियां लगी होती हैं। दूध को पहले इन ड्रमों में सांद्रित कर लेते हैं और फिर खोआ बनाने के लिए खुली कड़ाहियां लेते हैं। इन कड़ाहियों को भाप से गर्म किया जाता है और इनमें भी मशीनी खुरचनियां लगी होती हैं, जो खोआ बन जाने पर उसे गूंथती

हैं और काम पूरा होने पर पिंडियों को बाहर निकाल देती हैं।

गुलाब जामुन के लिए व्यावसायिक रूप से तैयार मिश्रण उपलब्ध है। इसमें सुखाया हुआ खोआ, मलाईरहित दूध-पाउडर और मैदा, अम्लीयता की पूर्ति के लिए थोड़ा-सा सोडियम बाइकार्बोनेट होता है। मिश्रण को गीला करके उसकी गोलियां बनाई जाती हैं और सुनहरा-भूरा रंग आने तक गहरी कढ़ाई में तला जाता है। ये भूरा होने और शर्करा के दग्धीकरण की प्रक्रिया है। इसके बाद गोलियों को सुगंधित शक्कर की पतली चाशनी में डुबाया जाता है। 'पंतुआ' अर्ध चंद्राकार और गुलाब जामुन की अपेक्षा हल्का उत्पाद है, किंतु इसे भी शक्कर की चाशनी में डुबाया जाता है।

छेना आधारित मिठाइयां

छेना या पनीर यांत्रिक आधार पर बनाया जाता है, ताकि उससे रसगुल्ला और संदेश जैसी मिठाइयां बनाई जा सकें। ताजा गाय के दूध को 80^0 से. जैसे ऊंचे तापमान पर गर्म किया जाता है, धीरे धीरे चलाया जाता है, और लैक्टिक या साइट्रिक एसिड, और यहां तक कि पिछली बार के बचे खट्टे दही के पानी का घोल 1 से 2 प्रतिशत की मात्रा में डालकर शीघ्रता से इसे जमा या फाड़ लिया जाता है। लैक्टिक एसिड से दानेदार छेना मिलता है जो रसगुल्ला बनाने के लिए अच्छा होता है, जबकि साइट्रिक एसिड से नरम उत्पाद मिलता है जो संदेश बनाने के लिए अच्छा होता है। गर्म अवस्था में ही पानी को निथार दिया जाता है और उत्पाद को कपड़े की थैलियों में डालकर ठंडे पानी में लटका देते हैं, जिससे कि शेष बचा हुआ पानी भी धुल कर बह जाए। इसके बाद इसे नर्म बनाने के लिए गूंधने वाली मशीन में डाला जाता है।

रसगुल्ले की गोलियां हाथ से हल्के हल्के आकार देकर बनाई जाती हैं। फिर उन्हें सुगंधित शक्कर की चाशनी में डाल देते हैं। इसके बाद डिब्बों में बंद करने और असंक्रमित करने का काम होता है। छेने के चपटे टुकड़े मीठे सांद्रित दूध में डाल कर रसमलाई बनाई जाती है।

संदेश, एक सूखा और थोड़ा कणमय उत्पाद है, और समझा जाता है कि यह संदेश या अच्छी खबर लाने वाले अतिथियों को खिलाते थे इसलिए इसका यह नाम पड़ा। छेना, शक्कर और सुगंध को कम आंच पर रखकर कड़छुल की सहायता से अच्छी तरह मिलाते हैं और लकड़ी के सांचों का उपयोग करके आकार देते हैं। मिठास के लिए यदि ताड़ के गुड़ का उपयोग किया जाए तो एक विशेष स्वाद और हल्का भूरा रंग आता है।

दूध से बने नए उत्पाद

'मिल्टोन' दूध और मूंगफली के दानों से निकाले गए प्रोटीनों के घोल का मिश्रण है। प्रोटीनों का घोल बनाने के लिए उच्च गुणवत्ता युक्त मूंगफली के दानों की खली

(दानों को दबाकर उनसे तेल निकाल लेने के बाद बचा हुआ अवशेष) को क्षारीय पानी में घोलकर अघुलनशील पदार्थों को छानकर निकाल देते हैं और शेष रहे द्रव का उपयोग करते हुए पानी में शुद्ध प्रोटीनों का घोल बना लेते हैं। इसमें ग्लूकोस, विटामिन, खनिज, गंध और समान मात्रा में मलाईदार दूध मिलाते हैं जिससे एक ऐसा उत्पाद मिलता है, जो दूध जैसा ही दिखता है, स्वाद देता है और पौष्टिक गुणवत्ता से युक्त होता है। अनिवार्य रूप से यह दूध को दूध-पाउडर के साथ नहीं, बल्कि वानस्पतिक प्रोटीन से संस्कारित करने की विधि है। यह उत्पाद व्यावसायिक रूप से मुंबई में एक सुगंधित पेय के रूप में उपलब्ध है, किंतु अधिक उपयोग भारत के अनेक राज्यों में चल रहे पूरक बाल आहार कार्यक्रमों में किया जा रहा है।

चाय साथी एक ऐसा उत्पाद है जो मलाईरहित दूध के साथ वानस्पतिक वसा, दूध और वानस्पतिक प्रोटीन, एमल्सीफायर, स्थिरताकारकों और विटामिन 'ए' को अच्छी तरह मिलाकर समांगीकृत करके बनाते हैं। भारतीय घरों की मांग के अनुरूप इसमें अनेक गुण हैं : दूध का स्वाद, चाय और काफी को सफेद बनाता है और दही के रूप में जमाया जा सकता है और दूध की अपेक्षा सस्ता भी है।

दूध और उसके उत्पाद का पोषण मूल्य

जैसा कि तालिका 3.1 में बताया गया है, गाय के दूध में 87.5 प्रतिशत पानी होता है, किंतु 12.5 प्रतिशत यौगिकों में पोषण के तीन स्थूल तत्व वसा, प्रोटीन और शक्कर लगभग समान मात्रा में मिश्रित रहते हैं। शक्कर से यहां आशय दुग्ध-शर्करा या लैक्टोस से है। चूंकि दूध की रचना बाल पशुओं के लिए खाद्य के रूप में हुई है, इसलिए ये सारे घटक बच्चों के लिए, विशेष रूप से उपयुक्त हैं। खनिज घटक एक प्रतिशत से भी कम होते हैं, किंतु इसमें दो महत्वपूर्ण चीजें, कैल्शियम और फॉस्फोरस अच्छी मात्रा में होते हैं। दूध में विद्यमान वसा में पर्याप्त मात्रा में विटामिन 'ए' घुला हुआ होता है और जलीय भाग में तीन महत्वपूर्ण 'बी' विटामिन—थायमिन, रिबोफ्लेविन (पोषण के लिए आवश्यकता की अपेक्षा अधिक मात्रा में) और नायसिन होते हैं। दो महत्वपूर्ण सूक्ष्म पोषकों लोहा, जो एक खनिज है और विटामिन 'सी' के मामले में, दूध एक कमजोर स्रोत है। दोनों का तालिका में शामिल नहीं किया गया है। पैश्चुराइजेशन, उबालने और यहां तक कि संघनन या स्प्रे द्वारा सुखाकर सांद्रण करने से बहुत कम पोषक नष्ट होते हैं।

मलाईरहित दूध में सारी वसा निकल जाती है और उसी के साथ सारा विटामिन 'ए' भी। मूल दूध में विद्यमान प्रोटीन लगभग एक-तिहाई मात्रा में मलाई के साथ निकल जाता है और मलाईरहित दूध में एक घटी हुई मात्रा वसा की बचती है, किंतु सारी शर्करा, खनिज और विटामिन 'बी' मलाईरहित दूध में बने रहते हैं।

दूध के पाउडर में क्या रहता है, जबकि उसमें से पानी निकाला जा चुका

तालिका 3.1

दूध और उसके उत्पादों का पोषक मूल्य

	कैलोरी	मुख्य पोषक				खनिज			विटामिन			
		पानी %	वसा %	प्रोटीन %	शर्करा %	कुल मि.ग्रा.	कैल्शियम मि.ग्रा.	फॉस्फोरस मि.ग्रा.	विटामिन ए मा.ग्रा.	थायमिन मा.ग्रा.	रिबो-फ्लेविन मि.ग्रा.	नायसिन मा.ग्रा.
दूध सारे आंकड़े प्रति 100 ग्राम उत्पाद												
मलाईदार दूध (गाय)	67	87.5	4.1	3.2	4.4	800	120	90	55	50	190	100
मलाईरहित दूध	29	92.1	0.1	2.5	4.6	700	120	90	शून्य	40	170	100
दूध के पाउडर												
मलाईदार दूध	496	3.5	26.7	25.8	38.0	6000	950	730	420	310	1360	700
मलाईरहित दूध	357	4.0	0.1	38.0	51.0	6800	1370	1000	शून्य	450	1640	1000
मलाईदार दूध के उत्पाद												
संघनित दूध	170	26.0	9.0	8.3	11.0	1700	260	200	100	120	390	200
दही	60	89.1	4.0	3.1	3.0	850	150	95	30	50	160	100
वसा संपन्न उत्पाद												
मलाई	250	68.2	25.0	2.5	3.7	700	100	80	330	30	120	40
मक्खन	730	16.0	81.0	ट्रेस	ट्रेस	250	50	40	960	3	15	50
जमाए हुए उत्पाद												
छेना (पनीर)	265	57.1	20.8	18.3	1.2	1600	210	140	100	70	260	240
चीज़ (संसाधित)	335	45.0	25.0	24.0	3.8	5000	800	520	85	40	350	80

ट्रेस—लेशमात्र मि. ग्रा.—मिलीग्राम मा. ग्रा.—माइक्रोग्राम

होता है? मलाईदार दूध-पाउडर में सभी मुख्य और गौण पोषकों का 6 से 7 गुना समाहार रहता है। मलाईरहित दूध-पाउडर में मूल घटकों का यह समाहार 10 से 12 गुना होता है। इन पाउडरों को घर में बनाए गए किसी भी खाद्य में मिलाने पर उसका खाद्य या पोषक मूल्य बढ़ जाएगा।

संघनित दूध आंशिक रूप से सांद्रित मलाईदार दूध है, जिसमें सभी मुख्य और गौण घटक 2.5 गुना रहते हैं। मीठे संघनित दूध में निर्माण के दौरान 40 प्रतिशत शक्कर मिलाई जाती है और उसमें अंतिम रूप से कुल शर्कराओं का भाग 50 प्रतिशत से भी अधिक हो जाता है। मलाईदार दूध का दही, जैसा कि तालिका 3.1 में दिखाया गया है, संरचना में दूध के ही समान होता है, केवल एक-तिहाई लैक्टोस समाप्त हो जाता है क्योंकि वह लैक्टिक अम्ल में परिवर्तित हो चुका होता है जो दही को उसका खट्टा स्वाद देता है। दही में बड़े परिमाण में जीवित जीवाणु विद्यमान रहते हैं। समझा जाता है कि दही खाने पर बड़ी आंत में माइक्रोफ्लोरा द्वारा भोजन पाचन पर अनेक लाभदायक प्रभाव होते हैं। श्रीखंड दही का ही प्रतिरूप है जिसमें पानी के 90 प्रतिशत को 60 प्रतिशत तक घटाकर दही को सांद्रित कर देते हैं।

मलाई और मक्खन वसा-समृद्ध उत्पाद हैं। मक्खन तो केवल दूध की वसा है (जिसमें सारा विटामिन 'ए' होता है) और क्योंकि निर्माण के दौरान मक्खन को धोया जाता है, इसलिए 16 प्रतिशत जलीय भाग में, मिलाए गए लवण के अतिरिक्त पोषक नाममात्र को होते हैं। मलाई का दो-तिहाई भार दूध के सीरम से बना होता है, इसलिए 25 प्रतिशत वसा (अपने विटामिन 'ए' सहित) के अतिरक्त थोड़े अर्थात लगभग उतने ही जितना दूध में होते हैं, प्रोटीन और दुग्ध शर्करा रहते हैं। इसके साथ ही 'बी' विटामिनों का परिमाण भी मूल का दो-तिहाई रहता है।

जब दूध को अम्ल मिलाकर जमाया जाता है, तो अवक्षिप्त रूप में लगभग सारी वसा, सारे छेना प्रोटीन और लगभग आधे खनिज तथा आधे विटामिन 'ए' रहते हैं और जैसा कि तालिका 3.1 में दिखाया गया है। छेना या पनीर की संरचना में यह वितरण प्रतिबिंबित होता है। जलीय अवशेष में सारा लैक्टोस और लैक्टो ग्लोबुलिन प्रोटीन और अन्य खनिजों और विटामिन 'ए' का आधा निकल जाता है। संसाधित चीज तो और भी अधिक सांद्रित होता है, जिसमें 25 प्रतिशत वसा और प्रोटीन, केवल थोड़ी-सी शर्करा और बड़ी मात्रा में कैल्शियम और फॉस्फोरस रहते हैं क्योंकि ये उसमें मिलाते हैं। चीज़ एक कैलोरी संपन्न खाद्य है जिसमें विटामिन 'ए' और तीनों 'बी' विटामिन पर्याप्त स्तर पर होते हैं। फिर भी बायोजैनिक, एमीन, टायरामीन हिस्टामीन और फेनाइल एथिलामीन, जो कुछ विशिष्ट चीजों और चॉकलेट तथा लाल मदिरा (रेड वाइन) में उठ जाते हैं, को आहार संबंधी आधा सीसी रोग के लिए जिम्मेदार माना जाता है।

4. विशिष्ट आस्वाद

मीठा और नमकीन

शक्कर और गुड़

भारत सर्वाधिक सफेद शक्कर बनाने वाले देशों की श्रेणी में एक है और प्रतिवर्ष 60 से 70 लाख टन चीनी का उत्पादन करता है। इसके साथ साथ सोवियत संघ 90 लाख टन, क्यूबा 70 लाख, ब्राजील 70 लाख और संयुक्त राज्य अमेरिका 40 लाख टन सफेद शक्कर या चीनी बनाते हैं। ऐतिहासिक रूप से भारत पुरोधा होने का दावा कर सकता है : गुड़ बनाने का संदर्भ बहुत पहले छठी शताब्दी ई. पू. तक मिलता है। ग्रीक शासक मेगास्थनीज ने, जो सातवीं शताब्दी में भारत में आया था, अपने वर्णनों में लिखा है कि चीनी सम्राट ताई-तूंग ने यह सीखने के लिए एक दल मगध, आधुनिक पटना, भेजा था कि शक्कर कैसे बनाई जाती है।

शक्कर के प्रकार

पारंपरिक रूप से हमने या तो अपरिष्कृत भूरी शक्कर जिसे 'गुड़' कहा जाता है, या ढेलेदार कड़ी शक्कर 'खांडसारी' ही बनाई। परिष्कृत दानेदार शक्कर केवल 20वीं शताब्दी के आरंभ से बनाई जा रही है। आज मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में स्थित लगभग 250 कारखाने 60 से 70 लाख टन दानेदार शक्कर प्रतिवर्ष बनाते हैं। इससे लगभग दुगुनी मात्रा में अभी भी गुड़ बनाया जाता है, किंतु खांडसारी का उत्पादन अब शक्कर के उत्पादन का केवल एक दशमांश ही रह गया है। गुड़ न केवल गन्ने के रस से बल्कि ताड़ और खजूर से भी बनाया जाता है, किंतु भारत में खांडसारी और शक्कर पूरी तरह से केवल गन्ने के रस से बनाई जाती है। शीतोष्ण देशों में शक्कर के स्रोत के रूप में शर्करा-समृद्ध कंदों के विशेष प्रकार विकसित कर लिए गए हैं। भारत में भी उनके उत्पादन का आरंभ किया जा रहा है क्योंकि उनके उत्पादन की अवधि

कम है, पानी की आवश्यकता भी गन्ने के लिए आवश्यकता से काफी कम है और प्रति हेक्टेयर शक्कर की प्राप्ति भी गन्ने की अपेक्षा दुगुनी है।

दानेदार शक्कर का निर्माण

एक टन शक्कर 10 टन गन्ने से बनती है, जिसके उत्पादन के लिए 2 हेक्टेयर (5 एकड़) भूमि की आवश्यकता होती है। सामान्य रूप से जनवरी-मार्च में पौधे रोपे जाते हैं और 10 से 12 महीने में फसल काटी जाती है। गन्ना काटकर, कारखाने में पहुंचाया जाता है जहां उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में काटा जाता है। फिर उन्हें बहुत भारी चरखियों (सड़क के किनारे लगी छोटी छोटी चरखियां एक परिचित दृश्य हैं) में डालकर कुचला जाता है ताकि रस निकल आए। एक अन्य नई तकनीक यह है कि पानी का उपयोग करके रस घोलकर निकाल लिया जाता है जिसमें अंततः चरखी में दबाने की विधि की अपेक्षा अधिक रस निकलता है। रस स्लेटी-हरा, धुंधला, काफी अम्लीय और बहुत अधिक मीठा नहीं होता।

इसके बाद इस दूध जैसे गाढ़े रस को साफ करना होता है। यह करने के लिए उसमें पहले चूना मिलाया जाता है और फिर सल्फर डाइआक्साइड गैस या कार्बन डाइआक्साइड गैस उसमें गुजारी जाती है। जब इस उपचारित रस को छाना जाता है तो एक कीचड़ जैसा चमकदार अवशेष रह जाता है और साफ शक्कर का घोल छन जाता है।

अब इस चरण पर घोल को रंगहीन किया जाता है। यह काम दानेदार कार्बनों से उपचारित करके करते हैं, जिनकी सतह को अन्य द्रव पदार्थों से रंजक पदार्थों को सोख लेने के लिए विशेष रूप से सक्रिय करते हैं। ऐसे सक्रिय कार्बनों का उपयोग क्षार से परिष्कृत करने के बाद वानस्पतिक तेलों को भी रंगहीन बनाने में किया जाता है (अध्याय 2)। रंगहीन करने के बाद कार्बनों को छानकर निकाल देते हैं, और शक्कर के द्रव को वैक्यूम के अंतर्गत चरणबद्ध विधि से वाष्पित करते हैं। अंतिम चरण में शक्कर के घोल को फिर से वैक्यूम के अंतर्गत उबाला जाता है और शक्कर के दाने बनने तक गाढ़ा किया जाता है। फिर और अधिक घोल मिलाकर, उबालकर दानों को बड़ा किया जाता है। समय समय पर नमूना लेकर दाने के आकार को जांचा जाता है। नए दाने बनने नहीं दिए जाते, और यदि ऐसा होता है तो नया रस डालकर उन्हें घोल दिया जाता है। जब आवश्यक आकार बन जाता है, जो दानेदार शक्कर के ढेर को घोल सहित, जिसे मैसेक्यूट कहते हैं, क्रिस्टलाइजर में डाला जाता है और ठंडक में धीरे धीरे दाने बनने दिए जाते हैं। इसके बाद एक छिद्रकार बर्तन में चक्रण या अपकेंद्रण से द्रव-शीरा बाहर निकल जाता है और बर्तन में शक्कर के दाने रह जाते हैं, जहां उन पर पानी की तीव्र फुहार करके चिपका रह गया शीरा भी धो दिया जाता है। इस क्रिया से प्राप्त पहले शीरे को

नए शक्कर के घोल के साथ मिला दिया जाता है और गाढ़ा करने और दाने बनाने की उसी विधि से शक्कर का नया ढेर बनाया जाता है। शीरे को फेंकने के पूर्व तीन और कभी चार ढेर भी बनाए जाते हैं।

यह जानना आश्चर्यजनक हो सकता है कि व्यावसायिक रूप से शक्कर की पांच श्रेणियां होती हैं, जो दाने के आकार पर निर्भर करती हैं और हर श्रेणी में रंग के दो स्तरों की अनुमति है। सामान्य रूप से समझा जाता है कि लोगों को केवल तीन अपेक्षाकृत बड़े आकार के दानों वाली शक्कर बेची जाती है, सभी श्रेष्ठ रंग और श्रेणी की, फिर भी निम्न श्रेणी की शक्कर बाजार में चोरी छिपे आ ही जाती है।

शक्कर के अन्य प्रकार

क्यूब शुगर (शक्कर के घनाकार टुकड़े) महीन दाने वाली शक्कर के कणों को यांत्रिक रूप से घन का आकार देकर बनाई जाती है। यह एक महंगी प्रक्रिया है, इसलिए क्यूब महंगे मिलते हैं। क्यूब इतने कठोर होने चाहिए कि पैकिंग और परिवहन को झेल सकें, मगर इतने रंध्रयुक्त भी होने चाहिए कि चाय के प्याले में डालने पर घुल जाएं। 'आइसिंग शुगर' या 'कैस्टर शुगर' स्टील के गोले लगे एक घूमने वाले बर्तन में रवेदार शक्कर को बहुत बारीक पीसकर बनाई जाती है, जिसमें सामान्य रूप से लगभग 5 प्रतिशत मांड-पाउडर मिलाया जाता है ताकि रवे आपस में न चिपकें और खिले खिले रहें। इसी कारण से आइसिंग शुगर टिन के डिब्बों में भरकर मुहरबंद कर दी जाती है, ताकि वह नमी ग्रहण न कर ले। भूरी दानेदार शक्कर, जिसमें एक विशिष्ट स्वाद होता है, अंतिम शीरे को प्रबल निर्वात क्रिस्टलाइजेशन द्वारा, उसमें विद्यमान लोहे में से थोड़ा लोहा निकालने और उसके गहरे भूरे रंग को कम करने के बाद बनाते हैं। ऐसी भूरी शक्कर मेज पर कॉफी को मीठा करने के उपयोग में लाई जाती है। भारत में, अधिकतर दानों पर शीरा चढ़ाकर या फिर दुग्ध-शर्करा का घोल चढ़ाकर सफेद शक्कर को रंग दिया जाता है। ऐसे रंगे हुए उत्पाद में क्रिस्टलाइज्ड ब्राउन शुगर का विशिष्ट स्वाद नहीं होता।

द्रव शक्कर अभी भारत में सामान्य नहीं है। शक्कर को केवल इक्षु-शर्करा (गन्ने की शक्कर) है, जिसे किसी अम्ल के साथ गर्म करके या एंजाइम से उपचारित करके उसके दो घटकों ग्लुकोस (द्राक्ष-शर्करा) और फ्रुक्टोस (फल-शर्करा) में तोड़ा जा सकता है। इस मिश्रण को प्रतीप (इनवर्ट) शक्कर कहा जाता है, और द्रव शक्कर लगभग पूरी तरह से उत्क्रमित उत्पाद है। यह शक्कर के समान ही मीठा है, और द्रव होने के कारण कंफेक्शनरी या हल्के पेय बनाते हुए या बेकिंग में या डिब्बा बंद करने में इसका माप करना, या घोलना ठोस शक्कर की अपेक्षा सरल है। शक्कर-प्रतीपन पर चर्चा फिर से, विशेष रूप से अध्याय 10 में भी आएगी।

ग्लुकोस या द्राक्ष शर्करा दो प्रकार की होती है। डैक्स्ट्रो-ग्लुकोस (डैक्स्ट्रोस)

बनाने के लिए किसी अम्ल का उपयोग करके मांड (जो केवल ग्लुकोस इकाइयों की माला भर होता है) के जल को अपघटित किया जाता है। ठोस ग्लुकोस का उपयोग रोगी के आहार के रूप में शक्तिदायक गोली के रूप में और विभिन्न दवाइयों में किया जाता है। द्रव ग्लुकोस भी इसी तरह प्राप्त की जाती है, किंतु मांड का जल केवल आंशिक रूप से ही अपघटित किया जाता है, जिससे कि लगभग 50 प्रतिशत सांद्रण का ग्लुकोस-माल्टोस मिश्रण मिलता है। इसे और आगे लगभग 15 प्रतिशत पानी रह जाने तक वाष्पित किया जाता है। ब्रेड और बिस्कुट बनाने में इसका उपयोग किया जाता है। इसे शरीर के निर्जलीकरण के मामले में सीधे मुंह से भी लिया जाता है। चूंकि मांड बहुतायत से उपलब्ध है और इसका जल-अपघटन भी सरल है, इसलिए ये मीठा बनाने वाले द्रव बहुत सारे मामलों में शक्कर का स्थान लेते जा रहे हैं और हो सकता है कि भविष्य में वे रसोईघर और भोजन की मेज पर भी अपना स्थान बना लें।

गुड़

एक पारंपरिक उत्पाद होने के कारण, समय के साथ परिष्कृत सीधे-सादे तरीकों से बनाया जाता है। काटे हुए गन्नों को कोल्हू में, लकड़ी या पत्थर की ओखली जिसमें लगे मूसल को पशु-शक्ति द्वारा चारों ओर घुमाकर कुचला जाना सामान्य बात थी, किंतु बाद में इस व्यवस्था में संवर्धन करके लकड़ी या धातु के दो रोलर क्षैतिज या ऊर्ध्व रूप से जोड़े गए। आज छोटे मामलों में पशु-चालित, ऊर्ध्व, धातु के तीन नलीदार रोलर वाले कोल्हू और बड़ी मात्रा में गन्ने का रस निकालने के लिए क्षैतिज और बिजली-चालित कोल्हू सामान्य हैं। रस को तत्काल किसी कुंडी या बर्तन में छानकर उबाल लिया जाता है, ताकि सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा उसके ग्लुकोस-फ्रुक्टोस में उत्क्रम रुक जाए, कुछ अशुद्धताएं जम जाएं और उसका रंग हल्का पड़ जाए। झाग को कड़छुल से निकाल दिया जाता है और उबलते हुए रस को साफ करने के लिए उसमें कुछ पारंपरिक चिपचिपे सत्व डाले जाते हैं। ये गुड़हर परिवार के दो पौधों देवली और भिंडी डंठलों से या फिर तीन वृक्षों फालसा (जिसके फलों से गर्मियों में स्फूर्तिदायक अम्लीय पेय बनाया जाता है), सेमल और सुख लाई या कराया वृक्षों की छालों से बनाया जाता है। कराया वृक्ष का चिपचिपा निःस्राव ही, खाद्यों, दवाइयों और कागज निर्माण में उपयोग किया जाने वाला प्रसिद्ध 'कराया' गोंद है। हर बार रस डालने पर झाग ऊपर आ जाता है जिसे निकाल देते हैं। वास्तव में अनुभव से पता चला है कि आंच कुंडी के एक कोने पर ही दी जानी चाहिए, ताकि ठंडा द्रव संवहन द्वारा झाग को दूसरे कोने पर ले जाए। जब द्रव लगभग पूरी तरह से साफ हो जाता है, तब साफ होने की प्रक्रिया पूरी करने के लिए थोड़ी थोड़ी मात्रा में सज्जी (सोडियम कार्बोनेट, सोडियम सल्फेट और सोडियम

क्लोराइड का एक अपरिष्कृत मिश्रण) डाला जाता है। पहला झाग हरा-सा होता है और इसे धांद्री कहा जाता है, अंतिम सफेद झाग चंदोई कहलाता है और इसका आ जाना इस बात का संकेत है कि सफाई की प्रक्रिया पूरी हो गई है। अब रस को खूब उबालते हैं जिससे कि पानी भाप बनकर उड़ जाए और रस लगभग अर्ध ठोस आकार में गाढ़ा हो जाए। झाग को नियंत्रित करने के लिए एरंड के बीजों से बनाया जलीय सत्व बार बार छिड़कते हैं। सतह पर उठने वाले बुलबुलों के आकार और प्रकार और उनके फूटने से उत्पन्न होने वाली आवाज से कोई भी अनुभवी कार्यकर्ता बता सकता है कि कब रुक जाना है। अब लगातार हिलाना पड़ता है, ताकि जलकर कोयला न बन जाए और जब रस का ढेर बिना चिपके बर्तन की दीवारों को छोड़ दे, तब उसे एक गोल तश्तरी या चक में उलट दिया जाता है, खुरपी से उसे हिलाते हैं और ठंडा होने देते हैं। जब द्रव लगभग ठोस हो चुका होता है, किंतु फिर भी नरम रहता है, तो उसे खुरपी से खुरचकर निकालते हैं और लड्डुओं के आकार में या आयताकार खंडों में या भेली का आकार दे देते हैं। रात भर में यह कठोर हो जाता है और फिर बोरे या बक्सों में भर दिया जाता है।

गुड़ में गुणवत्ता मुख्य रूप से हल्का रंग, मीठा स्वाद, अंगुलियों के बीच खुरदरापन (खाने के लिए रवेदार पसंद किया जाता है और मिठाइयां बनाने के लिए चिपकने वाले प्रकार का) और कठोरता पर निर्भर करता है। कठोरता उसमें विद्यमान पानी का प्रतिबिंब होती है। क्षेत्रीय प्राथमिकताएं एकदम विरोधी गुणों के लिए भी हैं। यदि बहुत अधिक उत्क्रमण हो चुका है तो सुकरोस (इक्षु शर्करा) के रवे नहीं बनेंगे और संरचना चिपचिपी होगी, मीठापन कम नहीं होगा क्योंकि फ्रुक्टोस (फल शर्करा) सुकरोस से अधिक मीठी होती है और ग्लुकोस कम मीठी। किंतु खांडसारी या रवेदार शक्कर बनाने के लिए गुड़ खरीदने वालों को, यदि अत्याधिक उत्क्रमण हो चुका है, तो उत्पाद कम मिलेगा।

गन्ने के अतिरिक्त पंखिया खजूर या ताड़ और खजूर के मीठे रस से भी, विशेष रूप से बंगाल और तमिलनाडु में गुड़ बनाया जाता है। नारियल और सागू-ताड़ के रस का बहुत कम उपयोग किया जाता है। पुरुष और स्त्री दोनों पौधों में, फूलों वाले वृंत्तों पर चीरा लगाकर रस निकालते हैं। खजूर में उसके तने के ऊपरी छोर पर से रस निकालते हैं। पांवों और शरीर के लिए एक रस्सी के फंदे का उपयोग करते हुए प्रतिदिन दो या तीन बार 20 मीटर ऊंचे चढ़कर मिट्टी की हंडियों को लगाना और निकालना कड़ी मेहनत का काम है। हंडियों को पहले ही चूने से पोत दिया जाता है या धुआं दे दिया जाता है, जिनमें बूंद बूंद रस टपकता है। रस को चट्टी या झाला जैसे मिट्टी के बर्तनों या फिर लोहे के बर्तनों में उबालते हैं। झाग पर नियंत्रण रखने के लिए एरंड के कुचले हुए बीज या खोपरे के टुकड़ों का उपयोग करते हैं। बंगाल में उबालने का काम झालों की एक शृंखला में चरणबद्ध

ढंग से किया जाता है। जब रस लगभग अर्ध ठोस हो जाता है, तो उसे खूब तेजी से हिला-हिला कर ठंडा कर लेते हैं और गुड़ के कुछ रवे उसमें परिपक्वता कारक के रूप में डालते हैं। तमिलनाडु में गाढ़े हो गए रस को नारियल के अर्ध-खोलों में या ताड़ के पत्तों से बनी टोकनी में जो सांचों का भी काम करती है, ठोस होने के लिए डाल देते हैं जब कि बंगाल में शारास कहलाने वाले एक बर्तन में डालते हैं। ताड़-गुड़ का रंग पीला-भूरा होता है और स्वाद में नारियल जैसा बढ़िया होता है। बंगाल में ताड़-गुड़ को दूध के साथ उबालकर दही बनाते हैं, जिसे "मिश्टी दोही" (मीठा दही) कहा जाता है और एक विशेष प्रकार के संदेश में भी विशेष स्वाद के लिए ऐसे गुड़ का उपयोग करते हैं।

खांडसारी या ढेले वाली शक्कर

गन्ने के रस से खांडसारी बनाने की प्रक्रिया ठीक वही है जो गुड़ बनाने के लिए प्रयोग में लाई जाती है, जैसे कि उबालना, साफ करना और गाढ़ा करना, किंतु अंतिम चरण में एक अंतर है। रस को खुले बर्तनों में उस समय उबाला जाता है; जबकि उसमें रवे लगभग बनने ही वाले हों। इस समय (लेकिन ठंडा होने से पहले ही) मिट्टी के बड़े कूंडों या नांदों में ठंडा होने के लिए डाल देते हैं और ठंडा, संतृप्त घोल रवों के निर्माण के लिए छोटे छोटे मिट्टी या टिन के बर्तनों में, जिन्हें कलसी कहते हैं, 7 से 8 दिनों के लिए रख देते हैं। रवों सहित द्रव को राब कहा जाता है और इसी के ठोस खांडसारी की ढेलेदार शक्कर को अलग कर पहले शीरे को छोड़ देते हैं। इसे फिर से उबालकर दुबारा खांडसारी शक्कर प्राप्त की जा सकती है। दूसरी, बार बचा हुआ शीरा रवेदार शक्कर देने के योग्य नहीं होता किंतु उसे फिर से उबालकर मध्यम श्रेणी का गुड़ बनाया जा सकता है।

पोषण में शक्कर

शक्कर स्वयं बहुत अधिक शुद्ध सुकरोस है, जो 99.5 प्रतिशत है। यह कार्बोहाइड्रेट है और प्रति ग्राम में 4 किलो कैलोरी (जिसे पोषण में केवल कैलोरी कहा जाता है) देती है। मांड, ग्लुकोस, फ्रुक्टोस और शक्कर की श्रेणी में किसी भी अन्य उत्पाद का भी यही मूल्य रहता है। पेट में सुकरोस तीव्रता से अपने दो घटकों, ग्लुकोस और फ्रुक्टोस में विभाजित हो जाती है, अतः ग्लुकोस के लिए तत्काल ऊर्जा के स्रोत होने का अतिरंजित दावा विश्वसनीय नहीं है। यद्यपि आज शक्कर या गुड़ का उपयोग इतना व्यापक है, फिर भी वे किसी भी रूप में भोजन के अनिवार्य घटक नहीं हैं। मांड भी पोषण के लिए उतना ही काम करता है, किंतु शक्कर निश्चित रूप से खाद्य पदार्थों को स्वादिष्ट बनाती है।

यहां तक कि उत्क्रमित शक्कर, जो गन्ने के रस से बने गुड़ में 15 से

20 प्रतिशत तक विद्यमान होती है, कैलोरी के स्रोत के रूप में सुकरोस के बराबर ही है। ऐसे गुड़ में कुछ ऐसे घटक भी होते हैं जो शुद्ध दानेदार शक्कर में भी नहीं होते : 10 से 12 प्रतिशत पानी, लगभग 0.5 प्रतिशत प्रोटीन और वसा, कैल्शियम, पोटाश, सोडा और फॉस्फेट जैसे विभिन्न खनिज 4 प्रतिशत, और प्रति 100 ग्राम में लगभग एक मिलीग्राम लोहा और तांबा, जो निर्माण के लिए उपयोग किए गए बर्तनों से आ जाता है। ताड़-गुड़ की अपनी कुछ विशिष्टताएं होती हैं। इसमें सुकरोस का स्तर 80 प्रतिशत होता है, जो कि गन्ने के गुड़ के 60 से 70 प्रतिशत की अपेक्षा अधिक है। उत्क्रमित शक्कर केवल 2 प्रतिशत होती है, प्रोटीन तथा वसा दोनों मिलकर 3 प्रतिशत होते हैं और लोहा प्रति 100 ग्राम में 10 मिलीग्राम तक भी हो सकता है। दानेदार शक्कर से इन अंतरों में से कोई भी पोषण की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण नहीं है। अपवाद शायद लोहे का उच्च स्तर है और वह भी अकार्बनिक रूप (जिसका विलयन कम होता है) में नहीं, बल्कि बंधे हुए, कार्बनिक रूप में विद्यमान होना चाहिए।

आधुनिक समाज की बहुत-सी बीमारियों के लिए शक्कर को दोष दिया जाता है। अस्थि क्षरण या दांतों में गड्ढे पड़ना इनमें से एक है। सामान्य रूप से दांत लार (सलाइवा) की परत से आवृत्त होते हैं। जब शक्करयुक्त खाद्य मुंह में रखा जाता है तो लैक्टोबैसिलस जीवाणु तत्काल इसे अम्ल में बदलने लगता है, और दांत से बहुत लघु मात्रा में कैल्शियम इसमें घुलकर निकल सकता है। साधारण रूप से ताजा लार इस अम्ल को निष्प्रभावी कर देती है, बशर्ते कि शक्कर की मात्रा कम हो और दांत वास्तव में साफ और जीवाणु-मुक्त हों। मुंह में बैक्टिरिया के कुछ अन्य रूप कुल, स्ट्रेप्टोकोकस और एक्टिनोमाइकेस, शक्कर को डैक्स्ट्रॉन नामक एक चिपचिपे पदार्थ में बदल देते हैं, जो दांतों पर जमा हो जाता है, जहां वह एक फीकी, गंदली सफेद परत के रूप में ''टूथ प्लाक'' कहा जाता है। प्लाक या दांतों पर जमी पट्टी ग्लुकोस में टूट कर अम्ल बनाती है। जब प्लाक विद्यमान रहता है, तो क्रिया केवल शक्कर खाने पर ही नहीं, बल्कि निरंतर होती रहती है। जब अम्ल दांतों में वास्तव में छेद कर देता है, तब दंत-क्षरण होता है। इसका निदान यही है कि मीठे से बचा जाए, नरम ब्रश से अच्छी तरह दांत साफ किए जाएं, और हर बार खाने के बाद कुल्ला करने की अच्छी भारतीय आदत अपनाई जाए।

आयु के साथ आने वाले मधुमेह में, शक्कर से बचा जाए। यह केवल इस कारण नहीं कि शक्कर के चयापचयन के लिए शरीर में इंसुलिन की कमी है, बल्कि इसलिए भी कि ग्लुकोस को कोशिकाओं में स्थानांतरित करने के लिए और अधिक इंसुलिन की आवश्यकता जान पड़ती है, ताकि इंसुलिन का निर्माण बढ़ जाए। इसका कोई प्रमाण नहीं है कि अधिक शक्कर खाने से मधुमेह होता है, परंतु एक बार यह हो जाए तो शक्कर छोड़ देनी चाहिए। आज भोजन में चावल और गेहूं जैसे

धान्यों को अत्याधिक कम कर देने का परामर्श नहीं दिया जाता, इसके स्थान पर भोजन हल्का हो और पूरे दिन भर में उसे अनेक बार समान मात्रा में किया जाना चाहिए।

मोटापे के बारे में क्या? शक्कर अपने आप में अधिक वजन का कारण नहीं है, और भोजन से मिलने वाली कोई भी ऊर्जा, जिसका उपयोग न हुआ हो, फिर चाहे जो भी उसका स्रोत (उदाहरण के लिए, तेल) हो, वह शरीर में मुख्य रूप से वसा में संचित हो जाती है। अंतर तो मानवीय है : वसा स्वाद कलिकाओं को उकसाती नहीं, जबकि कोई मीठा नाश्ता अत्याधिक सम्मोहक होता है।

हृदय रोग को बहुधा रसोई में खाना पकाने के लिए उपयोग में लाए गए तेल के प्रकार और गुणवत्ता से जोड़ा जाता है। फिर भी, शक्कर के उपयोग के साथ भी संबंध बलात जोड़ा जाता है। यह बताया गया है कि आबादी के वे संपन्न समाज या समूह, जिनमें कोरोनेरी थ्रॉम्बोसिस का खतरा ज्यादा होता है, अनेक प्रकार के पर्यावरणीय तनावों से ग्रस्त होते हैं, किंतु शक्कर का अधिक उपयोग हमेशा उनमें से एक बताया जाता है। कोरोनरी थ्रॉम्बोसिस में पाई गई अनेक नैदानिक और प्रयोगशालागत असामान्यताएं प्रायोगिक रूप से शक्कर बहुल भोजन द्वारा भी प्रस्तुत की गई हैं। यह भी है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में हृदयाघात की संभावना कम होती है, जिसके लिए स्त्रियों में डिंबक्षरण चक्र के द्वारा उत्प्रेरित हारमोन संतुलन में गड़बड़ी उत्तरदायी है। मधुमेह और हृदय रोग में निकट संबंध बताता है कि दोनों का मूल कारण रक्त में इंसुलिन का बढ़ा हुआ मिश्रण है, जो शक्कर खाने के बाद होता है। निश्चय ही अन्य तथ्यों जैसे धूम्रपान और शारीरिक निष्क्रियता, का भी इंसुलिन के छोड़े जाने पर थोड़ा प्रभाव होता है।

भारत में शक्कर/गुड़ का अंतर्ग्रहण 35 ग्राम प्रतिदिन है, जिसमें सबसे ऊंचे आंकड़े पंजाब (80 ग्राम) और गुजरात (50 ग्राम) तथा सबसे कम (20 से 10 ग्राम) आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल और उड़ीसा से हैं। भारत में समृद्ध समूह भी, अनेक विकसित देशों के राष्ट्रीय औसतों से भी जो कि 150 ग्राम प्रतिदिन से भी अधिक हो सकता है, कम शक्कर खाते हैं।

शहद

बीस हजार साल पुराने गुहा-चित्रों में मधुमक्खियों के छत्तों को लूटते और परिणाम स्वरूप डंक मारे जाते लोग दिखाए गए हैं। शहद का वास्तव में मनुष्य द्वारा संसाधन नहीं किया जाता। मधुमक्खियों को इसका श्रेय जाता है, जो फूलों के रस से अपने शरीरों में बनाए गए शहद को संचित भंडारण के लिए कारखानों का निर्माण करती हैं। जब किसी मधुमक्खी को रस का नया स्रोत मिलता है, तो वह छत्ते पर वापस आती है और दूसरी मधुमक्खियों के सामने एक प्रकार का नृत्य करती है, नृत्य

का कोण सूर्य के संदर्भ में शहद के स्रोत की दिशा दर्शाता है और पेट का कंपन छत्ते से उसकी दूरी का संकेत देता है। प्रत्येक मधुमक्खी जन्मजात सर्वेक्षक, शिक्षक और कार्यकर्ता होती है।

आज शहद औद्योगिक रूप से बाजार में बिकने वाला खाद्य है। चलित भीतरी चौखटों सहित कृत्रिम छत्ते काम में लाए जाते हैं, और जब शहद तैयार हो जाता है, तब हर कोष चाकू की सहायता से खोल दिया जाता है जिसके बाद मोम का कोशिकीय छत्ता नष्ट किए बिना चौखटे को अपकेंद्री घुमाकर शहद निकाल लिया जाता है। छत्ते को फिर से उपयोग में लाया जा सकता है। शहद को एक घंटे तक गर्म रखकर अतिरिक्त पानी निकाला जाता है। किंतु अत्याधिक ताप से एंजाइम की सक्रियता नष्ट हो जाती है। भारतीय शहद में निम्नांकित पदार्थ होते हैं जिन्हें प्रतिशतों में व्यक्त किया गया है। पानी 20, शक्कर (सुकरोस) 3, ग्लुकोस 11, फ्रुक्टोस 39, अन्य शर्कराएं, गोंद, मोम और खनिज 7। इसके अतिरिक्त इसमें थोड़े बी-विटामिन और थोड़ा-सा विटामिन सी है। रखे रहने पर, विशेष रूप से ठंडे मौसम में, सुकरोस और ग्लुकोस गूदेदार रवों के रूप में बैठने लगते हैं, जिन्हें गर्म करके फिर से घोला जा सकता है। रोगकारकों सहित सूक्ष्म जीवाणु शहद में नहीं पनपते जिसका कारण शायद उसका अत्याधिक रसाकर्षणीय दबाव है।

शहद के बारे में पोषण संबंधी अनेक कल्पित बातें हैं, जैसे कि उर्वरता, यौवन और दीर्घायु के लिए इसका योगदान, जिसे इसकी संरचना मिथ्या सिद्ध करती है। इसमें अधिकतर शर्कराएं हैं, और इसलिए मेज पर रखी जाने वाली सामान्य शक्कर से अधिक पोषक मूल्य इसमें नहीं है। इसमें विटामिन इतने कम हैं कि उनका पौष्टिकता पर कोई ठोस प्रभाव नहीं होता। जैसा कि हमने देखा शक्कर का दांतों के अस्थि क्षरण से संबंध है और शहद इससे अलग नहीं है। शरीर में ग्लुकोस आंत में अंतर्लीन हो जाता है, इसलिए किसी शारीरिक क्रिया के पूर्व त्वरित ऊर्जा के लिए शहद और ग्लुकोस खाने की प्रामाणिकता संदेहास्पद है : शक्कर से भी काम चल सकता है। शहद में लंबे समय तक बने रहने वाला स्वाद और कोमल गंध अवश्य है, जो इसके बारे में किए जाने वाले अन्य अतिरंजित दावों की आवश्यकता के बिना भी अपने आप में आनंददायक है।

मीठा बनाने वाले अन्य पदार्थ

मधुमेह के रोगी विशेष रूप से गोली या द्रव के रूप में सैकरीन से परिचित हैं जो कि मीठा होता है। हल्के पेयों में भी काफी सैकरीन डलता है, जिसकी एक बोतल में लगभग 18 मिलीग्राम सैकरीन होता है। सैकरीन के मीठेपन की खोज संयोगवश तब हुई जब फाहलबर्ग नाम के एक रसायनज्ञ ने प्रयोगशाला में इस तत्व पर काम करने के बाद ब्रेड का एक टुकड़ा खाया। सैकरीन पैट्रोलियम में विद्यमान एक रसायन

टॉल्यइन से आरंभ कर, कई चरणों में बनाया जाता है। चूंकि सैकरीन स्वयं पानी में अधिक घुलनशील नहीं है, इसलिए इसके अपने सर्वाधिक घुलनशील रूप सोडियम सॉल्ट का उपयोग किया जाता है। एक भय रहा है कि जानवरों पर परीक्षण में सैकरीन के उपयोग से मूत्राशय के कैंसर में वृद्धि होती है, किंतु सारे संसार भर में मधुमेह के रोगियों द्वारा भारी मात्रा में उपयोग के 50 वर्ष के इतिहास से जान पड़ता है कि इसके उपभोग से कोई खतरा नहीं है।

एक अन्य मीठा बनाने वाला कारक सोडियम साइक्लेमेट भी कैंसर कारक होने के संदेह से घिरता रहा है, परंतु यह संदेह ही है कि वास्तव में ऐसा है। एक अन्य पेट्रो-रसायन *एनिलिन* से यह बनाया जाता है और जबकि मिश्रण स्वयं मीठा और खारा है, इसके दोनों लवण सोडियम और कैल्शियम सॉल्ट बहुत मीठे हैं।

एक तीसरा मीठा पदार्थ, जिसे गहन परीक्षणों के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका में उपयोग के लिए अनुमति दी गई है, *एस्पार्टेम* कहा जाता है। यह दो एमीनो एसिड—एस्पार्टिक एसिड और फिनायलेलेनिन का मिश्रण है और मिथाइल एस्टर के रूप में होता है। अभी यह भारत में उपयोग नहीं किया जाता।

पश्चिमी अफ्रीका में पाया जाने वाला एक फल 'थाऊमैटोकोकस डेनियेलि' कहलाता है, जिसमें बहुत मीठे स्वाद वाला प्रोटीन 'थाऊमैटिन' होता है। इस पर अभी परीक्षण किए जा रहे हैं। अनेक लोग जानते हैं कि खट्टे आंवले को चबाने के बाद पानी पीने पर बहुत मीठा लगता है। यह धारणा मीठा बनाने वाले नए तत्वों की खोज में प्रासंगिक हो सकती है।

मीठेपन का कारण क्या है?

शक्कर के मीठेपन को एक मानकर चलें, तो उत्क्रमित शक्कर का मीठापन 1.2 होगा, फ्रुक्टोस (फलशर्करा) का 1.8 और डी-ग्लुकोस का 0.7 होगा। घुलनशील रूप में सैकरीन, जैसी कि उपयोग की जाती है, शक्कर से 300 गुना मीठी होती है किंतु बाद में एक कटु स्वाद रहता है। इसी प्रकार मीठेपन का कारक साइक्लेमेट (सुकरोस से 15 गुना मीठा) भी कटु स्वाद छोड़ता है, परंतु कम मात्रा में। मीठेपन के नए माध्यम एस्पार्टेम में शक्कर जैसा शुद्ध मीठापन है किंतु यह 150 गुना अधिक शक्तिशाली है। एक ऐसा रसायन भी है जो शक्कर से 22,000 गुना मीठा है। कुछ प्राकृतिक सरल फलों में, जिन्हें चमत्कारी फल और संयोगवश खोजे गए भाग्यवान सरस फल कहा जाता है, बहुत सघन मीठे प्रोटीन होते हैं।

इन पदार्थों का लाभ यह है कि हल्के पेयों और औषधियों में बहुत कम मात्रा में उनका उपयोग किया जा सकता है और इस प्रकार शक्कर के ढेर का उपयोग करने से बचा जा सकता है। शक्कर खाने का अर्थ कैलोरी भी होता है और मधुमेह के रोगियों के अतिरिक्त जो अपने वजन पर नजर रखते हैं, वे भी मीठेपन के अन्य

कारकों का उपयोग करना पसंद करेंगे। अन्य देशों में मधुमेह के रोगियों के लिए विशेष मीठे खाद्य बनाए जाते हैं, जिनमें शक्कर नहीं होती।

जीभ पर मिठास के लिए विशेष स्वाद कलिकाएं या स्वाद प्रणाली अवयव होते हैं, जो दूसरे–जैसे खारे, खट्टे और कटु स्वादों से अलग होते हैं। मीठे स्वाद को लाने के लिए यह पाया गया है कि रसायन में दो केंद्र होने चाहिए, 'ए' और 'बी', जो रासायनिक शब्दावली में विद्युतीय रूप से ऋणात्मक हों। इसके अतिरिक्त 'ए' में हाइड्रोजन के परमाणु 'एच' के साथ शिथिलतापूर्वक जुड़ने की क्षमता होनी चाहिए, जिससे एक 'ए. एच.बी.' प्रणाली मिले। इसके साथ ही 'ए', 'एच' और 'बी' की कक्षाओं के बीच एक विशिष्ट दूरी, ठीक 3 एंग्स्ट्रॉम इकाइयों की दूरी, होनी चाहिए। यह भी अभिधारणा है कि स्वाद कलिका पर एक प्रकार की ग्राही गुफा होती है, जिसमें मिठासकारक ठीक से समा सके। यह सब शक्कर के लिए चित्र में दर्शाया गया है।
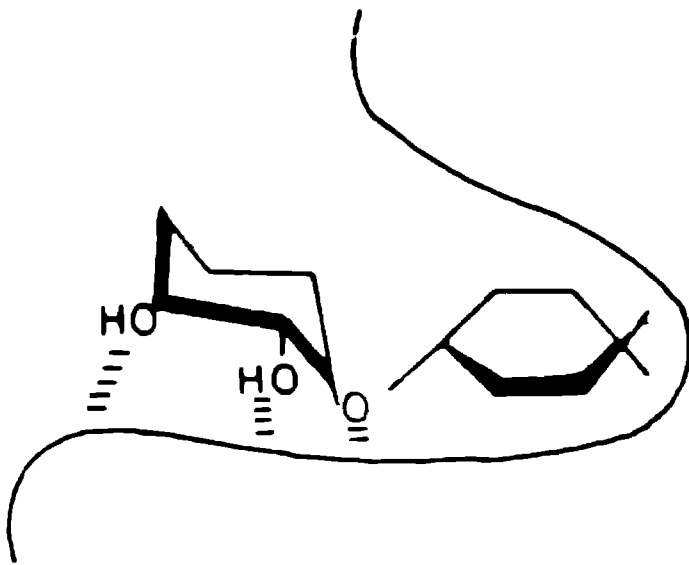
सैकरीन जैसे कड़वे-मीठे मिश्रण, समझा जाता है कि एक छोर पर 'ए.एच-बी' प्रणाली से मिठास ग्राही के साथ और दूसरे छोर पर कटु ग्राही के साथ प्रतिक्रिया करते हैं।

खाद्यों में शक्कर की भूमिका

शक्कर मीठेपन का माध्यम तो है ही, किंतु इसे भोजन में अन्य अनेक भूमिकाएं भी निभानी होती है। यह आहार में किसी भी अम्लीय, लवणीय या तिक्त-कटु स्वादों को हल्का कर देती है और इस प्रकार से भी खाना पकाने में इसका उपयोग किया जाता है। उबली हुई मिठाइयों का शीशे जैसा दिखना, स्पंज केक की संरचना, कुल्फी का लसीलापन, हल्के पेयों और आइसक्रीम का मुंह में मृदु लगना, मैसूर पाक, पेड़े या सूखे लड्डू की किरकिराहट, इस सबका बहुत कुछ श्रेय उसमें विद्यमान शक्कर के रूप को है। केक की आइसिंग में, स्पन कैंडी में या शक्कर लिपटे काजुओं में सज्जात्मक चमक शक्कर के महीन रवों के कारण आती है। मुरब्बे में शक्कर रोगाणुओं के विरुद्ध संरक्षण क्रिया करती है और जैम जैसे अम्लीय उत्पादों में शक्कर सिरके (एसेटिक एसिड) या साइट्रिक एसिड की क्रिया को बढ़ा देती है जैसा कि हम

अध्याय 9 में देखेंगे। अम्लों या एंजाइमों को उबालकर शक्कर का ग्लुकोस और फ्रुक्टोस के रूप में उत्क्रमण, जैम और जैली, ब्रेड और केक, रसगुल्ला और जलेबी जैसे अनेक खाद्यों को तैयार करने में महत्वपूर्ण है, जैसा कि अध्याय 10 में बताया गया है। माययार्ड प्रतिक्रिया, जो उत्क्रमित शक्कर पर होती है, जैसा कि हम अध्याय 8 में देखेंगे, ब्रेड, चपाती और नानखताई जैसे बेक किए गए खाद्यों पर, भूने हुए धान्यों, अनाजों और काष्ठफलों और सेव जैसे तले हुए खाद्यों के रंग और स्वाद में एक प्रमुख भूमिका निभाती है। भूरा रंग लाने के लिए शक्कर का दग्धीकरण ब्रेड की पपड़ी की बेकिंग में, चपाती को सेंकने में, गुलाब जामुन को तलने में, चिक्की के कठोर सांचे में और तिल के लड्डू के लचीले आधार में दिखाई देता है।

लवण

प्रतिदिन के साधारण नमक का एक पुरातन और मोहक इतिहास है। चार हजार वर्ष पूर्व चीनियों ने समुद्र के जल से नमक तैयार करने के बारे में लिखा। रोमन सिपाहियों को नमक के रूप में वेतन दिया जाता था और "सालडेयर" शब्द से, जिसका अर्थ है नमक देना, "सोलजर" (सैनिक) शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। लैटिन में सेलेरियम शब्द का अर्थ है नमक मुद्रा, अलबत्ता आज हम अपनी सैलरी (वेतन) अन्य रूपों में प्राप्त करना पसंद करते हैं। तेरहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध यात्री मार्को पोलो ने लिखा है कि तिब्बत में कुबला खान की सील से युक्त नमक को धन के रूप में उपयोग किया जाता था। इस प्रकार नमक कभी एक मूल्यवान पदार्थ था।

आज नमक बहुतायत में है, शुद्ध है और भोजन का बहुत सस्ता अवयव है। अन्य देशों में यह मुख्य रूप से नमक की ठोस चट्टानों से जैसे कि संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ में, नमक की झीलों से (संयुक्त राज्य अमेरिका और जॉर्डन) या भूमिगत नमक-स्रोतों से (फिलीपींस और तुर्की) प्राप्त किया जाता है। भारत में हम इसे इन सभी स्रोतों से पाते हैं, परंतु मुख्य रूप से समुद्र तट पर स्थित हर राज्य में समुद्रजल से प्राप्त करते हैं क्योंकि हमारे समुद्र तट की लंबाई 5600 किलोमीटर है। समुद्र का जल या खारा पानी पहले एक मुख्य हौज में बहाकर इकट्ठा कर देते हैं, जहां से उसे एक विशेष प्रकार के अनेक, रवा बनाने वाले कुंडों में (80 मीटर लंबे और इतने ही चौड़े किंतु केवल 5 सेंटीमीटर गहरे) लाते हैं, जिनका फर्श ठोक-ठोक कर कठोर कर दिया जाता है, जहां धूप के कारण वाष्पीकरण होता है। आज रिसाव को रोकने के लिए प्लास्टिक अस्तर का उपयोग किया जाता है। जैसे जैसे पानी भाप बनकर उड़ता है, समुद्रजल में विद्यमान कम घुलनशील लवण जैसे कैल्शियम कार्बोनेट और कैल्शियम सल्फेट पहले रवा बनते हैं, फिर सोडियम क्लोराइड की भारी मात्रा रवों का रूप धारण करती है, और अवशिष्ट बिटर्न,

जैसा कि उन्हें कहा जाता है, वाष्पीकरण पर मैगनेशियम क्लोराइड, मैगनेशियम सल्फेट और सोडियम सल्फेट देते हैं, जो बच गए सोडियम क्लोराइड के साथ मिले रहते हैं। अन्य लवण द्रव को अगले क्रिस्टलाइजर में बहाकर एकत्रित करते हैं जिससे उपोत्पाद पीछे रह जाते हैं। मुख्य नमक उत्पाद को ऊंचे ऊंचे ढेरों में लगा देते हैं और उन्हें धूप में सुखा लेते हैं।

नमक की झीलों से भी नमक बनाने के लिए ऐसी ही विधियों का उपयोग किया जाता है, जैसे कि राजस्थान की सांभर झील, उड़ीसा की चिल्का झील और इसी प्रकार कच्छ के रन के दलदली नमक स्रोतों, केरल में मानकुडी झील और तमिलनाडु के वेदारण्यम दलदल में किया जाता है। पहाड़ी नमक का खनन भारत में केवल हिमाचल प्रदेश में मंडी नामक स्थान पर किया जाता है और यह हल्की गुणवत्ता का होता है। इसका मुख्य उपयोग मवेशियों को चटाने के लिए लेहन बनाने में किया जाता है, जिसमें मवेशियों के लिए आवश्यक विभिन्न खनिज लवणों का मिश्रण होता है।

भारत में बनाए जाने वाले नमक के विभिन्न प्रकारों के लिए ऐतिहासिक रूप से स्थानीय नाम हैं। कुरकुच्छ प्रकार का नमक महाराष्ट्र, गुजरात और सांभर झील में बनता है, कुप्पा और बारगरा गुजरात में, पांगा पश्चिम बंगाल में तथा गुलाब क्यार और रेश्ता राजस्थान में बनाया जाता है। ये सब अच्छे प्रकार के नमक हैं, जिनमें 96 प्रतिशत या उससे भी अधिक सोडियम क्लोराइड और एक प्रतिशत से भी कम मैगनेशियम क्लोराइड होता है। इससे थोड़े हल्के प्रकार के नमक जिनमें 90 से 92 प्रतिशत वास्तविक नमक होता है, मापी और वाजनी सभी दक्षिणी राज्यों, उड़ीसा और महाराष्ट्र में बनाए जाते हैं। गुजरात में बनाया जाने वाला बारगरा नमक "क्यूब" (घनाकार) रूप में आता है जो हर दिशा में एक सेंटीमीटर तक बड़ा होता है, रंग में सफेद से पीले या स्लेटी रंग तक का होता है।

मेज पर उपयोग किए जाने वाले बढ़िया प्रकार के नमक के लिए, इन नमकों को आगे और परिष्कृत किया जाता है। उनमें हमेशा थोड़ी मिट्टी और धूल लगी रहती है; समुद्र जल के नमक में थोड़ा मैगनेशियम और कैल्शियम सल्फेट और सांभर झील के नमक में थोड़ा सोडियम कार्बोनेट, बायकार्बोनेट, और सल्फेट होता है। औषधियों और औषध-निर्माण में, मक्खन और चीज़ बनाने में, फलों और सब्जियों को डिब्बाबंद करने में और मछलियों के संसाधन में विशेष रूप से शुद्ध नमक की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे शुद्धिकरण में मुख्य रूप से नमक को सोडियम क्लोराइड के सांद्रित घोल से धोते हैं, जिसमें अघुलनशील अशुद्धियां अलग हो जाती हैं और मैगनेशियम सल्फेट घोल में मिल जाता है। इसके बाद सांद्रित घोल में नमक को बारी बारी से कैल्शियम हाइड्रोक्साइड (चूने) और सोडियम कार्बोनेट (सोडा एश) के घोल में उपचारित करते हैं। इसके बाद घोल को छान लेते हैं और निस्यंद (छने

हुए घोल) का खुले बर्तनों में वाष्पीकरण करते हैं। इन वर्तनों में झुके हुए विलोड़क लगे होते हैं जो एक-सी धीमी गति से घूमते हैं जिससे गोल और एक-से दाने बनते हैं। जब ये सही आकार ग्रहण कर लेते हैं तो अपकेंद्रण के द्वारा द्रव से अलग कर देते हैं, आवन में सुखाकर फिर उन्हें 0.5 प्रतिशत पैराफिन मोम और आधारभूत मैगनेशियम कार्बोनेट या ट्राइकेल्शियम फॉस्फेट से आवृत्त कर दिया जाता है जिससे कि उन्हें नमी ग्रहण करने, आपस में चिपकने और वर्षा ऋतु में निर्बाध बहने से बचाया जा सके। डेयरी नमक भी इसी प्रकार बनाया जाता है, किंतु कोई आवरण नहीं चढ़ाया जाता, इसके स्थान पर नमक के कण छानकर और 140° से. पर निर्जीवीकृत करके डिब्बाबंद कर देते हैं।

भोजन में नमक

सरलता से काम करने के लिए शरीर को पोटेशियम, लोहा, तांबा, कोबाल्ट, जस्ता, मैगनेशियम, मैंगनीज इत्यादि धातुओं की प्रतिदिन कुछ मिलीग्राम या कुछ माइक्रोग्राम की बहुत छोटी मात्रा में आवश्यकता होती है। फिर भी सोडियम एक प्रमुख आवश्यकता है और इसकी पूर्ति सामान्य रूप से सोडियम क्लोराइड या साधारण नमक से होती है। प्रतिदिन लगभग एक ग्राम नमक लेना पर्याप्त है, अलबत्ता भारत में इससे चार गुना मात्रा में उपलब्ध है। अनेक विकसित देशों में आवश्यकता से 10 गुना अधिक उपभोग हो सकता है क्योंकि प्रत्येक संसाधित खाद्य में कम या अधिक मात्रा में संरक्षण के लिए नमक होता है। विशेष रूप से चीज़, मक्खन, मांस और नमकीन शूकर मांस (बेकन) में बड़ी मात्रा में नमक डाला जाता है।

नमक में विद्यमान सोडियम शरीर के तरल पदार्थों में एक निश्चित दबाव बनाए रखने में सहायता करता है, जो इस प्रकार कोशिकाओं के भीतर और बाहर पानी की गतिविधि को नियमित करता है। इससे तथाकथित जल संतुलन बनता है और यह शरीर के निर्जलीकरण को प्रभावित करता है। परिणामस्वरूप अधिक नमक ग्रहण करना उच्च रक्तचाप का कारण बनता है, जो कि विकसित देशों में बहुत ही सामान्य स्थिति है। नमक रक्त अम्लीयता और शरीर में अम्ल आधारित संतुलन को नियमित करने में गुर्दों की सहायता करता है। हृदय की अनवरत धड़कन भी अप्रत्यक्ष रूप से सोडियम और पोटेशियम दोनों की उपस्थिति से संबंधित है, जो संकुचित मांसपेशियों को शिथिल करने में भूमिका निभाते हैं। उच्च रक्तचाप में, गुर्दे की अनियमितता में और गर्भवती स्त्रियों को होने वाली टखनों की सूजन में कम नमक की खुराक आवश्यक होती है। दूसरी ओर, ऐसी स्त्रियों में ऐंठन का कारण अधिक नमक खाने की आदत होती है। जो बहुत गर्म स्थितियों में काम करते हैं, जैसे कि गरमियों के दिनों में खुले आकाश में नीचे शारीरिक श्रम करने वाले या फाउंड्री, स्टील मिल, रेलवे इंजन, कोयले की खान जैसे बहुत गर्म क्षेत्रों में काम करने वाले पसीने के

साथ इतना नमक निकाल देते हैं कि पेशियों मे ऐंठन, थकान और बेहोशी भी आ सकती है। नमक की गोली चूसना ही इसका इलाज है।

चूंकि नमक हर एक के द्वारा, बड़े या छोटे सबके द्वारा खाया जाता है और काफी समान मात्रा में, इसलिए इसे पोषक तत्वों का वाहक बनाने का सुझाव आया। नमक में पानी में घुलनशील रूप में विटामिन 'ए' मिलाने के प्रयत्न किए गए परंतु व्यावसायिक रूप से इसमें प्रगति नहीं हुई। भारत में किए गए प्रयोगों में नमक में लोहा मिलाने की अच्छी संभावनाएं दिखाई दी हैं। लगभग सार्वत्रिक रूप से भारतीय आबादी के सभी भागों में इस खनिज की कमी है, जिसका कारण खाद्य की न्यूनतम उपलब्धता और भारी धान्य आधारित आहारों का अंतर्ग्रहण है, जिसमें फायटेट, आहार संबंधी रेशे और टैनिन बहुत होते हैं। अनेक समस्याएं हल की जा चुकी हैं : लौहयुक्त नमक को भंडारन करने पर भूरा होने से बचाना, अवशोषित लोहे का अनुपात बढ़ाना, और नमक में लोहे को समान रूप से मिश्रित करना। स्थलीय अध्ययन दर्शाते हैं कि व्यवहार में ऐसे नमक से बच्चों में रक्त हीमोग्लोबिन बढ़ जाता है। जब भी आरंभ किया जाए, लौह प्रबलीकृत नमक का वास्तविक उत्पादन और बाजार में विक्रय जन-स्वास्थ्य के लिए एक महत्वपूर्ण उपाय सिद्ध होगा।

भारत में पोटेशियम आयोडेट युक्त नमक बहुत लंबे समय से बनता रहा है। यह हिमालय की तराई में बेचे जाने के लिए होता है जहां कुछ क्षेत्रों में खाद्य और पेयजल में पर्याप्त आयोडिन नहीं होता। परिणामस्वरूप गले में थायराइड ग्रंथि फूलने लगती है और आंखें बाहर आने लगती हैं, जिसे घेघा या गलगंड रोग कहा जाता है। ऐसे जन्मजात गलगंड रोगी लोगों का एक बड़ा अनुपात 'जड़वामन' भी पाया गया है। जड़वामन उन लोगों को कहा जाता है जो मानसिक और शारीरिक रूप से बहुत मंद होते हैं और बहुधा गूंगे और बहरे भी होते हैं। नमक के 10,000 भाग में पोटेशियम आयोडेट के रूप में आयोडिन का केवल एक भाग मिलाना भी ऐसे कष्टजनक आविर्भावों को रोकने के लिए पर्याप्त है।

सोडियम क्लोराइड के अतिरिक्त पशुओं को भी अन्य खनिज लवणों की आवश्यकता होती है। मवेशियों के लिए सही खनिजों के मिश्रण के साथ साधारण नमक के लेहन भारत में बनाए जाते हैं।

5. जीवन की चटक

मिर्च मसाले और बूटियां

भारतीय विरासत

भारत को मसालों का घर अकारण ही नहीं कहा जाता, क्योंकि कम से कम पचास मसाले तो व्यापक रूप से विख्यात हैं और शायद इससे आधे, लगभग हर दिन उपयोग किए जाते हैं। प्राचीन काल से ही व्यापारिक जहाज भारतीय मसाले मध्य-पूर्व और यूरोप ले जाते थे। धन और महंगे मसालों, दोनों का लालच ही पश्चिमी दुस्साहसियों को इस देश में लेकर आया। वास्कोडिगामा जब पुर्तगाल वापस लौटा, तो उसके साथ उन चार में से केवल दो ही जहाज थे, जिन्हें लेकर वह चला था, किंतु इन दो जहाजों में इतने मसाले और अन्य सामान था, जिनकी कीमत उसके यात्रा खर्च से आठ गुना थी।

पश्चिमी देशों में मसालों के संरक्षणकारी प्रभाव का ही प्रमुख महत्व था। मांस को एक साल तक के लिए प्रशीतन के बिना भी लौंग, लकड़ी के धुएं, खनिज लवण इत्यादि से मार्जित करके रखा जा सकता था। संसाधित सूअर का मांस और सॉसेज को मसालों में अच्छी तरह लपेटकर रखा जाता है। सरसों के बीज और पिसी हुई सरसों भी इस प्रकार नाशवान मांसाहार का जीवन लंबा करने के लिए उपयोग किए जाते थे। भारत में अचार बनाते हुए मसालों और तेल का उपयोग निश्चित रूप से एक ऊंची कला के रूप में विकसित हुआ, जैसा कि अध्याय 9 में दर्शाया गया है। प्रतिदिन भोजन पकाए जाने में मसालों का और भी व्यापक उपयोग किया जाता है, जहां इन सामग्रियों की सुगंध, स्वाद और रंग प्रमुख महत्व रखते हैं। वास्तव में हमारे विशाल देश में भोजन पकाने की अगणित क्षेत्रीय शैलियों की प्रसिद्ध विशिष्टताएं, उपयोग की जाने वाली मूलभूत खाद्य सामग्रियों जैसे गेहूं, दालों, सब्जियों और कंदों में बहुत कम निहित हैं। इसके बजाय ये हर क्षेत्र में, हर समुदाय में और निश्चित रूप से हर घर में मसालों के विशेष मिश्रणों में निहित हैं, जो हर आहार को उसका

विशिष्ट चरित्र देते हैं। सरसों से मसालेदार बनाई गई बंगाल की झोलदार मछली, गोवा के सिरके पर आधारित विंडालू से बहुत भिन्न होती है। इमली, हींग और हल्दी से सुगंधित दक्षिणी तुवर दाल सांभर, घी में भुने सरसों के बीज और कटे हुए हरे धनिये से युक्त गाढ़ी "मीठी" तुवर दाल से बहुत अलग चीज है।

मसालों की कच्ची सामग्री को मेज पर या रसोईघर के उत्पाद में बदलने के लिए सामान्य रूप से केवल मामूली प्रौद्योगिकी की आवश्यकता होती है, जैसे कि धूप में सुखाना, प्राकृतिक रूप से हलका खमीरीकरण या पिसाई। स्वाद, तैलीय राल और रंग को तैयार करने के लिए उच्च प्रौद्योगिकी नया विकास है, जिसकी हम बाद में चर्चा करेंगे। धूप में या छाया में सुखाने की विधि का उपयोग कई प्रकार की वस्तुओं के साथ किया जाता है : दालचीनी जैसी छालें, लौंग जैसी कलियां और केसर (जाफरान) के लिए पोस्त के जैसे पुष्पकोष। साबुत फलों और काष्ठ फलों जैसे सौंफ, इलायची, जीरा, काला जीरा, काली मिर्च और जायफल, तथा फलों के गूदे जैसे कोकम, आम, और इमली, मेथी जैसा फलकोष और यहां तक कि जावित्री जैसे फल का बीजकोष भी सुखाया जाता है। सुखाने के लिए जमीन के नीचे से लहसुन, प्याज, अदरक और हल्दी जैसे कंद और प्रकंद मिलते हैं। कुछ मसाले एक बार सुखा लेने के बाद पीसे भी जा सकते हैं जैसे मिर्च, हल्दी और धनिया। दालचीनी की छाल और वैनिला के कोये से गूदा हटाने के लिए प्राकृतिक प्रकार के खमीरीकरण का उपयोग किया जाता है। हींग को प्राप्त करने के लिए जड़ में चीरा लगाया जाता है, जिससे होने वाले रिसाव को एकत्रित कर लिया जाता है। इसलिए मसाले तैयार करने में थोड़ी प्रौद्योगिकी की आवश्यकता होती है, अलबत्ता यह विशेष रूप से परिष्कृत प्रकार की नहीं होती।

मसालों में क्या होता है?

अधिकतर वानस्पतिक कार्बनिक पदार्थ के समान मिर्च-मसाले और बूटियां अपनी प्राकृतिक अवस्था में काफी पानी रखते हैं, किंतु पत्तेदार शाक के अतिरिक्त, रसोई में यह सामग्री आंशिक या पूर्ण रूप से सुखाए हुए उत्पाद के रूप में होती है, जिसका जीवन रसोई की अलमारी में काफी लंबा होता है। हरी मिर्च, हरी गोल मिर्च और ताजा धनिया में 65 से 84 प्रतिशत तक पानी होता है, जबकि सुखाई हुई अदरक में 60 प्रतिशत, सुखाई गई लौंग में 25 प्रतिशत और सूखी इमली में 20 प्रतिशत पानी रहता है। अधिकतर अन्य मसाला सामग्री को पानी के 10 से 15 प्रतिशत स्तर तक सुखा दिया जाता है।

पानी के अतिरिक्त, प्राकृतिक कार्बनिक उत्पाद होने के कारण, वे विभिन्न प्रकारों के कार्बोहाइड्रेटों से बने होते हैं, जैसे सैल्यूलोज, मांड, शर्कराएं इत्यादि। रेशा, जो कि एक कार्बोहाइड्रेट ही है, 30 प्रतिशत तक ऊंचा हो सकता है।

प्रोटीन सामान्य रूप से 10 प्रतिशत से भी कम होते हैं। बीजों से प्राप्त होने वाले मसाले इसका अपवाद हैं, जैसे मेथी (26 प्रतिशत) सरसों, (22), जीरा (19), अजवायन (17), धनिये के बीज (14), काली मिर्च (12) और इलायची (10)। एक स्पष्ट अपवाद सुखाई हुई मिर्चें हैं, जिनमें 16 प्रतिशत प्रोटीन होता है, किंतु यह अधिकतर उसके बीजों से ही मिलता है। वसा की मात्रा भी बीज आधारित मसालों में ऊंची होती है; प्रतिशत में मात्रा इस प्रकार है, सरसों 40, जायफल 36, जावित्री 24, अजवायन 22 धनिया बीज 16, और जीरा 15। अन्य मसालों और उद्भिजों में वसा 5 प्रतिशत से कम बहुधा 1 से 2 प्रतिशत तक होती है। कैल्शियम, लोहा, पोटेशियम, फॉस्फोरस इत्यादि खनिज साधारण रूप से 2 से 7 प्रतिशत के स्तर पर होते हैं, जो कि जैव पदार्थों के लिए एक ऊंचा स्तर है। साधारण धान्य और दालें केवल 1 से 3 प्रतिशत खनिज स्तर की श्रेणी में आती हैं। विभिन्न विटामिनों की मात्रा एक से दूसरे मसाले में बहुत भिन्न है और इस पर मसालों के पोषक महत्व पर विचार करते हुए चर्चा की जाएगी।

परंतु इन उत्पादों को जो चीज वास्तव में प्रतिष्ठा देती है, वह है उनका सुवासित, सुगंधित और तीखा गुण। इसका कारण उन तेलों की उपस्थिति है जिन्हें अनिवार्य तेल कहा जाता है, जिससे आशय है भिन्न भिन्न प्रकारों के वाष्पशील जैव यौगिक। यदि क्षणभर के लिए कालेज में पढ़े गए रसायन शास्त्र को याद करें, तो इन्हें टर्पिन, सेसीक्वटर्पिन, अलकोहल, एस्टर्स, केटोन, एल्डिहाइड इत्यादि की श्रेणियों में रखा जाता है, और कभी-कभी इनमें कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के अलावा नाइट्रोजन और सल्फर भी होते हैं।

इन यौगिकों के नाम दिलचस्प और प्रायः काव्यात्मक होते हैं। अदरक में कैम्फीन, जिंजीबरीन और फैलांड्रिन दो रूपों में होते हैं और ये सब टर्पिन हैं जिनकी तेज गंध होती है। यही कैम्फीन जायफल में भी होता है, किंतु एक ईथर, मायरिस्टिसिन, एक एलिफैटिक अलकोहल, जैरानिओल एक कैटोनी यौगिक सैफ्रोल और पिनिन कहलाने वाले अन्य अनेक टर्पिन के साथ होता है, जिससे जायफल की गंध और स्वाद अदरक से अलग होते हैं। पिनिन काली मिर्च, पिपरमेंट, जावित्री, सौंफ, धनिया-बीज और बे-लीफ में अपेक्षाकृत व्यापक रूप से उपस्थित रहता है। किंतु अन्य सुगंधकार घटक उन्हें अपनी विशिष्ट सुगंधियां प्रदान करते हैं। कभी कभी कोई एक गंध प्रमुख हो जाती है, जैसे पुदीने और पिपरमेंट में मैंथॉल (एक प्रकार का अलकोहल), लौंग में यूजेनॉल, अजवायन में थायमॉल (दोनों फेनॉल हैं), सौंफ में एनिथॉल (एक ईथर) लहसुन में जैव रूप में सल्फाइड्स और भिगोए हुए सरसों के बीजों के आइसोथियोसायनेट्स (जिसमें सल्फर और नाइट्रोजन दोनों हैं) की गंध प्रमुख रहती है। अंतिम समग्र गंध का प्रभाव, फिर भी लगभग हमेशा मिश्रित होता है।

कुछ मसालों में ऐसे अवयव होते हैं जो सुगंधित महक देने वाले अवयवों के अलावा होते हैं। इसलिए जीभ पर मिर्च के डंक का कारण एक अवाष्पशील रसायन है जिसे कैप्साइसिन कहा जाता है, जो न्यूनाधिक मात्रा में सभी प्रकार की मिर्चों में विद्यमान रहता है। इसके साथ कभी कभी एक अन्य अवाष्पशील यौगिक कैप्सैंथिन भी रहता है। काली मिर्च में भी अवाष्पशील पाइपैरीन और कैविसिन होते हैं, जो दोनों ही लार द्वारा विघटित होकर तीखे पाइपैराइडिन में परिवर्तित हो जाते हैं। मेथी में व्यावहारिक रूप में कोई वाष्पशील तेल नहीं होता और इसके कटु स्वाद का कारण एक सैपोनिन और एक नाइट्रोजन युक्त उत्पाद ट्राइगोनेलिन हैं। अदरक में दोनों, एक सुगंधयुक्त वाष्पशील अनिवार्य तेल और एक अवाष्पशील यौगिक जिंजरॉन होते हैं, जो तीखे लगते हैं।

यदाकदा एक तेज रंग कारक पदार्थ भी उपस्थित रहता है। सभी प्रकार की मिर्चों में कैरोटीन होता है, जो विटामिन 'ए' के गुणों से युक्त, और नारंगी रंग देने वाला पदार्थ है। हल्दी का पीला रंग करक्यूमिन (हरिद्रा) नामक रंग द्रव्य से मिलता है जो जमीन से निकालने के बाद प्रकंद को अभिसाधित करने पर पूरी तरह विकसित होता है। केसर का चमकीला नारंगी-लाल (केसरिया) रंग क्रोसिन है, जो शक्कर युक्त यौगिक है, जबकि इसका तिक्त स्वाद एक अन्य शक्कर आधारित पदार्थ पिक्रोक्रोसिन से मिलता है।

खट्टा बनाने के माध्यम के रूप में उपयोग किए जाने वाले मसालों में विभिन्न अम्ल होते हैं। इस प्रकार इमली में टार्टरिक अम्ल, कोकम में हाइड्रोक्सी साइट्रिक एसिड, अमचूर (आम) में मौलिक एसिड, अनारदाने में ऑक्सैलिक एसिड और करील की कलियों में रूटिक एसिड होता है।

मसालों के मूल तत्व की प्राप्ति के लिए उच्च प्रौद्योगिकी

जैव सामग्री बहुल पूरे पूरे मसाले का उपयोग करने के स्थान पर, मसाले का मुख्य तत्व अलग करके उसका उपयोग करना अधिक सुविधाजनक हो सकता है क्योंकि बहुत कम मात्रा की आवश्यकता होती है, उपयोग के लिए उसे घोला जा सकता है, और कभी कभी वह विशुद्ध होगा। वाष्पशील सामग्री को भाप के साथ आसवित करके उसका उपयोग किया जा सकता है, परंतु इसमें प्रायः महत्वपूर्ण अवाष्पशील तिक्त मुख्य तत्व प्राप्त नहीं होगा। इसलिए कुछ विशेष मसालों के वास्तविक सार को प्राप्त करने के लिए विकसित की गई प्रौद्योगिकी तैलीय राल (ओलियोरेसिन) को अलग करने के लिए है। यह मसाले का ठोस या अर्ध ठोस तीखा राल अवयव है, जिसमें बहुधा वाष्पशील गंध अवयव भी फंस जाते हैं।

ओलियोरेसिन या तैलीय राल सूखे पिसे हुए मसाले को अलकोहल या एसिटोन जैसे विलायक के साथ निष्कर्षित करके प्राप्त किया जाता है, जिसमें दोनों, राल और

सुगंधियां घुल जाती हैं। घोल को फिर सावधानीपूर्वक निर्वात के अंतर्गत सांद्रित किया जाता है, ताकि वाष्पशील कम से कम नष्ट हों और फिर विलायक की अल्पतम मात्रा भी बहुत सतर्कता से संसाधित करके निकाल दी जाती है। विभिन्न मसालों से इस प्रकार प्राप्त किए गए ओलियोरेसिन प्रतिशत में इस प्रकार हैं : मिर्च 15, अदरक 6, काली मिर्च 11 और हल्दी 7। इन ओलियोरेसिनों में स्वयं मसाले के तीखे प्रमुख तत्व एक उच्च स्तर पर विद्यमान होते हैं : मिर्च से 2 से 3 प्रतिशत कैप्सैसिन, अदरक से 25 से 30 प्रतिशत जिंजरोल, काली मिर्च से 40 से 45 प्रतिशत पिपरीन और हल्दी से 35 प्रतिशत कर्कयूमिन। इस प्रकार हर मसाले में सक्रिय सार तत्व का 10 गुना सांद्रण कर दिया जाता है।

सांद्रण कुछ अन्य विधियों से भी किया जा सकता है। लहसुन के कोये, जब ताजा होते हैं, उनमें 60 प्रतिशत पानी होता है। उपयुक्त प्रौद्योगिकी का उपयोग करके पानी निकाल देने या निर्जलीकरण से एक खुला पाउडर मिलता है, जिसमें केवल 5 प्रतिशत पानी होता है, और उसमें वे सारे गुण होते हैं जो भोजन पकाते समय उपयोग करते हुए अपेक्षित हैं। यदि गंध नहीं चाहिए, तो पाउडर में एलिनेस नामक एंजाइम को अक्रियाशील करके गंध को दबाया जा सकता है जो एलिसिन यौगिक पर क्रिया करके गंध उत्पन्न करता है। लहसुन के पाउडर को उसके वजन के चार गुना नमक और किसी प्रतिपिंडक माध्यम की बहुत छोटी मात्रा के साथ मिलाकर लहसनी नमक प्राप्त किया जा सकता है। इमली के लिए दो प्रकार के सांद्रण उपयोग किए जाते हैं और एक बहुत गाढ़ी, बहुत खट्टी काली लेई (पेस्ट) प्राप्त की जा सकती है, जिसकी केवल कुछ बूंदें भोजन पकाते समय पर्याप्त होती हैं या फिर एक खुला खट्टा पाउडर पाया जा सकता है जिसे चाय के चम्मच की मात्रा में उपयोग किया जाता है।

कुछ अन्य नई मसाला प्रौद्योगिकियों की रूपरेखा भी दी जा सकती है। लाल मिर्च (केएन पेपर) वास्तव में बहुत महीन पिसी, सूखी लाल मिर्च के तीन भाग और नमक के एक भाग का मिश्रण है। नर्म हरी मिर्च सहित बालियों या अलग किए हुए फलों का अचार बनाया जा सकता है और खारे पानी में डिब्बाबंद किया जा सकता है जो भोजन की मेज पर स्वाद देता है। इसकी समुद्र पार के देशों में मांग बढ़ती जा रही है।

आधुनिक प्रौद्योगिकी वर्तमान पद्धति को उन्नत कर सकती है। हल्दी को जमीन से निकालने के बाद पानी के साथ उबाला जाता था जिसमें उसे क्षारीय बनाने के लिए गोबर मिलाया जाता था। इस अस्वास्थ्यकर सामग्री के स्थान पर चूने का पानी या बेकिंग सोडा उपयोग किया जा सकता है। बाद में पीले रंग को बढ़ाने के लिए जिस विषाक्त सीसे के रंग का उपयोग किया जाता था, उसके स्थान पर सोडियम बाइसल्फेट और हाइड्रोक्लोरिक एसिड के घोल का उपयोग किया जा सकता है।

मसाले क्या हैं, और उनमें क्या होता है?
आगे मिर्च मसालों और बूटियों की सूची अंग्रेजी वर्णमाला के क्रम में उनके कुछ भारतीय नामों सहित दी जा रही है। साथ ही उनके मुख्य घटक (संक्षेप में मु. घ.) दिए जा रहे हैं, जो उन्हें उनकी विशिष्ट गंध और स्वाद प्रदान करते हैं। ये नाम अपने काव्यात्मक और रुचिकर रूप में कालेज के दिनों में पढ़े गए रसायन शास्त्र की याद दिला सकते हैं। इनमें से अधिकतर वस्तुएं परिचित भारतीय उत्पाद हैं, किंतु इनमें कुछ ऐसी भी शामिल हैं, जो भारत में निर्मित आहारों में उपयोग के लिए, या फिर घरेलू रसोई में विदेशी आहार तैयार करने के लिए आयात की जाती हैं।

ऑलस्पाइस या पिमेंटा (सीतुल, गंडामेनासु, कट्टुकूरुवा) : गोल, लालिमा युक्त भूरे सरल फल जो सुखाए और कभी कभी पीस भी लिए जाते हैं। इनमें लौंग, दालचीनी, जायफल और काली मिर्च की मिश्रित गंध होती है, इसलिए इसका यह नाम पड़ा है। यह करी पाउडर–अचार के पाउडरों और कीमे के मसालों का उपादान है। मु. घ. यूजेनॉल।

एनीसीड (विलायती सौंफ, शोम्बु) : ये बीज हैं, जो साबुत फलों को केवल सुखाकर प्राप्त किए जाते हैं। भारतीय सौंफ से बहुत अधिक समानता है। अधिकतर यूरोप से आयात की जाती है। मु. घ. एनेथॉल।

आरकानट (सुपारी, अदेक्के, पक्कु) : एक प्रकार के ताड़ के काष्ठफल जिन्हें रंग और स्वाद को उन्नत करने और अतिरिक्त टेनिन और म्यूसिलेज निकालकर गुणवत्ता बनाए रखने के लिए पूरा, या दो टुकड़ों में या छिपटियों के रूप में प्रायः पिछले वर्ष की क्रिया से निकले हुए सार में उबालकर संसाधित किया जाता है। सुपारी को ज्यों का त्यों, खुशबूदार और मीठा बनाने के बाद शक्कर, खोपरे और अन्य मसालों के साथ मिलाकर या फिर पान और बुझे हुए चूने के साथ चबाया जाता है। कत्था भी, जो पान के पत्ते पर लगाया जाता है, टैनिन बहुल पदार्थ है जो उसी पेड़ के अंतर्काष्ठ से निकाला जाता है। मु. घ. कैटेचिन (स्तंभक) और एरोकोलिन (उद्दीपक) हैं।

ऐसाफेटिडा (हींग, पेरूगामन) : जड़ का स्राव, आंसुओं (बूंदों) के रूप में एकत्रित, पिंड या लेई। व्यवसाय में, हींग हल्के रंग का, पानी में घुलनशील, कम सुगंधित उत्पाद है जो अनेक प्रकार के वृक्षों से निकाला गया होता है। अधिकतर ईरान और अफगानिस्तान से आयात की जाती है। मु. घ. मिश्रित क्षारीय डीसल्फाइड्स।

बेन्लीफ (कोई सामान्य भारतीय नाम नहीं है) ताजा पत्ते उपयोग किए जाते हैं। मु. घ. लिनोलूल और मिथाइल सिनोमेट है।

बीटल (पान, ताम्बुल, वेट्टिलाई) : काली मिर्च (पेपर) परिवार की एक विसर्पलता के हरे पत्ते पान कहलाते हैं, जो पूरे भारत में पैदा किए जाते हैं। पत्ते विभिन्न

आकारों, रूपों, विभिन्न प्रकार के हरे रंगों और विभिन्न अंशों में तिक्कता से युक्त मिलते हैं। वे भोजन करने के बाद पाचन को उद्दीप्त करने के लिए चबाए जाते हैं। सामान्य रूप से बुझा चूना व कत्था लगाकर और सुपारी के टुकड़े या कतरन रखकर खाने के लिए बीड़ा बनाया जाता है। मु. घ. यूजेनॉल।

बिशप्स वीड (अजवायन, ओमुम) : बीज (सुखाए हुए स्लेटी से भरे फल) और ताजा पत्ते, दोनों का उपयोग किया जाता है। मु. घ. थायमोल।

केपर (कबरा, मुल्लुकतरी) एक भूस्तारी यूरोपीय झाड़ी की पुष्प कलिकाएं हैं। हरी या सिरके में डालकर (अचार) मटन और मछली को स्वादिष्ट बनाने के लिए उपयोग की जाती हैं। मु. घ. रूटिक एसिड।

कैरवे (शाजीरा, सीमाई शेम्बु) बीज हैं जो पूरे पौधे को सुखाकर और फिर दांवन करके प्राप्त किए जाते हैं। आकार में जीरे से छोटे हैं। मु. घ. कैरवोन।

कर्डामॉम (छोटी इलायची, येलक्की) फल संपुट है। यह उन लंबी छड़ी जैसी शाखों पर लगते हैं जो तने से जमीन के भीतर निकलती हैं और सीधे जमीन से बाहर निकल आती हैं। लगभग परिपक्व फलों को गर्म हवा से सुखाकर गहरे हरे रंग का कर दिया जाता है। सफेद इलायची को सल्फर (डाइआक्साइड) के धुएं या विरंजक चूर्ण (ब्लीचिंग पाउडर) से निरंजित करके प्राप्त करते हैं। मु. घ. साइनिओल, बोरनिओल और कपूर।

सेलरी (अजमोदा, शलारी) ये उसी पौधे के फल हैं जिनसे सलाद पत्ता मिलता है। फलों को छोटे बीजों के रूप में सुखा लेते हैं। इसे पक्षियों के दाने (आहार) के रूप में भी उपयोग किया जाता है। मु. घ. लिमोनीन।

चिली और कैप्सिकम (मिर्च, मसाला) : ''कैप्सिकम एनम'' परिवार के अनेक प्रकार के पौधों के फल हैं, जो तीखी लाल मिर्च, तीखी हरी मिर्च और मध्यम (मीठी) बेल पेपर देते हैं। अनेक रंग (लाल, हरा, पीला, सफेद) अलग अलग लंबाई (एक से. मी. से 30 से. मी. तक) और आकार (लंबे, पतले, गोल, दीर्घायत) होते हैं। सारी मिर्चों की मूल उत्पत्ति अमेरिकी महाद्वीपों में हुई और कोलम्बस के बाद सारी दुनिया में फैली। भारत में पुर्तगालियों द्वारा लाई गई और 17वीं शताब्दी में लोकप्रिय हुई। हरी या सुखाकर उपयोग की जाती है। मु. घ.–कैप्साइसिन जो एक तिक्त यौगिक है और सभी प्रकार की मिर्चों में 0 से 2 प्रतिशत तक की मात्रा में विद्यमान रहता है।

चिली पापरिका या स्पेनी पिमिंटो (भारत में बहुत कम पैदा की जाती है) यह मध्यम ''कैप्सिकम एनम'' समूह की है। फल लाल होते हैं, आकार मध्यम से छोटे तक और काफी गूदेदार होती हैं। हंगरी में एक तुर्की आक्रमण के दौरान आगमन हुआ, इसलिए तुर्की मिर्च या पिमेंटन नाम पड़ा। यूरोप में कम तीखेपन और चमकीले लाल रंग के कारण पैदा की जाती है। अब कैलिफोर्निया में भी उगाई जाती है। साबुत

रूप में नहीं, केवल पाउडर के रूप में उपयोग की जाती है जो विभिन्न देशों से अनेक रंगों और स्वादों में आते हैं।

चिली केयन या टेबास्को या बर्ड (कोई विशिष्ट भारतीय नाम नहीं है) "कैप्सिकम फ्रुटसींस" के विभिन्न प्रकार। छोटे, शंकु-आकार के बहुत तीखे फल, धूप में या मशीनों से सुखाए जाते हैं। टेबास्को सॉस और चीनी चिली सॉस बनाने में इसका उपयोग किया जाता है।

सिनामोन बार्क (दालचीनी, लवंग पत्ती) : वास्तविक सिनामोन (दालचीनी) और तेजपात की अनेक प्रजातियों के पेड़ों की छाल है। बड़े पेड़ों से नाली के आकार के टुकड़े और छोटे गोल टुकड़े काटे जाते हैं। धोकर सुखाए जाते हैं और कभी कभी दो दिनों और खमीर उठने दिया जाता है। पाउडर भी बनाया जाता है। मु. घ. सिनामाल्डेहाइड।

सिनामोन पत्ते (तेजपात, तालिसापत्री) : दालचीनी पेड़ की एक प्रजाति के पेड़ से प्राप्त किए जाते हैं। धूप में सुखाकर बंडलों में बांध देते हैं। मु. घ. यूजेनोल।

क्लोव (लौंग, लवंग) : दस मीटर ऊंचे पेड़ की बिना खिली पुष्प कलियां हैं। हरी चुनी जाती हैं और धूप में सुखाने पर गहरे रंग की हो जाती हैं। इसका अंग्रेजी नाम कील की समानता के कारण पड़ा (फ्रांसीसी क्लोव)। अवांछित खमीरीकरण के कारण लौंग पीला भूरा या सफेद रंग धारण कर लेती है। मु. घ. मुक्त यूजेनोल (80 प्रतिशत)। कली की ऊपरी घुंडी में यूजेनोल एसिटेट, डंडी में एसिटेट अधिक होता है, फिर भी महक इनके कारण नहीं, बल्कि लेशमात्र घटकों के कारण होती है।

कोरिएंडर लीफ (कोथमीर) : संपूर्ण कोमल पौधा ही सुगंधित होता है। मु. घ. (गंध के लिए) डिसाइलैल्डिहाइड।

कोरिएंडर सीड्स (धनिया) : बीज हल्के भून लिए जाते हैं और प्रायः पीस भी लिए जाते हैं। मु. घ. (गंध के लिए) डिसाइलैल्डिहाइड।

कमिन, व्हाइट (जीरा) : फलों को पीले से स्लेटी भूरा रंग होने तक सुखाया जाता है। पौधे के फल सफेद या गुलाबी होते हैं। मु. घ. सिनामॉल्डेहाइड।

कमिन, ब्लैक (काला जीरा, कलौंजी) वास्तविक जीरे से अलग प्रकार के पौधे के बीज, जिनके पीले नीले फूल होते हैं। भारत में सामान्य नहीं है। मु. घ. कारवोन, लिमोनीन।

करी-लीफ (कढ़ी पत्ता, बारसंगा) : पत्ते हैं जो ताजा या थोड़े सुखाकर उपयोग किए जाते हैं। मु. घ. सैबीनीन, पिनीन, डिपैंटीन।

डिल (सुआ, सुर्वा, सबासीज) : सुखाए हुए परिपक्व बीज। भारतीय सुआ भी उसी पौधा-परिवार से है जिससे यूरोपीय सुआ मिलता है, किंतु एक भिन्न पौधे से जिसके चौड़े और छोटे बीज होते हैं। मु. घ. डिलापिओल, कार्बोन फैलांड्रिन। यूरोपीय सुए में कोई डिल-एपिओल नहीं होता और कार्बोन की मात्रा दुगुनी होती है।

फैनल (सौंफ, शोम्बेई) सुखाए हुए परिपक्व-फल बीज। कभी कभी विलायती सौंफ का भ्रम होता है। सुगंध पौधे की उपजाति और उस जलवायु पर निर्भर करती है, जिसमें उसे उगाया गया हो। मु. घ. एनेथॉल।

फेनुग्रीक (मेथी, वैंथ्यिम) सुखाए हुए परिपक्व संपुट जिनमें 10 से 20 छोटे, कठोर, आयताकार बीज होते हैं। मु. घ. व्यावहारिक रूप से इसमें कोई वाष्पशील पदार्थ नहीं होता, किंतु एक कड़वा एल्कलॉइड और ट्राइगोनेलिन होता है, जो गर्म किए जाने पर विटामिन नायसिन में परिवर्तित हो जाता है।

गार्लिक (लहसुन, वेल्लइपुंडु) : सफेद, जमीन के अंदर लगने वाले कंद, जिन्हें निकाल कर कुछ दिनों तक छाया में सुखाया जाता है। आंशिक लौंग से युक्त। मु. घ. डाइअल्काइल डिसल्फाइड्स और ट्राईसल्फाइड्स, जो गंध के मुख सार तत्व एलिसिन के जल-अपघटन से आते हैं।

जिंजर (अदरक, इंजी) जड़ है जिसे हरा या धूप में सुखाकर, छीलकर या बिना छिले भी उपयोग करते हैं। सुगंधित वाष्पशील तेल (मु. घ. कैम्फीन, जिंजिबरीन) और तिक्त अवाष्पशील घटक (मु. घ. जिंजरोन) दोनों विद्यमान रहते हैं।

कोकम (मुरगला, काचमपुल्ली) : फल गोलाकर (3 से. मी.) होते हैं जिनमें 6 बड़े बीज रहते हैं। खट्टेपन के लिए ज्यों के त्यों या बाहरी छिलके को गूदे के रस में बार-बार निमज्जित करके और फिर मिश्रण को धूप में सुखाकर उपयोग करते हैं। बीजों में वसा (कोकम मक्खन) होती है और त्वचा को नर्म और चिकना बनाने के लिए साबुन निर्माण और कन्फैक्शनरी में कठोर वसा के रूप में उपयोग की जाती है। मु. घ. हायड्रोक्सिसायट्रिक एसिड (खट्टा)।

मेस (जावित्री, जायफल) लाल रंग का बीजचोल जिसके भीतर जायफल के काले बीज आवृत्त होते हैं और जब फल पककर फूट पड़ता है तो दिखाई देने लगते हैं। बीजचोल को सावधानी के साथ तोड़ देते हैं, दबाकर चपटा कर देते हैं और उसके बाद सुखा लेते हैं जिससे एक लाल-भूरा, पारभासी, भुर-भुरा पदार्थ मिलता है, जिसे रेशों के रूप में काटकर विक्रय के लिए बाजार में भेज दिया जाता है। सुगंध जायफल से मिलती जुलती, किंतु अधिक परिष्कृत होती है। मु. घ. पिनीन, कैम्फीन।

मैंगो, ग्रीन (अमचूर, मंगा पोडी) विविध प्रकार के, पेड़ से गिरे हुए कच्चे आमों के धूप में सुखाए हुए टुकड़े या पाउडर। हवाबंद, बोतलों में साल भर तक रख सकते हैं। भारतीय भोजन में खट्टा स्वाद लाने के लिए उपयोग करते हैं। मु. घ. मैलिक एसिड।

मैंगो-जिंजर (आम हल्दी, आंबा हल्दी, मंगाई इंजी) यह न आम है, न अदरक, परंतु हल्दी परिवार के एक पौधे की सुखाई हुई गांठ है। स्वाद में अदरक जैसा तीखापन नहीं होता, किंतु कच्चे आम से मिलता जुलता है। मु. घ. ओसिमिन, मायर्सिन, लिमोनीन।

मार्जोरम (मारवा, मरुगु) : पुष्प-शीर्षों से रहित या सहित सुखाए हुए स्लेटी हरे पत्ते। प्रायः फूलों के हार, मृगमांस और पाश्चात्य शैली के भोजन पकाने में इसका उपयोग करते हैं। मु. घ. कार्वाकोल, लिनालूल।

मिंट (पुदीना, मुथीना) ताजा पत्ते। चटनी और सॉस बनाने के काम में लाते हैं। ''मेंथा'' या पुदीने की कम से कम 40 जातियां हैं, जिनमें से तीन भारत में महत्वपूर्ण हैं और इसमें जापान से आयात की गई एक जाति भी शामिल है। पुदीने से प्राप्त किया गया पिपरमिंट तेल साधारणतया आधे ''मैंथॉल'' के रवे बन जाने के बाद उपयोग में लाते हैं। मु. घ. मैंथॉल, मैंथील एसिटेट और मैंथॉन।

मस्टर्ड (राई, सरसों) छोटे, गोल, लाल-भूरा या जामुनी-काले रंग के तेलबीज, जिनके चार प्रकार सामान्य हैं : पीली सरसों, भूरी सरसों, तोरिया और राई। लाल भूरी किस्म का भारतीय भोजन में व्यापक रूप से उपयोग करते हैं और पीली तथा भूरी किस्मों से खाना पकाने का कड़वा तेल मिलता है, जो बंगाल और पंजाब में लोकप्रिय है। दो किस्में, बनारसी राई और सफेद राई, जो विशेष तीखी होती हैं, भोजन की मेज पर उपयोग करने के पाश्चात्य शैली की मस्टर्डपेस्ट या सरसों की लेई बनाने के लिए पानी के साथ पीसी जाती है। तिक्तता एक एंजाइम-क्रिया का परिणाम है जिसे बीजों को पानी के साथ धीरे धीरे पीसकर विकसित करते हैं। जैसा कि भोजन बनाने की भारतीय विधि में किया जाता है। बीजों को भूनने या तलने से एंजाइम नष्ट हो जाता है और तिक्तता दब जाती है। मु. घ. विभिन्न थायोग्लुकोसाइड्स जो एंजाइम के जल अपघटन से अनेक तिक्त क्षारीय आइसोथियोसायनेट्स बन जाते हैं।

नटमैग (जायफल, जाजीकाई) आड़ू जैसा फल जिसकी गरी तक सुखा दी जाती है। स्लेटी-भूरा रंग होता है जिसमें खांचों की सफेद धारियां बनी होती हैं। जावित्री इसी फल का बीजचोल है जिसे जायफल सुखाने के पहले सामान्य रूप से अलग कर लेते हैं। मु. घ. मायरिस्टिसिन, जेरानियोल, पिनीन, कैम्फीन।

ओनियन (प्याज, कांदा, इरुल्ली) : कंद, आंशिक रूप से सुखाया हुआ, फिर भी रसदार, रंग लाल से सफेद तक। व्यापक रूप से भोजन पकाने में, या सलाद के रूप में कच्चा या अचार बनाने में उपयोग किया जाता है। प्याज का तीखापन केवल काटे जाने पर ही एक गंधहीन पुरोगामी पर एंजाइम की क्रिया से विकसित होता है। उबाले जाने या उथले तेल में तलने से मांड के जिलेटिनाइजेशन से पारभासी बन जाते हैं और एंजाइम के नष्ट होने पर तिक्त घटकों के भाप के साथ उड़ जाने से तीखापन नष्ट हो जाता है। अधिक तलने से लाली आ जाती है और शर्करा दग्धीकरण से मीठापन आ जाता है। मु. घ. अल्काइल डाइसल्फाइड।

ओरगैनम (सथ्रा, मिरनजोश) : सूखे, हल्के हरे पत्ते और शीर्ष। भारत में सामान्य नहीं है। चिली कोन कार्ने, तमाले और टैक्को जैसे अनेक मैक्सिकन आहारों का

अनिवार्य सुगंधकारक घटक है। स्वाद में मार्जोरम, सेज और बनजवायन से मिलता-जुलता है। मु. घ. थायमोल, कार्वाक्रोल, टर्पिस।

पैपरिका : देखिए चिली, पैपरिका।

पार्स्ली (अजमोद, कोथम्बेलरी) पत्ते, ताजा या सूखे और बीज। मुख्य रूप से शीतोष्ण प्रदेशों की फसल। हरी पार्स्ली कोथमीर या हरी धनिया पत्ती के समान बढ़िया सजावट के काम आती है। बीजों में एक असह्य स्वाद और गंधयुक्त वसीय तेल होता है। मु. घ. एपिओल, अल्फा-पिनीन।

पेपर, ब्लैक (काली मिर्च, कारा मेनासु) : एक उर्ध्वगामी बेल की नोकदार पतली शाखों पर लगने वाले कच्चे सरल फल जो धूप में सुखा लिए जाते हैं। पूरी तरह से तैयार, किंतु कच्चे, हरापन लिए पीले सरल फल सुखाने पर काली या भूरी मिर्च बन जाती है। परिपक्व नारंगी-लाल सरस फूलों को सुखाने की क्रिया के पहले या बाद में भी पानी में भिगोकर या भाप देकर छिलका हटा देने पर सफेद मिर्च मिलती है। दोनों ही प्रकार की मिर्चों को पीसा जा सकता है। मु. घ. पिपराइन और कैविसाइन, जिनमें से दोनों की लार के साथ जल अपघटन करके तीखा पिपरिडाइन बनाते हैं, जो मिर्च को उसका तीखापन देते हैं। गंध का कारण अल्फा-और बीटा पिनीन, फैंलाड्रीन और अन्य टर्पिस हैं।

पेपर, लांग (पिपली, हिपली) : एक ऊर्ध्वगामी जंगली पौधे के सुखाए हुए फल हैं। मिर्च के समान मसाले के रूप में उपयोग किए जाते हैं, किंतु कम तीखे होते हैं।

पिपरमिंट (गमती पुदीना, विलायती पुदीना) : भारत में असामान्य, पुदीने की एक विशिष्ट किस्म के पत्ते। पिपरमिंट तेल और उसकी तेज रुचिकर गंध और मुंह में ठंडक देने वाली अनुभूति का स्रोत है। मु. घ. मैंथॉल, लिमोनीन और मैंथॉन।

पॉमेग्रेनेट (अनारदाना, दालंबी) : विशेष रूप से एक जंगली प्रकार के पौधे "दारू" के सुखाए हुए कोणिक बीज (फलों की गोलियां)। मोटे दरदरे आटे या पाउडर के रूप में उत्तर भारतीय भोजन में खटास के माध्यम के रूप में उपयोग किए जाते हैं। मु. घ. ऑक्सेलिक एसिड।

पॉपी (खसखस, गसालु) : अफीम पोस्त के बारीक दाने। गिरीदार फलों जैसा स्वाद और कुरकुरी संरचना के लिए भारतीय भोजन बनाने में उपयोग करते हैं। जिस संपुट में दाने रहते हैं, यदि उसके कणों से दूषित न हों तो इसमें कोई सुषुप्तिदायक मार्फीन नहीं होता।

सैफ्रोन (जाफरान, केसर, कुमकुम) : कश्मीर में उपजाये जाने वाले चमेली (लवेंडर) जैसे रंग के एक "क्राकस" फूल के सुखाए हुए हल्के गहरे केसरिया तीव्र गंधयुक्त वर्तिकाग्र। धूप में सुखाने के बाद सर्वोत्तम शाही श्रेणी देने के लिए वर्तिकाग्र को हाथ से चुना जाता है, इसके बाद शेष को पानी में दो बार तैराया जाता है और

हर बार भारी लच्छे इकट्ठा कर लेते हैं। मु. घ. पिक्रोक्रोसिन (तिक्त स्वाद) और क्रोसिन (केसरिया रंग)

सेज (सेफाकस, सालविया) 'सालविया' की एक किस्म के पौधे के सुखाए हुए स्लेटी हरे पत्ते। भारत में बहुत कम ज्ञान, किंतु दक्षिणी यूरोप में मांस और चीज़ के आहारों को सुगंधित करने के लिए व्यापक रूप से उपयोग करते हैं। मु. घ. थुजोन, लिनॉलिल एसिटेट, कपूर, टैनिन (संकोचक अवयव) पिक्रोसैलविन (तिक्त स्वाद)।

स्पिअरमिंट (पहाड़ी पुदीना) पुदीने की एक किस्म के पत्ते जिनमें पिपरमिंट जैसा मुंह को 'ठंडक' देने का गुण नहीं होता। भारत में सामान्य नहीं है। मु. घ. कार्वोन, टर्पिंस।

टैमरिंड (इमली, पुली) : परिपक्व, गहरा-भूरा, रेशेदार फली-फल। ताजा भी उपयोग करते हैं और सुखाकर, बीज निकालकर भी। व्यापक रूप से, विशेषकर दक्षिणी भारत में किंचित अम्लीकरण या खटाई के रूप में उपयोग करते हैं। मु. घ. टार्टरिक एसिड, ग्लुकोस, फ्रुक्टोस, पैक्टिन।

टैरागॉन या एस्ट्रागॉन : सुखाए हुए पत्ते और शीर्ष, जिनमें विलायती सौंफ से मिलती-जुलती गंध होती है। भारत में उपजाया नहीं जाता। विनेगर (सिरका), अचार, मस्टर्ड को सुगंधित बनाने के लिए उपयोग में लाते हैं। मु. घ. कैविकोल, फैलंड्रिन, ओसीमीन।

थाइम (बनजवायन, मरीझा) : सूखे पत्ते और पुष्प शीर्ष, भूरे-हरे। भारत में केवल ऊंचे पहाड़ी स्थानों पर उपजता है, किंतु पाश्चात्य जगत में सामान्य है। टमाटर सूप, क्लैम चैडर, पोल्ट्री मीट आदि को स्वादिष्ट बनाने के लिए उपयोग करते हैं। मु. घ.—थायमोल।

टरमैरिक (हल्दी, मांजल) : उबालकर और परिष्कृत करके सुखाई हुई गांठें (फूला हुआ भूमिगत तना) भारतीय भोजन बनाने में अपने स्वाद और रंग के लिए, धार्मिक कर्मकांड में (पीला-नारंगी रंग पवित्र माना जाने के कारण), अंगराग (प्रसाधन सामग्री) में (केश निकालने के कारक के रूप में और कुमकुम और सिंदूर बनाने में) और औषधियों में गांठ या चूर्ण के रूप में व्यापक रूप से उपयोग करते हैं। मु. घ. कर्क्यूमिन (रंग) जिंजीबरीन, अन्य कैटोनिक सेस्क्वायटर्पिस, बोरोनियोल (स्वाद)।

वैनिला : आर्किड पौधे की एक ऊर्ध्वगामी जाति का संसाधित फल-कोया। मलागासी गणतंत्र (पहले जिसे मडागास्कर कहा जाता था) में विश्व का तीन-चौथाई उत्पादन, भारत में बहुत कम उपजाया जाता है। खमीरीकरण-संसाधन के दौरान वैनिला की गंध एक शर्करा-वैनिलिन पूर्वगामी के जल-अपघटन से विकसित होती है। आइसक्रीम, चॉकलेट और अनेक मीठे आहारों को सुगंधित बनाने के लिए उपयोग करते हैं। मु. घ. मिथाइल वैनिलिन। मिथाइल और इथाइल वैनिलिन दोनों को कृत्रिम रूप से बनाते हैं।

पोषण-मूल्य

चूंकि मिर्च-मसाले और बूटियां प्रतिदिन बहुत कम मात्रा में उपयोग किए जाते हैं, इसलिए कार्बोहाइड्रेटों, प्रोटीनों और वसाओं जैसे पोषण के स्थूल तत्वों के रूप में उनका योगदान स्पष्ट ही बहुत महत्व का नहीं हो सकता।

फिर भी, यदा-कदा किसी खनिज की या अधिकतर किसी विटामिन की अपवाद रूप से ऊंची मात्रा, जो कि पोषकों के दो सूक्ष्म पोषक समूह हैं, का पोषण में कोई अर्थ हो सकता है। यह विशेष रूप से तब सही है, जबकि उपयोग किया गया पदार्थ भोजन बनाने में काफी मात्रा में उपयोग किया गया हो।

तालिका 5.1 में मसाला पदार्थों में विद्यमान कुछ सूक्ष्म पोषक खनिज और विटामिन दिखाए गए हैं। सूची भारतीय रसोईघर में उनके उपयोग के मोटे तौर पर ह्रासमान क्रम में तैयार की गई है। जीरा, धनिया और कढ़ी पत्ते में कैल्शियम अधिक है, तो हरी मिर्चों और सुखाई हुई लाल मिर्चों में लोहा अधिक है। सरसों के बीजों और कढ़ी पत्तों में फॉस्फोरस अच्छी मात्रा में विद्यमान है, किंतु अन्य अनेक मसालों (धनिया, जीरा, लहसुन, लाल मिर्च, मिर्च पाउडर, प्याज और हल्दी) में भी पर्याप्त मात्रा में होता है। विटामिनों की बात करें, तो थायमिन मिर्चों और उनके पाउडरों में, सरसों के बीजों में, प्याज और लहसुन में, रिबोफ्लेविन फिर से मिर्च के उत्पादों में और सरसों के बीजों में और नायसिन मिर्च पाउडर, सरसों के बीज और हल्दी पाउडर में होता है। हरी मिर्च, सूखी लाल मिर्चें, मिर्च पाउडर और हल्दी पाउडर विटामिन 'सी' के अच्छे स्रोत हैं, जबकि कढ़ी पत्ता और मिर्च पाउडर विटामिन 'ए' के स्रोत हैं। इस प्रकार प्रतिदिन के भोजन पकाने में इन पदार्थों का तर्कसंगत मात्रा में उपयोग मानव शरीर की विटामिन और खनिजों की आवश्यकता में संचयी रूप से योगदान करता है।

मसालों का शारीरिक पक्ष

मसाले शरीर की अनेक क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। मुंह में वे हल्की दाहक क्रिया करते हैं जिससे लार का स्राव बढ़ जाता है और इस प्रकार पाचन को बढ़ाते हैं। अधिकांश मसालों के रोग प्रतिरोधी गुण मुंह को रोगाणुओं से मुक्त करते और दांतों को साफ रखते हैं। पेट में, गैस निकालने और फैलाव को कम करने में मसालों की वातहर क्रिया ग्रास नली के वाल्व के कमजोर संवरण और अवरोधिनी को शिथिल करने तक पहचानी गई है। यह ध्यान में रखते हुए कि बहुत से मसाले श्वास के साथ स्पष्ट रूप से निकलते हैं, वे हृदय और संभवतया फेफड़ों के लिए हल्के उत्तेजक हैं। जीवन की प्रक्रियाओं को नियमित करने वाले शरीर के एंजाइमों का कुछ मसालों द्वारा उद्दीपन प्रदर्शित हो चुका है। जायफल और केसर (जाफरान) दो एंजाइमों, पेप्सिन और रेनिन की क्रिया को बढ़ा देते हैं, जो शरीर में प्रोटीनों

तालिका 5.1

कुछ सामान्य भारतीय मसालों में सूक्ष्म पोषक तत्व

(प्रति 100 ग्राम खाद्य सामग्री में ग्राम के रूप में)

वस्तु	कैल्शियम	फॉस्फोरस	लोहा	थाय मिन	रिबोफ्लेविन	नायसिन	विटामिन सी	विटामिन ए
प्याज	0.3	0.29	लेशमात्र	0.42	0.06	0.6	14.7	0.05
लहसुन	0.1	0.42	0.01	0.68	0.08	0.7	12.0	0.05
अदरक	0.1	0.15	0.01	0.05	0.13	1.9	12.0	0.05
हल्दी	0.2	0.26	0.05	0.09	0.19	4.8	49.8	0.05
मिर्च पाउडर	0.1	0.32	0.01	0.59	1.66	14.2	63.7	1.85
हरी मिर्च	0.03	0.08	1.2	0.19	1.18	0.5	111.0	लेशमात्र
लाल (सूखी) मिर्च	0.16	0.37	2.3	0.93	0.43	9.5	50.1	0.18
सरसों बीज	0.3	0.79	0.01	0.65	0.45	8.5	22.1	0.06
इमली	0.2	0.11	0.01	शून्य	0.07	0.7	3.0	0.03
कढ़ी पत्ता	0.8	0.60	0.01	0.08	0.21	2.3	4.0	3.78
धनिया (बीज)	0.8	0.44	0.01	0.26	0.23	3.2	12.0	0.05
जीरा	0.9	0.45	0.05	0.73	0.38	2.5	17.0	0.05
वयस्क व्यक्ति की प्रतिदिन की आवश्यकता	0.5	(0.5)	0.024	1.4	1.7	19.0	40.0	0.75

का पाचन करते हैं। फिर भी, मसालों की अधिकता जैसे मिर्च जठर शोध (गैसट्राइटिस) और आमाशय में अम्लता को बढ़ा सकती है।

अनेक मसालों के प्रतिसूक्ष्मजीवी या प्रतिरोधी गुण प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुके हैं। लहसुन में उपस्थित एलिसिन में रोगाणुओं के एक विस्तृत वर्ग के विरुद्ध मारक क्षमता है और जानवरों पर किए प्रयोगों से पता चला है कि वह वास्तविक रोगाणु भार को कम करता है। यह फफूंद के विरुद्ध भी सक्रिय है। हल्दी के पीत रंग-पदार्थ कर्क्यूमिन में भी इसी के समान रोगाणु-प्रतिरोधी क्रिया है और हींग अंधांत्र में आंत्रशूल और वातनिरपेक्षता को नष्ट करती है। इसी के समान अन्य अनेक मसाला तेलों की, जैसे अजवायन, सौंफ, हींग, लौंग, दालचीनी, प्याज और काली मिर्च की निरोधक शक्तियां (यहां तक कि 'ई कोली' समूह के खतरनाक रोगाणुओं के विरुद्ध भी) सिद्ध हो चुकी हैं। शरीर में, ऐसी रोगाणु-प्रतिरोधी क्रिया बड़ी आंत में बाढ़ को घटाने में मदद कर सकती है और इस प्रकार वहां गैस के निर्माण को घटाती है। एक अन्य वांछित बात जो शायद होती भी है, वह है अम्ल निर्माण करने वाले दुग्ध-दंडाणुओं की जाति का चयनात्मक उद्दीपन। यह वैसा ही प्रभाव है जैसा दही के उपभोग करने पर होता है।

मसालों के प्रतिरोधी, गुण भोजन में उनका उपयोग करते हुए उन्हें एक संरक्षणात्मक महत्व भी प्रदान करते हैं। सरसों के बीज और सरसों का तेल इसी प्रकार से भारतीय अचारों में, लौंग और दालचीनी मुरब्बों और फलों के संरक्षण में काम करते हैं। मांस के भंडारण में काली मिर्च की संरक्षणात्मक क्रिया ऐतिहासिक रूप से ज्ञात है। हल्दी का कर्क्यूमिन एक ऐसा उपचायक विरोधी है जो किसी तेल के उपस्थित रहने पर एक अति सामान्य घटना, उपचयी विकृति के कारण भोजन को खराब होने से रोकता है। ऐसा ही काम पान में उपस्थित कैविकोल नामक पदार्थ भी करता है। विकार उत्पन्न करने वाले रोगाणु अम्लीय वातावरण में सरलता से नष्ट हो जाते हैं और भोजन में उपयोग किए गए खटास देने वाले विभिन्न कारकों जैसे इमली, अमचूर, कोकम, और अनारदाना इसमें मदद कर सकते हैं। कोकम ने वास्तव में ताजा मछली के गुण को बनाए रखने की क्षमता दिखाई है जैसे कि शूकर मांस को लहसुन बनाए रखता है।

मसालों के कुछ औषधीय लाभ सिद्ध किए जा चुके हैं। हल्दी का वाष्पशील तेल पेट में हाइड्रोक्लोरिक एसिड का स्राव विशेषरूप में घटा देता है। कर्क्यूमिन (हल्दी का) रक्त और जिगर के कोलेस्ट्रॉल के स्तर को घटा देता है और मधुमेह के नियंत्रण में उसके महत्वपूर्ण होने के संकेत दिखाई दिए हैं। कुष्ठ रोग के तंत्रिका विज्ञानी प्रभाव के उपचार में लहसुन का, शायद कोषीय झिल्लियों के आरपार विटामिन थायमिन के परिवहन में सहायता के द्वारा, रोगहर उपयोग दिखाई दिया है। मानवों में उच्च रक्तचाप घटाने और संचारी रक्त में कोलेस्ट्रॉल का स्तर घटाने में भी लहसुन

उपयोगी दिखाई दिया है। कैप्सिकम (गोल मिर्च, शिमला मिर्च) का पाचन तंत्र के व्रणों (पैप्टिक अलसर) पर लाभदायक प्रभाव पड़ता है, इससे न केवल घाव भरते हैं, बल्कि उनका निर्माण भी बंद होता है। प्याज चाहे कच्चा हो, उबला हुआ हो या तला हुआ हो, वह रक्त की फाइब्रिनोलिटिक क्रिया को बढ़ा देता है। लौंग का तेल केंद्रीय तंत्रिका प्रणाली पर प्रभाव डालता है। हींग का शामक प्रभाव होता है। जीरे का तेल अंकुश कृमि (हुकवार्म) को बाहर निकालता है और त्वचा की खुजली के विरुद्ध प्रभावशाली है।

फिर भी कुछ मसालों के अवांछित प्रभाव भी अंकित किए गए हैं। कर्पूर वृक्ष, स्टार एनिस (अनासफल) और सैसाफ्रॉस (एक सुगंधित जड़) के पत्तों के तेलों के एक मुख्य घटक और जावित्री और दालचीनी के पत्तों के तेलों के एक गौण घटक सैफ्रोल का उपयोग जिगर में ऐसे परिवर्तन करता है जो विषाक्तता का संकेत देते हैं। तदनुसार, हल्के पेयों में इसका उपयोग बंद कर दिया गया है। जावित्री और जायफल दोनों एक ही फल के भाग हैं और उनमें नायरिस्टिसिन मुख्य घटक के रूप में रहता है। इसके अल्प मात्रा में उपयोग से भी मतली, कब्जियत, जड़िमा हो सकती है। दोनों में किसी का भी चाय के एक चम्मच भर मात्रा का उपयोग मस्तिष्क में विकार के द्वारा दौरे और मतिभ्रम का कारण बनता है। सरसों के बीज और सरसों के तेल के तीखेपन का कारण कार्बनिक आइसोथियोसायनेट्स हैं, जो विशेषरूप से भोजन में आयोडिन की कमी की स्थिति में, घेघा रोग को बढ़ाने के लिए ज्ञात हैं। एक ऐसा ही घेघा कारक प्रभाव प्याज और लहसुन से बने वाष्पशील तेलों में देखा गया है। कुछ मसालों के तेल, जैसे दालचीनी और लौंग के तेल इतने दाहक होते हैं कि वे त्वचा पर शोथ का कारण बनते हैं।

औषधि के रूप में मसाले

अभी तक जो कुछ कहा गया है वह प्रयोगात्मक तथ्य और पर्यवेक्षण का मामला है। पारंपरिक रूप से सभी मिर्च-मसालों और उद्भिजों को हर प्रकार से लाभदायक माना जाता है और वे चिकित्सा की भारतीय प्रणाली के भेषज-संग्रह में महत्वपूर्ण घटक हैं। अब भारत में मसालों के कुछ चिकित्सकीय प्रयोग निदर्शित किए जाएंगे। चूंकि व्यावहारिक रूप से सभी मसाले पाचक, उद्दीपक और प्रतिरोधी हैं, इन गुणों को प्रत्येक के साथ दुहराया नहीं गया है।

विलायती सौंफ या शोम्बु (एनीसीड) गैस के विरुद्ध, दमा के लिए, सिर की जुएं नष्ट करने के लिए।

हींग (ऐसेफटिडा) : अपाचन में शामक के रूप में।

अजवायन (बिशप्स वीड) : डायरिया और डिसपैप्सिया के विरुद्ध।

शाह जीरा (कैरवे) बच्चों के उदरशूल में, मतली के विरुद्ध।

इलायची (कार्डामॉम) : गले की खराश के विरुद्ध, सांस को सुगंधित बनाने के लिए, एक हल्की मूत्रवर्धक जो मूत्र प्रवाह को उद्दीप्त करती है।
अजमोदा (सेलरी सीड) संधिवात और संधि शोध के विरुद्ध उपयोग लोकप्रिय, गर्भाशय के संकुचन के लिए ज्ञात।
मिर्चें (चिली) : अपाचन के विरुद्ध।
दालचीनी (सिनामोन) : मतली, उल्टी, डायरिया को नियंत्रित करने के लिए; दंतमंजन में उपयोग की जाती है।
लौंग (**क्लोव**) : दांत दर्द की लोकप्रिय दवा, कफ को शिथिल करती है, मतली, अपाचन, गैस के विरुद्ध उपयोग की जाती है।
धनिया (**कोरिएंडर सीड**) : सेना और रुवार्ब जैसे जुलाबों में सुगंधकारक के रूप में मिलाया जाता है, एक हल्का मूत्रवर्धक।
जीरा (**कमिन**) अपाचन, डायरिया में।
सुआ (**डिल**) : बच्चों को अपाचन में और प्रसव के बाद स्त्रियों को सुए का पानी दिया जाता है।
सौंफ (**फैनल**) : गैस और आंत के शूल के विरुद्ध और बच्चों में अपाचन में।
मेथी (**फेनुग्रीक**) : संधिवात में दी जाती है, प्रसव के बाद डायरिया को नियंत्रित करने और छाती में दूध का प्रवाह बढ़ाने के लिए स्त्रियों को दी जाती है।
लहसुन (**गार्लिक**) : फेफड़ों, गले, पेट (व्रण) और गुर्दों के रोग में, त्वचा पर घावों और बीमारियों में बाह्य रूप से तेल लगाया जाता है, कान के दर्द में छाती पर पुल्टिस के रूप में उपयोग किया जाता है।
अदरक (**जिंजर**) अपाचन में और गैस के विरुद्ध और कामोद्दीपक के रूप में, अनेक औषधियों में सुगंधकारक के रूप में।
जावित्री (**मेस**) : पाचन की समस्याओं में, बहुत कम मात्रा में उपयोग की जाती है।
सरसों बीज (**राई**) : विष के विरुद्ध एक कुशल उल्टीकारक, बाह्य रूप से विख्यात पुल्टिस, किंतु लंबे समय तक संपर्क त्वचा में शोथकारक।
जायफल (**नटमैग**) : ऊपर जावित्री देखिए।
जायफल या जावित्री का बड़ी मात्रा में उपयोग दौरे और मतिभ्रम का कारण बन सकता है। (देखिए पृष्ठ 92)
प्याज (**ओनियन**) : कफ निकालने के लिए, मूत्र को उद्दीप्त करता है और पेचिश को नियंत्रित करता है।
काली मिर्च (**पेपर**) : गले और श्वास नली के कष्ट के लिए।
खसखस (**पॉपीसीड**) : दुसाध्य कब्जियत में।
हल्दी (**टरमैरिक**) : मृदु विरेचक, नाक और आंखों से स्राव को शिथिल करती है,

गले की खराश दूर करती है, दर्द और चोट पर बाहर से लगाई जाती है, स्त्रियों द्वारा त्वचा को कोमल रखने और अवांछित बालों की वृद्धि रोकने के लिए उपयोग में लाई जाती है। जलाई हुई हल्दी एक सामान्य दंतमंजन है।

मसालों का पारंपरिक उपयोग देश में भलीभांति संस्थापित है। यह संभव है कि भावी वैज्ञानिक प्रयोगों से इनमें से कुछ की पुष्टि हो जाएगी और शरीर में उनकी क्रिया की विधि प्रकाश में लाई जाएगी।

6. आनंददायक प्याले

चाय और कॉफी

चाय

उद्‌गम

विश्व भर में हर कहीं टी या चाय नाम से परिचित एक लोकप्रिय पेय पाया जाता है। दोनों शब्दों का उद्‌गम चीनी है : अमोय बोली में 'टे' और कैंटीन में चाह कहा जाता है, और विश्वास किया जाता है कि चाय पीने का इतिहास 4500 वर्ष पहले तक जाता है। व्यावसायिक दबावों के कारण भारत में चाय का उत्पादन आरंभ हुआ। ईस्ट इंडिया कंपनी 1833 तक चीन में चाय के व्यापार पर अपना आधिपत्य खो चुकी थी। वह भारत से एक वैकल्पिक पूर्ति-स्रोत विकसित करने के लिए उत्सुक थी और इसकी जांच-पड़ताल करने के लिए लॉर्ड विलियम बैंटिंक द्वारा 1834 में एक समिति का गठन किया गया। असम में स्थापित एक प्रायोगिक फार्म पर चीनी चाय बीजों और पौधों को जिन्हें 'बोही' कहा जाता था, पहले-पहल लगाया गया। इस बीच बंगाल आर्टीलरी के मेजर रॉबर्ट ब्रुस ने पाया कि असम में सिगफोस नाम की एक पहाड़ी जाति पारंपरिक रूप से चाय के पौधे उपजाती थी। इस स्थिति में, ये स्थानीय किस्में, जो *वाइरिडिस* कहलाती थीं, खेती के लिए अधिक अनुकूलित और चीन से आयातित चाय की तुलना में अच्छी श्रेणी की सिद्ध हुईं। दो वर्षों की छोटी-सी अवधि के भीतर अच्छी श्रेणी की चाय की पत्तियां लंदन निर्यात की गईं और व्यावसायिक रूप से चाय बागानों के विकास के लिए व्यापारिक कंपनियां स्थापित की गईं। आज भारत विश्व का सबसे बड़ा चाय-उत्पादक देश है : यह विश्व के कुल 13 लाख टन उत्पादन में लगभग 5 लाख टन का योगदान करता है, जबकि श्रीलंका और चीन दोनों ही लगभग दो-दो लाख टन प्रदान करते हैं।

चाय के प्रकार

चीन में उगने वाला चाय का पौधा धीरे-धीरे बढ़ने वाला, मजबूत और शीत-प्रतिरोधी होता है, जिसमें गहरे हरे रंग के पत्तों की कम फसल आती है जो चाय का ऐसा काढ़ा बनाते हैं, जिसमें गंध तो अच्छी होती है किंतु आसव कमजोर होता है। देशी असम चाय का पौधा जल्दी बढ़ने वाला और गहरे हरे या हल्के हरे पत्ते देने वाले प्रकारों का होता है। दूसरे प्रकार का पौधा पत्तों की बहु फलदायक फसल देने वाला होता है और चाय की श्रेणी सर्वोत्तम होती है। आज चाय की विभिन्न श्रेणियों के लिए असम और चीनी चाय के पौधे के बीच संकरण से अनेक किस्में विकसित की जा चुकी हैं। इसके बावजूद सारी परिष्कृत चायें हमेशा विभिन्न किश्तों में संसाधित चाय की पत्तियों का मिश्रण होती हैं। यहां तक कि एक ही प्रदेश से आने वाली चाय हर साल, बल्कि हर मौसम में एक जैसी गुणवत्ता से युक्त नहीं होती। अनुभवी और उच्च वेतन पाने वाले स्वाद-परीक्षक कठोर मानक स्थितियों में तैयार की गई चाय को अपने मुंह में प्रक्षलित करते हैं और हर लक्षण के लिए हर ढेर का आकलन करते हैं। मिश्रण करने वाले भंडार से चाय के स्वाद-परीक्षकों द्वारा परीक्षण के लिए भावी अवयवों के रूप में लगभग 30 नमूने चुने जाते हैं। उनके आकलन के अनुसार एक छोटी मात्रा में मिश्रण बनाया जाता है, जिसका चाय के स्वाद-परीक्षक फिर से मूल्यांकन करते हैं, और साथ ही गृहिणी के लिए महत्वपूर्ण अन्य विशेषताओं जैसे गुण, सुगंध और भार की एकरूपता के लिए भी आकलन किया जाता है। इसके बाद मशीनों द्वारा मिश्रित करके उचित मिश्रणों को बड़ी मात्रा में तैयार किया जाता है।

एक ओर सुगंध और दूसरी ओर आसव, सांद्रता या रंग, सामान्य रूप से विरोधी विशिष्टताएं हैं। सामान्य रूप से ऊंचे पहाड़ी स्थानों, उत्तर-पूर्व में दार्जीलिंग के निकट और दक्षिण पूर्व में नीलगिरी पहाड़ियों पर उगाए जाने वाले चाय के पौधों में सर्वाधिक रुचिकर सुगंध की परिष्कृत चाय का उत्पादन देने की क्षमता है। तुला के दूसरे पलड़े पर चाय की बुकनी (डस्ट) है जो दानेदार, रंग में लगभग काली तथा रेशामुक्त है और तेज गाढ़े रंग तथा कड़क, बल्कि अम्लीय स्वाद का आसव देती है। वास्तव में बुकनी चाय का 2 मिनट का निचोड़, ब्रोकन ऑरेंज पैकों के 15 मिनट तक के निचोड़ से भी ज्यादा कड़क आसव देगा। किंतु जैसा कि हम देखेंगे कि संसाधन के अनेक चरणों में अनेक तत्व अंतिम आसव के रंग, स्वाद और गंध को प्रभावित करते हैं।

चाय का रंग, स्वाद और सुगंध

चाय के पत्तों में उपस्थित तीन मुख्य घटक अंतिम चाय की कोटि निश्चित करते हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण टैनिन हैं और ये ऐसे कषाय पदार्थ हैं जो सुपारी, कत्था,

लेई, जामुन फल इत्यादि में भी पाए जाते हैं। दूसरा कैफीन है जो कॉफी और कोको में भी विद्यमान होता है तथा इन सारे पेयों को उनका 'पिक-अप' या उद्दीपनकारी महत्व प्रदान करता है। तीसरा पैक्टिन है जो सेब, आम और कटहल जैसे फलों में भी रहता है, जैसा कि हम अध्याय 10 में देखेंगे, यही पदार्थ है जो जैम और जैली में जैली जैसा बांधने वाला गुण प्रदान करता है।

ताजा, हरी चाय की पत्तियों में टैनिन विद्यमान होते हैं और उनसे बनाया गया निचोड़ रंगहीन होता है और स्वाद कषाय, कड़वा और धात्विक होता है। जो चीनी हरी चाय से परिचित हैं, जो कि ऐसी पत्ती से बनाई जाती है जिसका काली चाय जैसा खमीरीकरण नहीं किया गया हो, बल्कि केवल सुखाया गया हो, वे इन विशेषताओं को पहचान जाएंगे। पहला चरण है इन टैनिनों का उपस्थित एंजाइमों द्वारा उपचयन (ऑक्सीडेशन), जबकि पत्ती के कोषों की टूटन के बाद वे दोनों संपर्क में आते हैं। यह पर्याप्त तीव्र प्रक्रिया है, और ये प्रारंभिक उपचयन-उत्पाद वे हैं जो एक अच्छे आसव को उसकी विशिष्टता, उजला अम्बरी रंग और हल्का कड़क स्वाद देते हैं। दो प्रकार के रंगकारक पहचाने गए हैं, पीले थीफलेविंस और लाल-पीले थिउरुबिसिंग। आदर्श रूप में ये 1 : 12 के अनुपात में विद्यमान होने चाहिए। चाय की सुगंध का कारण वाष्पशील सुगंधकारक घटक हैं, जो आंशिक रूप से पत्ती में उपस्थित रहते हैं और आंशिक रूप से उपचयन और खमीरीकरण के दौरान उठते हैं। अन्य अनेक आहार-सुगंधों के समान, चाय की सुगंध भी अनेक रासायनिक यौगिकों का अत्याधिक जटिल मिश्रण है, जिनमें से कोई भी प्रधान नहीं है। इनमें संतृप्त और असंतृप्त एल्डिहाइड्स, विभिन्न अलकोहल, विभिन्न अम्ल, फेनोल और टरपींस शामिल हैं, जिनकी समग्रता ही चाय के आसव को प्रफुल्लतादायक और विशिष्ट गंध प्रदान करती है।

आइए, प्रारंभिक उपचयन-उत्पाद (प्राइमरी ऑक्सीडेशन प्रोडक्ट : पी ओ पी) की ओर लौटें। प्रतिक्रियाएं यहीं, एंजाइमों की ऑक्सीडाइजिंग और पॉलीमराइजिंग के प्रभाव के अंतर्गत ही नहीं रुक जातीं, वे आगे बढ़ती हैं, किंतु धीरे धीरे बढ़ती हैं, जिससे छोटे पॉलीमर (बहुलक) मिलते हैं और अत्याधिक धीमे आगे बढ़कर बड़े पॉलीमर देती हैं। चूंकि ये पॉलीमर गर्म पानी में घुलनशील नहीं हैं, आसव रंग में गहरा भूरा, अरुचिकर और स्फूर्तिहीन होता है, पूरी तरह से स्वादहीन चाय। विभिन्न प्रक्रियागत चरणों का लक्ष्य वांछित पी ओ पी को अधिकतम करना और आगे अवांछित प्रतिक्रियाओं को रोकना है।

लंबे समय से यह विश्वास किया जाता था कि दूसरा महत्वपूर्ण घटक कैफीन केवल निष्क्रिय है और अपरिवर्तित रूप में ही हरी पत्ती से संसाधित चाय-पत्ती में चला जाता था जहां से वह आसव में निचुड़ जाता था। फिर भी, हाल ही में यह पाया गया है कि कैफीन का थोड़ा भाग पी ओ पी के एक अंश के साथ प्रतिक्रिया

करके लवणों का निर्माण करता है जो गर्म पानी में घुलनशील और स्वाद में तिक्त हैं।

तीसरा घटक, पैक्टिन भी पी ओ पी के निर्माण में अप्रत्यक्ष भूमिका निभाता है। चाय की पत्तियों और कलियों में उपस्थित एक एंजाइम पैक्टिन को तोड़कर पैक्टिक एसिड और मिथाइल अलकोहल बनाता है जो वाष्पशील होने के कारण पत्ती के संसाधन के दौरान उड़ जाता है। टूटन साधारणतया एक धीमी प्रतिक्रिया है, किंतु यदि पैक्टिन की मात्रा ऊंची हो, जैसी कि कुछ विशेष चाय-पत्तियों में होती है, तो पैक्टिक एसिड का जैली जैसा गुण पत्तियों में आक्सीजन के मुक्त प्रसार को रोकता है और पी ओ पी के निर्माण को मंद करता है। वास्तव में जिन पत्तियों में पैक्टिन की मात्रा ऊंची होती है, घुमाव का चरण पर्याप्त उग्र कर दिया जाता है, ताकि ऑक्सीडेशन तीव्र हो जाए। बाद में पैक्टिक एसिड का निर्माण वास्तव में आगे पॉलीमरों के विकास को मंद कर देता है और इस प्रकार यह एक वांछित क्रिया है।

अब हम इन अनेक चरणों का अवलोकन करने के लिए तैयार हैं, जिनके द्वारा हरी पत्तियां उस स्वादिष्ट सुगंधित पदार्थ में बदल दी जाती हैं, जिसे हम डिब्बों में बाजार से खरीदते हैं।

हरे पौधों से काली पत्तियों तक

चुनाई (पत्तियों की) पहला चरण है। दो पत्तियां और एक कली लगभग 10 दिन के अंतराल पर तोड़ ली जाती हैं और एक मौसम में 5 से 6 बार चुनाई होती है। (पौधे का) यह भाग वांछित टैनिन, कैफीन और अन्य पानी में घुलनशील पदार्थों की तने में नीचे की ओर की पत्तियों या वृंत की तुलना में उच्च स्तरीय फसल देता है। चुना हुआ भाग चुनने वाले अपनी पीठ पर टंगी टोकनी में डालते जाते हैं। वहां जान बूझकर यह प्रयत्न रहता है कि चुनाई ढीले ढंग से एकत्रित हो ताकि धूप में वह अनावृत्त न रहे और उसे धीमे से कारखाने में उलट दिया जाता है। ऐसा रासायनिक क्रिया को समय से पूर्व आरंभ हो जाने से होनेवाली क्षति को रोकने के लिए किया जाता है।

अगले चरण में, जिसे विदरिंग (मुरझाने की प्रक्रिया) कहते हैं, फूली हुई पत्तियां रबर जैसी स्थिति में बदल दी जाती हैं, ताकि बाद में उन्हें बिना तोड़े मोड़ा जा सके। पत्तियों को रैक पर फैलाकर और प्राकृतिक या कृत्रिम वायु-प्रवाह में सुखाते हैं। यह लगभग एक दिल चलता है जिससे उनमें आर्द्रता का स्तर घट जाता है। यह काम पर्याप्त महत्वपूर्ण है : बहुत कम मुरझाने के बाद में रोलिंग (घुमाव) कमजोर होता है, और बहुत अधिक मुरझाने से चाय के निषेधन को गहरा रंग मिलता है, किंतु उसकी गंध और स्वाद कम हो जाते हैं, वास्तव में एक खट्टापन विकसित हो जाता है।

अगला चरण रोलिंग है, जिसमें कई काम होते हैं। एक तो है पत्ती के कोशों

को तोड़ना, जिससे टैनिन, कैफीन इत्यादि, साथ ही उन पर क्रिया करने के लिए उपयोग किए गए एंजाइमों को रस के रूप में निचोड़ दिया जाता है और फिर तोड़ दिया जाता है। यह कैसे करते हैं? मुरझाई हुई, लचीली पत्तियों को मोड़ने, चीरने और काटने के लिए उपयुक्त रचना वाले दो रोलरों (बेलनों) के बीच से गुजारते हैं। इन रोलरों को सी टी सी (कर्लिंग, टिअरिंग और कटिंग) मशीनें कहा जाता है। यह काम धीरे-धीरे कई चरणों में क्रमबद्ध रूप से करते हैं, और तापमान को बढ़ने से रोकने के लिए बहुत सावधानी बरतते हैं। यह भी देखा जाता है कि कमरा ठंडा भी रहे और आर्द्र भी। रोलिंग की कोटि, सामग्री के साथ बदलती है, अधिक सरस या एंजाइमों से अधिक युक्त पत्तियों के लिए कम रोलिंग की आवश्यकता पड़ती है।

इसके बाद क्रम आता है खमीरीकरण का, जो शायद उच्च कोटि की चाय को विकसित करने के विभिन्न चरणों में सबसे महत्वपूर्ण है। खमीरीकरण के दौरान वांछित एंजाइम और ऑक्सीडेशन प्रतिक्रियाओं के लिए स्थितियां प्रदान करनी पड़ती हैं। रोल की हुई पत्तियां सीमेंट या एल्यूमीनियम की सतह पर लगभग 40 मिलीमीटर मोटी परत के रूप में 27 से 32^0 से. तापमान में फैला देते हैं, जहां उन्हें 2.5 से 4.5 घंटों तक निर्विघ्न रहने देते हैं। बहुत पतली परत बिछाई जाए तो उससे वाष्पन की मात्रा ऊंची हो जाती है तथा तापमान कम हो जाता है। बहुत मोटी परत फैलाने से वाष्पन कम, तापमान अधिक और आक्सीजन की उपलब्धता कम हो जाती है। अत्याधिक सघन या घनीभूत फैलाव से भी आक्सीजन की उपलब्धता घट जाती है। ऐसा खुरदरी पत्तियों के साथ तो किया जा सकता है, किंतु परिष्कृत पत्तियों के साथ नहीं। खमीरीकरण की बहुत लंबी अवधि से अन्य गुणों की कीमत पर, रंग विकसित होता है। इसलिए खमीरीकरण के चरण के दौरान पर्याप्त अनुभव और कौशल आवश्यक है जिससे कि चाय की पत्तियों के किसी भी ढेर की गुणवत्ता और उसकी उच्चतम कोटि को प्राप्त किया जा सके।

इसके बाद खमीरीकृत पत्तियों को सुखाना पड़ता है। यह क्रिया पहले चाय की अधिकतम गंध लाने के लिए आवश्यक, अंतिम, उच्च तापमान एंजाइम-प्रतिक्रिया को बढ़ाती है, फिर यह उपस्थित एंजाइमों को नष्ट करके आगे प्रतिक्रिया को पूरी तरह समाप्त कर देती है। निश्चय ही, सुखाने से आर्द्रता की मात्रा घट जाती है और व्यवहार में 5 प्रतिशत से कम मात्रा आगे सुरक्षित भंडारण के लिए उपयुक्त पाई गई है। खमीरीकृत पत्तियां तश्तरियों में रखकर एक सुरंग से क्रमबद्ध तापमानों में गुजारी जाती हैं। शुरुआत लगभग 88^0 से. से और समापन 52^0 से. पर किया जाता है, जिसमें सामान्य रूप से 20 मिनट का समय लगता है। एकदम ठीक शुष्कीकरण में तापमान का कुशल नियंत्रण और आर्द्रता का वाष्पीकरण शामिल है, जिनमें अनुकूलतम तश्तरी भराई, हवा का आयतन, निकास नलिकाएं और सुरंग

से तश्तरी गुजरने की गति आवश्यक है इन सबमें अनुभव बहुत सीमा तक महत्त्व रखता है।

इसके बाद सुखाई गई पत्तियों को श्रेणीबद्ध करने, और विभिन्न कोटियों में अलग करने के लिए तथा पत्तियों के आकार और प्रकार में एक निर्धारित वर्ग को निश्चित करने के लिए छांटते हैं। यह काम छलनी से छानकर या वायु के प्रवाह से हल्के असंगत पदार्थ को ओसाकर भी किया जाता है। चाय खरीदने वाले ग्राहक दिखावे में एकरूपता के प्रति बहुत सावधान होते हैं।

इतना ही महत्वपूर्ण है यह निश्चित करना कि एक ढेर से दूसरे ढेर तक एक ही छाप और श्रेणी में स्वाद और गंध एक समान मिले। इसे मिश्रण के द्वारा प्राप्त करते हैं, और जैसा कि हम देख चुके हैं, ऐसे मिश्रण अनुभवी स्वाद-परीक्षकों के परामर्श और अनुभव पर किए जाते हैं, जो हरेक ढेर का और फिर हरेक मिश्रण का आकलन करते हैं ताकि आदर्श, मेल निश्चित किया जाए। चाय की नीलामी के हैड भारतीय केंद्रों पर जिनमें कलकत्ता प्रमुख है, बोली भी मुख्य रूप से परीक्षण-आकलन द्वारा निश्चित की जाती है। इसके बाद चाय को प्लाईवुड के संदूकों में, या कार्ड बोर्ड के डिब्बों या कागज के पैकेटों में भी, भर के बंद कर देते हैं। चाय की गंध को सुरक्षित रखने के लिए और कोई अन्य बाहरी गंध के पत्तियों में प्रवेश को रोकने के लिए, बहुत अधिक सावधानी रखी जाती है। आर्द्रता को 5 प्रतिशत के सुरक्षित स्तर तक लाने के लिए कभी-कभी परिष्कृत पत्तियों को फिर से सुखाते हैं। संदूकों या पैकेटों में एल्यूमीनियम की पन्नी और फिर पाचमेंट कागज (कभी कभी दोनों एक साथ लैमिनेट रूप में चिपका दिए जाते हैं) का अस्तर लगाया जाता है, जो पाया गया है कि, सुगंध के उड़ने और अन्य गंध के प्रवेश को रोकता है।

आकार-प्रकार और सुगंध चाय की श्रेणी निर्धारित करते हैं। इस तरह की चाय की अनेक श्रेणियां हैं और उनमें से कुछ बहु-ख्यात का यहां वर्णन किया जाएगा। 'होल लीफ ग्रेड' में पहले क्रम पर है 'ऑरेंज पीको' : यह एक अलंकृत व महंगी श्रेणी है, जो पत्तियों और कली रहित वृंतों से मिलती है और एक सुगंधित, पतली चाय प्रदान करती है। बड़ी पत्तियों या 'लीफी' श्रेणी में 'पीको' (आकार में) सबसे बड़ी होती है और अच्छी तरह से मुरझाई गई पूरी पत्तियों से ही बनाई जाती है, किंतु इसमें कुछ कटी हुई पत्तियां भी होती हैं। 'फ्लावरी पीको' एक बड़ी, अच्छी तरह से मोड़ी हुई पत्ती है।

अगले क्रम में टूटी हुई पत्तियों (ब्रोकन लीफ) की श्रेणी आती है। इनमें से 'ब्रोकन आरेंज पीको' या बी ओ पी सर्वाधिक लोकप्रिय छाप है, जो आज बिकने वाली संपूर्ण चाय का लगभग आधा है। यह फ्लावरी पीको से आकार में छोटी है, किंतु इसका स्रोत वही भंडार है। 'ब्रोकन पीको' आकार में बी ओ पी के लगभग

समान है, किंतु इसमें कटे हुए डंठलों का अनुपात अधिक है, जिनके चपटे सिरे खुद उस चाय में ही पहचाने जा सकते हैं।

तीसरा वर्ग 'फैनिंग्स' का है, जो छोटे आकार की श्रेणियां हैं और जो बढ़िया पत्ती से (उदाहरण के लिए बी ओ पी फैनिंग्स) या पत्ती और सिरे (जैसे कि फ्लॉवरी बो ओ पी फैनिंग्स) से मिलती है।

'डस्ट' चाय, श्रेणियों में अंतिम और सबसे छोटी होती है और यह कठोर, दानेदार, बहुत काली, रेशा व बालुकणों से मुक्त होनी चाहिए। निम्न श्रेणी की डस्ट घटिया पत्ती से बनाई जाती है। अपशेष या रद्दी चाय सबसे निम्न श्रेणी है, जो चाय के वर्गीकरण के बाद बचा हुआ चूरा है।

इस अपशेष में बहुत कम पत्ती और चाय होती है। इसमें पत्तियों के रोम, रेशे और बची-खुची चीजें होती हैं। इसे चाय के रूप में बेचा नहीं जाता और यह उस अपशेष सामग्री का भाग होती है जिसे कैफीन के व्यावसायिक निष्कर्षण के लिए संसाधित कर सकते हैं।

हरी चाय बनाने के लिए, काली चाय के निर्माण में उपयोग किए जाने वाले, मुरझाने और खमीरीकरण के महत्वपूर्ण चरण छोड़ दिए जाते हैं। एंजाइमों को नष्ट करने के लिए पत्तियों को रोल करके सुखा देते हैं। ताजा पत्तियों से इसमें मुख्य अंतर यह होता है कि कुछ टैनिन अघुलनशील हो जाते हैं, जिससे हरी चाय के निचोड़ में ताजा चाय पत्तियों की अपेक्षा कम टैनिन होते हैं किंतु निश्चय ही हमारी काली चाय के आसव की अपेक्षा अधिक रहते हैं।

प्रतिदिन एक प्याला

यह निश्चित ही असाधारण है कि केवल 150 वर्ष पहले भारत में आए उत्पाद का उपयोग इतनी तेजी से बढ़ा है कि आज इस देश में बेची जाने वाली चाय प्रत्येक वयस्क को प्रतिदिन एक प्याला चाय देने के लिए पर्याप्त है। भारत के विभिन्न राज्यों में आहार-संबंधी सर्वेक्षणों द्वारा इसकी पुष्टि होती है। ऐसे सर्वेक्षण पूरे देश भर में, यहां तक कि पारंपरिक रूप से कॉफी पीने वाले दक्षिण भारतीय राज्यों में भी, चाय का व्यापक उपयोग दर्शाते हैं। केरल में कुल परिवारों में से 62 प्रतिशत, कर्नाटक में 61 प्रतिशत, आंध्र प्रदेश में 17 प्रतिशत और तमिलनाडु में 7 प्रतिशत द्वारा चाय का उपयोग किया जाता है। गुजरात में चाय पीना लगभग सार्वजनीन है, और महाराष्ट्र में इससे थोड़ा कम। किंतु इन दोनों ही राज्यों में जो आश्चर्यजनक बात है, वह यह है कि 6 से 12 महीने की आयु के एक-तिहाई शिशुओं को चाय दी जाती है और 1 से 5 वर्ष तक की आयु के बड़े बच्चों में यह आंकड़ा 60 से 85 प्रतिशत है। अन्य राज्यों के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, किंतु यह सामान्य रूप से देखा गया है कि अन्य स्थानों की अपेक्षा उत्तर में चाय-पान

कहीं अधिक प्रचलित है।

चाय-पान के पोषण-पक्ष पर बाद में कॉफी के साथ विचार किया जाएगा।

कॉफी

अन्य नवीनतम प्रवेशकर्ता

भुने हुए काफी बीजों से पेय बनाने की प्रथा लगभग चार शताब्दी पहले इथिओपिया के कफ्फा जिले में विकसित हुई लगती है जो आज भी बहुत बढ़िया किस्म की कॉफी उपजाता है। कॉफी पीना यमनी सूफी मंडलों में रात्रि प्रार्थना-अनुष्ठानों का अंग बन गया, जिसके द्वारा यह शेष अरब में और फिर तुर्की तक फैल गया। वहां से यह आदत यूरोप और इंग्लैंड पंहुची। अठारहवीं शताब्दी में लंदन के कॉफी गृहों (घरों) में सेमुअल जॉनसन और उनकी मंडली जैसे कलाकार, कवि और लेखक नियमित रूप से जाते थे। सारी संभावना यही है कि कॉफी शब्द का उद्गम कफा नहीं बल्कि अरबी शब्द 'कहवा' है जो मूल रूप से मदिरा से संबंधित था, और बाद में कॉफी के काढ़े के लिए प्रयोग किया जाने लगा।

भारत में इसका प्रथम आगमन एक ऐतिहासिक संयोग था। दक्षिण भारत के एक मुस्लिम संत ने हज के लिए मक्का जाने की घोषणा की और पहाड़ की एक गुफा में गायब हो गए। उनके अनुयायी गुफा के बाहर कई महीनों तक, जब तक कि संत गुफा से बाहर नहीं आए, निगरानी करते रहे। संत अपने साथ कॉफी के सात फल लाए थे। इन्हें उन्होंने कर्नाटक की उन पहाड़ियों में उगाया, जो अब उनके नाम पर बाबा बूदन की पहाड़ियां कहलाती हैं। उन मूल पौधों के वंशज अभी भी वहां देखे जा सकते हैं।

इस छोटी-सी शुरुआत से, लगभग 1830 के बाद कॉफी के बाग 600 से 1500 मीटर के बीच की ऊंचाई पर स्थित दक्षिण के सारे पहाड़ी क्षेत्र में फैल गए हैं। पौधे को उर्वर ढलुवां भूमि की आवश्यकता होती है, जहां बहुतायत से वर्षा होती हो, लेकिन उसका पानी बह जाए, रुद्ध न हो। छाया और घास-पात देने के लिए और बहते पानी के कारण होने वाले भू-क्षरण को रोकने के लिए ऊंचे पेड़ उगाए जाते हैं। बहुल शाखाओं से युक्त पौधा लगभग मनुष्य की ऊंचाई से उसके दुगने तक ऊंचा होता है। पत्ते चमकदार गहरे हरे होते हैं जैसे कि सामान्य चमेली के होते हैं। वास्तव में सफेद कॉफी-पुष्प चमेली जैसे ही दिखते हैं और वैसी ही सुगंध देते हैं। अप्रैल महीने में 'फूल खिलाने वाली' वर्षा की फुहार अगणित फूलों को खिला देती है, जिनसे जितनी दूर तक आंख देख सकती है, एक अद्‌भुत हिम-श्वेत परत

बन जाती है, जो केवल कुछ ही दिन रहती है। फिर चमकदार हरे सरसफल बनने शुरू हो जाते हैं, जो 6 महीने में लाल और दिखावे और आकार में 'चैरी' जैसे हो जाते हैं। हर चैरी में दो मामूली-सी दीर्घायित अर्धगोलाकार सेम होती हैं, और लगभग पांचवें वर्ष से अन्य पचास वर्षों तक, हर पेड़ आधा किलो बीज देता है। मुख्य नाशक जीव कॉफी-बेधक कीड़ा है, जिसे कठोर कीटनाशकों के छिड़काव से नियंत्रित करते हैं। बागान मालिक बेधक कीट से आक्रांत होने के चिह्न बनाने वाले पेड़ को शीघ्रता से पहचान लेते हैं, और उसे निर्दयतापूर्वक काटकर जला देते हैं।

कॉफी के प्रकार और किस्में

दक्षिण भारत में दो किस्म की कॉफी उगाई जाती है और रोबस्टा की अपेक्षा अरेबिका दुगुनी उगाई जाती है। दोनों का अपना स्वाद और गंध है, जो सेमों को भूनने और फिर पीसने पर मिलता है। भूनने के दौरान पहले चरण में धीरे धीरे नमी नष्ट होती है, किंतु इस क्रिया के चलते, अलग अलग सेमों का तापमान 500° से. तक ऊंचा पहुंच सकता है। सेमों का रंग गहरा हो जाता है और वे सूख जाते हैं, भुरभुरे और दिखावे में चमकदार हो जाते हैं जबकि उनमें एक तीव्र गंध विकसित हो जाती है। ये सब रासायनिक परिवर्तनों के प्रमाण हैं। शक्कर, मांड और अन्य कार्बोहाइड्रेट (जो कि 60 प्रतिशत होते हैं) भूने जाने के दौरान या तो विभिन्न कार्बनिक अम्लों, पानी और कार्बन डायऑक्साइड में अवक्रमित होकर गहरे रंगों के विकास के साथ दग्ध-शर्करा हो जाते हैं या फिर फर्फरॉल्डेहाइड जैसे अम्लीय गंध और स्वादयुक्त पदार्थों में टूट जाते हैं। कार्बनिक अम्लों का स्राव कच्ची कॉफी को क्षारीय प्रतिक्रिया में बदल देता है। इसीलिए उन लोगों को कॉफी पीने से निरुत्साहित किया जाता है जिन्हें पेट का अल्सर हो सकता है। वास्तव में कॉफी का अनुकूलतम भूना जाना सर्वोच्च अम्लता-विकास के साथ साथ होता है। कॉफी बीजों के प्रोटीन (लगभग 13 प्रतिशत) भी कॉफी की गंध में अपनी भूमिका निभाते हैं। वे भूनने के दौरान टूट कर हायड्रोजन, सल्फाइड और डिमिथाइल सल्फाइड जैसे तीव्र गंधयुक्त रसायनों, और रंग गहरा करने की प्रतिक्रिया में भाग लेने वाले विभिन्न मुक्त एमिनो एसिडों में परिवर्तित हो जाते हैं। कॉफी बीजों में लगभग 13 प्रतिशत वसा भी होती है, जिसका अधिकांश अपरिवर्तित रूप में भुनी हुई कॉफी में भी बना रहता है, किंतु यह टूटी हुई कोशिकाओं (जिनमें यह कच्चे बीजों में जमा रहती है) से बाहर निकल कर भुने हुए उत्पाद में समान रूप से फैल जाती है। भूनने के लिए दी गई सघन आंच से एक छोटा-सा भाग टूटकर एक्रोलिन और कार्बन डायऑक्साइड जैसे तीखे उत्पादों में बदल जाता है। कॉफी की उद्दीपक क्रिया का कारण दो यौगिक हैं। रोबस्टा बीजों में कैफीन एक प्रतिशत तक रहती है और अरेबिका में इससे दुगुनी

होती है। ट्राइगोनेलिन दोनों ही में 1.0 से 1.2 प्रतिशत तक रहती है। भूनने से इन दोनों क्षारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि दोनों स्थिर और पानी में घुलनशील होने के कारण सरलता से पेय में चले जाते हैं।

भूनने के दौरान अनेक घटकों से उत्पन्न उत्पाद कार्बन डाइऑक्साइड गैस है। इसका बहुत बड़ा भाग आंच से निकल जाता है, फिर भी भुने हुए बीज और कॉफी पाउडर में 1.5 से 2.0 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड फंसी रहती है। भुने हुए बीजों में पाउडर की अपेक्षा गैस अधिक अच्छी तरह से बनी रहती है। एक कारण यह भी है कि बीजों को पाउडर की अपेक्षा लंबे समय तक, उनकी गंध ज्यों की त्यों बनाए रखकर, रखा जा सकता है। हरे कॉफी बीज भूने जाने के पहले, विशेष रूप से इस तरह से सूखे रखने पर कि वे नमी ग्रहण न कर पाएं, ज्यादा अच्छी तरह से भंडार करके रखे जा सकते हैं। हरी कॉफी, जिसमें उसका पारभासी सरक्षा खोल बना हुआ हो, यदि सही ढंग से सुखाई और आर्द्रता रहित भंडारित की जाए, तो भंडार में ज्यों की त्यों वर्षो तक रखी जा सकती है।

कॉफी का श्रेणीकरण

हम देख चुके हैं कि अरेबिका और रोबस्टा में उनकी अंतर्भूत गुणात्मक विशिष्टताएं हैं। अन्य अनेक घटक भी आ जाते हैं। स्वाभाविक रूप से बीज विभिन्न आकार के हो सकते हैं : नुकीले नाव जैसे आकार के जिनके सिरे मुड़े हुए होते हैं, लंबे या छोटे, मोटे या गोल। एक छोटे प्रतिशत में कॉफी गोल आकार की होती हैं, जिसके सरसफल में केवल एक बीज रहता है : इसे 'पीबैरी' कहते हैं, और स्पष्टतया बेहतर किस्म के कारण इसका अधिक मूल्य मिलता है। हस्ति (एलिफैंट) बीज वास्तव में एक में मिले हुए दो बीज होते हैं। एक तीसरे भाग में टूटे हुए और अपरिपक्व बीज होते हैं, जिसे छंटाई और वर्गीकरण के दौरान अलग से भी एकत्र किया जा सकता है। कम से कम दोष का अर्थ है बेहतर किस्म, और इनका मूल्यांकन ढेर में विद्यमान छिलकों, कचरे, टूटे बीजों, छोटी छीम्बियों और पत्थरों को देखकर करते हैं।

बीज का रंग स्वाद के मूल्यांकन का एक महत्वपूर्ण सूचक है। प्याले में अंतिम रूप से बढ़िया पेय बनाने के लिए नीले से नील-हरित रंग अत्याधिक वांछित रंग समझा जाता है। विरंजित किया हुआ पीला-सा सफेद या सलेटी रंग घटिया किस्म का सूचक है, जबकि बहुरंगी धब्बों से युक्त क्षारीय भूरा रंग बतलाता है कि बीज एक साल से अधिक पुराना है। अपर्याप्त सूखे कॉफी बीजों में एक थोड़ा अलग नील-हरित रंग होता है जो तेजी से फीका पड़ जाता है। ज्यादा पके हुए बीज लाल से दिखते हैं और अपरिपक्व चिकने और पीले। काले बीज बीमारी का संकेत हैं और क्योंकि वे कॉफी के स्वाद को बुरी तरह प्रभावित करते हैं, उन्हें सामान्यतया

चुनकर निकाल देते हैं।

कॉफी के किसी ढेर की किस्म का परीक्षण करने के लिए छोटे छोटे नमूने भूनते और बीज को काटकर खोलते हैं। स्पष्ट दिखाई देने वाली भूसी बढ़िया भुनी हुई कही जाती है, भूरी सतहें बीज के अपर्याप्त विकास की सूचक होती हैं, और मलिन सतहों का अर्थ एक मध्यम श्रेणी का पेय है। किस्म का निर्णय करने के लिए गंध का भी परीक्षण करते हैं। भुने हुए बीजों से एक मानक पेय तैयार करते हैं और विशेषज्ञ सूंघकर, चखकर और सुगंध द्वारा प्याले में रखे गए पेय का मूल्यांकन करते हैं।

फल से बीज तक

पेड़ पर कॉफी का फल (बेरी) छह महीने तक हरा रहकर बढ़ता है और फिर पीला हो जाता है, कुछ ही दिनों बाद लालिमा दिखाई देती है, और सप्ताह भर में फल चमकीले लाल रंग का हो जाता है। अगले कुछ ही दिनों में चुनाई कर ली जाती है, अन्यथा फल गहरे लाल और नर्म हो जाते हैं और कॉफी की प्रमुख गंध नष्ट हो जाती है। सारे फल एक साथ नहीं पकते, इसलिए महंगी होने के बावजूद बार बार चुनाई आदर्श है। इसलिए पकवन के विभिन्न स्तरों पर फलों की वास्तविक चुनाई में कुछ अपेक्षाकृत सूखे कठोर फल भी शामिल रहते हैं।

फलों की प्रारंभिक छंटाई सिंकरों (कुंडों) में की जाती है जो अंग्रेजी के 'यू' अक्षर के आकार के होते हैं, जिनमें भारी सूखे फल, पत्थर और धूल कुंडों के तल पर चले जाते हैं। अधिकांश फल पानी के साथ बाहर निकल आते हैं और एक जाली का उपयोग कर छोटे और बड़े आकार के फल अलग अलग छांट लिए जाते हैं। बड़े और छोटे दोनों प्रकार के पके फल, पानी से धोने की विधि का उपयोग करके, और सूखे फल सूखी विधि द्वारा संसाधित करते हैं। आप 90 प्रतिशत प्रक्षालित कॉफी या 100 प्रतिशत शुष्क संसाधित कॉफी या इन दोनों के बीच का कोई भी मिश्रण प्राप्त कर सकते हैं।

पल्पिंग अगला चरण है जिसमें नर्म गूदेदार भाग निकाल देते हैं। यह काम फलों को एक चिकने तवे, जो स्थिर रहता है और ब्रेस्ट कहलाता है तथा एक खुरदरी सतह वाले घूमते हुए तवे के बीच से गुजारकर करते हैं। गूदा निकल जाता है और बीज पानी की धारा में चला जाता है।

हर बीज के साथ एक चिपचिपी श्लेष्मा लगी हुई होती है जिसे निकालना आवश्यक है ताकि संचालन सुविधाजनक हो और एंजाइमों के संक्रमण को रोका जा सके, जो स्वाद को नष्ट करते हैं। अधिकतर यह काम प्राकृतिक खमीरीकरण द्वारा कंक्रीट या लकड़ी की बड़ी बड़ी टंकियों में करते हैं जिनमें पिछली कार्रवाई से बचा हुआ यीस्ट और जीवाणु भी होते हैं। लगभग 1 से 2 दिन की अवधि में

श्लेषमा पूरी तरह फट जाती है और बीजों को धूप में या फिर जालीदार तश्तरियों में गर्म हवा से (कभी कभी एक त्वरित धुलाई के बाद) सुखाते हैं। आर्द्रता का स्तर, जो आरंभ में 52-54 प्रतिशत होता है, घटकर 12 प्रतिशत के स्तर पर आ जाता है। बाद में भंडारण और अच्छे स्वाद को निश्चित करने के लिए यह महत्वपूर्ण है। आर्द्रता का स्तर ऐसी पारंपरिक कसौटियों पर परखा जाता है, जैसे दांतों से काटना, अंगूठे के नाखून से खुरचना और रंग (हल्का हरित-नीला) प्रक्षालित कॉफी को सूखने में एक सप्ताह और प्राकृतिक कॉफी को इससे तीन गुना समय लगता है।

अंतिम चरण में कठोर त्वचा को निकालते हैं जिसमें दोनों बीज बंद होते हैं। इसे छिलका उतारना (हलिंग) कहते हैं। यह निश्चय ही बीजों के बीच घर्षण की प्रक्रिया है, जो एक लंबी नली में होती है जिसमें सर्पिल चूड़ियों वाला एक स्क्रू घूमता है। त्वचा टुकड़ों में फट जाती है, जिन्हें वायु-प्रवाह के द्वारा हटा देते हैं और कॉफी बीज बाहर आ जाते हैं।

भूनना, पीसना और छानना

दक्षिण भारत में, भूनना कभी एक घरेलू काम था, जिसे हाथ से संचालित घूमने वाले धातु के पीपों में लकड़ी के कोयलों की आग पर करते थे। आज काफी की भुनाई एक व्यावसायिक कार्य है, जिसे बिजली से गर्म होने वाली छोटी घूमने वाली इकाइयों में करते हैं, या लंबे अविच्छिन्न रोस्टरों में, जिसमें गर्म हवा पहुंचाने के लिए छेद होते हैं। सामान्य रूप से भुनाई-तापमान लगभग 180° से. होता है। किंतु कुछ अलग अलग बीजों को इससे दुगुना और कभी तिगुना तापमान भी लग सकता है। न केवल सारी आर्द्रता (12 प्रतिशत) निकाल दी जाती है, बल्कि गैसों और वाष्पशील कार्बनिक पदार्थों के बनने और निकलने से 5 प्रतिशत भार और कम हो जाता है। जैसा कि हम देख चुके हैं, प्रतिक्रियाओं की एक जटिल शृंखला बनती है जिससे एक गहरा रंग और एक प्रचुर, विशिष्ट और प्रभावशाली गंध, दोनों मिलते हैं। भुनी और पिसी कॉफी को गुप्त रूप से ले जाना किसी के लिए भी कठिन है।

भुने बीजों को छोटे कणों में पीसने से अधिक अच्छा पेय-निषेच निश्चित होता है। बारीक पिसाई में घुलनशीलों और कोलॉइडी अघुलनशीलों की मात्रा अधिक रहती है, किंतु निश्चय ही, यदि बहुत महीन हो, तो पाउडर निकल जाएगा और पेय में किरकिराहट के रूप में आ जाएगा। व्यावसायिक भाषा में कोलेशन ग्राइंड (मोटा) रेग्यूलर ग्राइंड, ड्रिप ग्राइंड और फाइन ग्राइंड शब्दों का उपयोग करते हैं। अधिक भुने बीज, हल्के भुने बीजों की अपेक्षा, और पुराने बीज नए बीजों की अपेक्षा अधिक महीन कण देते हैं। ताजा भुने बीज अधिक चीमड़ होते हैं, उन्हें पीसना कठिन

होता है। भुरभुरापन पाने के लिए उन्हें पूरी तरह ठंडा होने देना आवश्यक है। भुने हुए कॉफी बीजों के बड़े ढेर को पीसते समय काफी कार्बन डाइऑक्साइड निकलती है, इसलिए कार्यस्थल खुला हवादार होना आवश्यक है।

दक्षिणी घरों में कॉफी पाउडर का पेय बनाने का काम पारंपरिक पीतल या स्टेनलेस स्टील के बर्तनों में किया जाता है। इसमें ऊपर वाले बर्तन के छिद्रित तल पर कॉफी ठूंस ठूंसकर भर दी जाती है, जो कि नीचे वाले बर्तन से मजबूती से जुड़ा होता है। अब धातु के इस छिद्रित तल पर रखी कॉफी की परत पर उबला पानी धीरे धीरे डाला जाता है जो कॉफी की परत से होता हुआ करीब 30 मिनट में नीचे रिस जाता है। इससे कड़क, गहरा, सुगंधित पेय मिलता है जिसे पर्याप्त दूध और शक्कर मिला कर पीते हैं। इतालवी शैली की एस्प्रेसो इकाइयों में एक ढीली एल्युमीनियम की छिद्रित कीप में पाउडर रखा जाता है और नीचे के बर्तन से उबला पानी या भाप कॉफी की परत से गुजरती है और फिर एक नली से होते हुए ऊपर ग्राही-पात्र में, एक हवा-बंद रबर गैसकेट की उपस्थिति के द्वारा विकसित आंतरिक दबाव के कारण प्रेरित होती है। नीचे की ओर रिसाव के लिए फिर अधिक महीन पिसी काफी उपयोग कर सकते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में लोकप्रिय निर्वात (वैकुअम) कॉफी-निर्माण में कांच के दो कटोरे एक दूसरे के ऊपर रखते हैं, और ऊपर वाले कटोरे में कपड़े की पोटली या छन्ना कागज की थैली में कॉफी रखते हैं। नीचे के पात्र में उबाला गया पानी भाप के दबाव से ऊपर वाले पात्र में पहुंचाते हैं, जो पाउडर को निषेचित करता है और निर्वात द्वारा क्वाथ आंच पर से परकोलेटर हटाने पर वापस नीचे के पात्र में आ जाता है।

तात्कालिक (इंस्टेंट) कॉफी

पहले भूनी कॉफी के तलछट के रिसन के द्वारा एक कड़क आसव बहुत गर्म पानी का उपयोग करके ऊंचे निष्कर्षों की एक श्रृंखला में बनाया जाता है। एक से दूसरे निष्कर्षक में जाते हुए आसव अधिकाधिक सांद्रित भी होता जाता है, और गोंद और तेलों से मुक्त होता जाता है। अंतिम निचोड़ में लगभग 70 प्रतिशत पानी होता है, जिसे आसव को बहुत महीन परमाणुकृत कणों के रूप में, प्रकोष्ठ के शीर्ष से पंखों का उपयोग करके, बहुत गर्म हवा के द्रव्यमान पर छिड़का जाता है। इससे एक महीन हल्का पाउडर प्राप्त होता है जिसमें 3 प्रतिशत से कम आर्द्रता होती है। स्वाद-गंध को यथासंभव अधिकतम बनाए रखना महत्वपूर्ण बात होती है। इसके लिए अनेक तकनीकी युक्तियां हैं, और कुछ संस्थानों में पानी के साथ उड़ जाने वाले वाष्पशीलों को फिर से प्राप्त करके उत्पाद में मिलाते हैं। घुलनशील कॉफी पाउडर अत्यधिक आर्द्रताग्राही होता है और इसे तत्काल पेंचदार ढक्कन वाली बोतलों या लैमिनैटेड थैलियों में पूरी तरह हवा बंद कर भरना आवश्यक है। यहां तक

कि घर में भी पाउडर को थैली से निकाल कर बोतल में भरने का काम तेजी से करना चाहिए, ताकि उसे चिपचिपा ढेर बनने से बचाया जाए।

अन्य देशों में, आसव से पानी निकालने के लिए नई विधियां विकसित कर ली गई हैं। प्रशीतन द्वारा सुखाई गई कॉफी बनाने के लिए पहले आसव का हिमीकरण करते हैं, फिर निर्वात के द्वारा बर्फ को निकाल देते हैं। यह एक महंगी प्रक्रिया है। झाग द्वारा सुखाने के लिए, आसव को पहले कमरे के तापमान पर झाग बनाते हैं और फिर निर्वात द्वारा सुखाते हैं। निर्वात द्वारा सुखाने में थोड़े ऊंचे तापमान का भी प्रयोग करते हैं।

अनेक रूपों में कॉफी

कॉफी पाउडर के साथ 25 से 50 प्रतिशत अधिमिश्रण के लिए चिकोरी लंबे समय से लोकप्रिय है। इससे आसव में एक हल्का-सा कड़वापन, रंग और गाढ़ापन आता है। चिकोरी एक पौधे की जड़ है जो चुकंदर की जड़ से मिलती-जुलती है और इसे कोयंबटूर, नीलगिरी, केरल के कुछ भागों और जामनगर में उपजाया जाता है। हरी जड़ों को जब कुचलकर, टुकड़े करके सुखा देते हैं, तब इसे क्षति पहुंचाए बिना भंडारित कर सकते हैं। कॉफी पाउडर में मिलाने से पहले इसे भूनकर पीस लेते हैं। देश में तैयार किए जाने वाले 4500 टन चिकोरी पाउडर का केवल छठा भाग यहां उपयोग किया जाता है, और शेष निर्यात होता है।

तात्कालिक (इंस्टैंट) रूप में मिश्रित कॉफी-चिकोरी पाउडर तात्कालिक कॉफी के समान ही बनाते हैं और यहां उपलब्ध भी है।

कॉफी के घुलनशीलों, दूध के यौगिकों और शक्कर के मिश्रण गाढ़ी चिपचिपी लेई के रूप में बाजार में भी बेचे जाते हैं। ये केवल गर्म पानी मिलाकर तत्काल पीने के लिए उपलब्ध हैं।

हृदय रोगों से ग्रस्त लोगों को कैफीन जैसे उद्दीपकों का उपयोग न करने की सलाह दी जाती है। उनके लिए कैफीन रहित कॉफी हरे बीजों को (जिनसे श्लेष्मा को पहले ही धो दिया गया हो) गर्म पानी के साथ निष्कर्षण द्वारा कैफीन निकाल कर बनाते हैं। इस कैफीन को फिर से प्राप्त कर लेते हैं जिसका अच्छा मूल्य मिलता है। कैफीन रहित बीजों को सामान्य विधि से संसाधित करके भुनी कॉफी बनाते हैं।

कॉफी का उपयोग

कॉफी कभी दक्षिण का ही पेय थी किंतु उत्तर का अतिक्रमण आरंभ हो चुका है। भारत में कॉफी का औसत उपयोग केवल 62 ग्राम प्रतिवर्ष है, जो चाय का केवल छठा भाग है। एक प्याला भर पेय बनाने के लिए चाय से दुगुनी मात्रा में कॉफी की आवश्यकता पड़ती है, इसलिए पेय के उपभोग में अंतर और भी अधिक है।

पेयों में पौष्टिकता

चाय और कॉफी को आहार नहीं, किंतु ताजगीदायक और उद्दीपक पेय माना जाता है। परंतु क्योंकि कुछ लोगों के लिए प्रतिदिन 6 प्याले या लगभग एक लिटर तक चाय या कॉफी पी लेना असाधारण नहीं है, इसलिए पोषकों या पोषण विरोधी तत्वों की छोटी-सी मात्रा भी महत्वपूर्ण है।

चाय और कॉफी के आसवों में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और वसा जैसे स्थूल पोषक बहुत निम्न मात्रा में उपस्थित हैं, इसलिए कैलोरी और प्रोटीन का योगदान नगण्य है। निश्चय ही चाय के एक प्याले में 25 से 50 मिलिलिटर और कॉफी के एक प्याले में 50 से 100 मिलिलिटर दूध और शायद 10 ग्राम शक्कर मिलाने से, पिए गए हर प्याले में तदनुसार ऊर्जा और प्रोटीन की वृद्धि हो जाएगी।

स्वयं आसवों में कुछ पोषक सूक्ष्म मात्रा में विद्यमान रहते हैं। चाय के एक प्याले में अनेक खनिज होते हैं। इनमें से अधिकतर इतनी कम मात्रा में होते हैं कि उनका शायद ही कोई पोषणीय महत्व हो, किंतु चार खनिज महत्वपूर्ण मात्रा में उपस्थित रहते हैं। इस प्रकार एक प्याला चाय मैंगनीज की 80 प्रतिशत, लोहे और तांबे की 20 से 25 प्रतिशत और फ्लोरिन की 10 प्रतिशत आवश्यकता की पूर्ति करती है। कॉफी के आसव के बारे में इस संबंध में बहुत अधिक जानकारी नहीं है।

टैनिन अपेक्षाकृत बाधक हैं, क्योंकि वे कुछ महत्वपूर्ण धातुओं, विशेष रूप से लोहे को बांध देते हैं। चाय या कॉफी के हर प्याले में लगभग 150 मिलिग्राम टैनिन होता है, किंतु जब दूध मिलाया जाता है, तो उसके प्रोटीन टैनिन को बांध देते हैं और न केवल इसके पोषण विरोधी गुणों को, बल्कि मुंह में इसके कठोर और अम्लीय स्वाद को भी कम कर देते हैं। फिर भी, जब यह सम्मिश्रण पेट में पहुंचता है, यह फिर से टैनिन और प्रोटीन में विभाजित हो जाता है, जो फिर से अपनी अम्लीय क्रिया आरंभ कर देते हैं। अपच के रोगियों को चाय या कॉफी न पीने की सलाह देने का यह एक कारण है। आंतों में टैनिन, अंडों, घी और मांस की वसा जैसे आहार से प्राप्त कोलेस्ट्रॉल के अवशोषण को दबाने का काम करते हैं। परिणामस्वरूप रक्त में कोलेस्ट्रॉल के स्तर में कमी, हृदयाघात के लिए प्रवणता को घटा सकती है।

जब हम चाय या कॉफी के बारे में सोचते हैं, तो यह उनका उद्दीपनकारी प्रभाव है जो वास्तव में महत्वपूर्ण है, और यह तत्वों के एक समूह से प्राप्त होता है। ये तत्व कैफीन, थियोब्रोमाइन और थियोफिलाइन हैं। चाय के 150 सी सी प्याले में उपस्थित इनकी मात्रा क्रमशः 50 मिलिग्राम, 2 से 3 मिलिग्राम और 0.3 मिलिग्राम से कम है, जबकि कॉफी में भी 80 से 100 मिलिग्राम कैफीन है किंतु अन्य दो पदार्थ नहीं हैं। तीनों लगभग एक समान ही काम करते हैं, किंतु स्पष्ट ही कैफीन सबसे महत्वपूर्ण है। एक कप चाय या काफी मस्तिष्क को ताजा और थकान की अनुभूति को नष्ट करती है, और कुछ लोगों को यह अनिद्रा की सीमा तक उत्तेजित

भी कर सकती है। यह प्रतिवर्ती क्रिया को तीव्र कर सकती है और मानसिक और शारीरिक दोनों कामों में सहायता कर सकती है। ये सारे गुण कैफीन से मिलते हैं जो न तो संचयी है, न व्यसन डालने वाली और परवर्ती प्रभावों से मुक्त भी है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि सारे संसार में और भारत में केवल 150 वर्ष से भी कम समय में चाय और कॉफी पीना इतना लोकप्रिय हो गया है।

कैफीन कई प्रकार से काम करती है। यह तंत्रिका प्रणाली पर क्रिया करती है, फेफड़ों को उद्दीप्त करती है, हृदय को जाने वाली धमनियों को फैलाती है, और गुर्दों पर मूत्र-वर्धक के रूप में सीधे प्रभाव डालती है। अनेक देशों में लोगों के बड़े-बड़े समूहों पर संचालित अध्ययन दर्शाते हैं कि कॉफी पीने की मात्रा और हृदय रोग के बीच कोई संबंध नहीं है, जबकि चाय और कॉफी दोनों पीने के कारण रक्त-वाहिनियों के फैलाव से वांछनीय अबाध रक्त प्रवाह निश्चित होता है। कितना अधिक, बहुत अधिक है? चाय और कॉफी से प्रभावित अलग-अलग लोगों में इतनी भिन्नता है कि यह कहना कठिन लगता है। किंतु अपच के रोगी, अत्याधिक व्यग्र लोग और हृदय रोगों से पीड़ितों को यही सलाह दी जाती है कि इन आनंददायक प्यालों का उपयोग कम ही करें।

7. प्राणिज आहार

अंडे, मछली और मांस

अंडे

अंडों का उत्पादन

पहले जमाने में खेतों पर या घर के पिछवाड़े के बगीचों में रखी 'देसी' मुर्गियां अधिकतर अंडे देती थीं। मालिक द्वारा उन्हें कुछ दाना (अन्न) खिलाया जाता था, किंतु अधिकांशतः वे अपने आहार के लिए आसपास चारा खोजती थीं। दस से बारह अंडे इतने ही दिनों में देने के बाद इससे भी लंबी एक बंजर अवधि होती थी, जिसमें मुर्गी कोई अंडे नहीं देती थी और तब पक्षी बच्चों के लिए अंडे सेते थे। पक्षी छोटे होते थे और अंडे भी, और साल भर अंडों की संख्या शायद ही सौ से ऊपर होती थी। मुर्गियों को उर्वर बनाने के लिए एक या दो मुर्गे रखे जाते थे और शेष बड़े होने पर खाने के लिए मार दिए जाते थे।

आधुनिक पोल्ट्री (मुर्गी-पालन) उद्योग एक अलग विधि पर काम करता है। अंडों के अधिक उत्पादन के लिए बहुत बड़ी संख्या में मुर्गियां पाली जाती हैं। उन्हें दड़बों में रखते हैं जहां से वे कभी बाहर नहीं निकलतीं। वहीं उन्हें दाना और पानी दिया जाता है। सारे मुर्गे थोड़े-से बड़े होने पर, जैसे ही वे खाने के योग्य होते हैं, मार दिए जाते हैं और वे कभी भी मुर्गियों के साथ संयोग नहीं करते। अंडे बड़े होते हैं और एक वर्ष की अवधि में 250-300 अंडे मिलते हैं। सेने के लिए मुर्गी को कोई समय नहीं दिया जाता क्योंकि अंडे मशीन में सेये जाते हैं। यदि सही आहार दिए जाएं, तो जरदी का रंग चमकीला पीला होता है किंतु विशेष रूप से ऐसा न करने पर वह फीकी दिखाई देती है। क्योंकि मुर्गियां चारा नहीं खोजतीं, इसलिए अनेक लोग अंडों का स्वाद फीका और अरुचिकर मानते हैं। वास्तव में, छोटा देसी अंडा,

जो भार में लगभग 30 ग्राम का होता है, आज प्रायः उसी मूल्य पर बिकता है जितने में पोल्ट्री से निकला 50 ग्राम का बड़ा अंडा बिकता है।

अंडा कैसे बनता है?

अब यह सामान्य रूप से ज्ञात है कि बड़े फार्म अंडे अनुर्वर होते हैं और चूजे के लिए उन्हें सेया नहीं जा सकता है। इसलिए अनेक शाकाहारी उन्हें खाने से परहेज नहीं करते। जब कोई संयोग ही नहीं हुआ तो अंडा कैसे बन सकता है? यह तो प्रकाश है, जो प्रेरक का काम करता है। या तो सूर्य का प्रकाश या कृत्रिम प्रकाश परिपक्व मुर्गी की आंखों पर (वास्तव में रेटिना पर जो आंख के गोलक के पीछे स्थित संवेदनशील सतह है) पड़ता है। इससे पीयूष-ग्रंथि उत्तेजित होकर एक हारमोन छोड़ती है, जो अंडाशय में अपरिपक्व स्थिति में उपस्थित किसी एक कोए को उद्दीप्त करता है, 6-8 घंटों में उद्दीप्त कोया परिपक्व हो जाता है और डिंब के रूप में अंडा देने वाली नलिका में छोड़ दिया जाता है। यह डिंब ही भावी अंडे की जरदी है और खुद अंडा अंदर से बाहर की ओर बनता है। जैसे जैसे अंडा धीरे-धीरे नलिका में नीचे की ओर बढ़ता है, उस पर पहले तो सफेदी की परत चढ़ती है, इसके बाद एक पतली लचीली सफेद त्वचा और अंतिम रूप से छिलके की सामग्री चढ़ती है। धीरे धीरे झिल्ली से पानी और लवणों के प्रवेश के साथ-साथ अंडा बड़ा होता है और अंत में कैल्शियम (चूने) के जमा होने से खोल कड़ा होने लगता है और कठोर हो जाता है। इस सबमें केवल एक दिन लगता है और हर 24 घंटों पर एक ऐसा अनुर्वर अंडा दिया जाता है।

अगर मुर्गा-मुर्गी के साथ संयोग करे, तो अंतर यह होता है कि जब कोया डिंब के रूप में छूटता है तो वह उर्वर होता है और इसलिए अंततः सेने योग्य होता है। उर्वर और अनुर्वर अंडों के स्वाद में कोई अंतर नहीं होता।

फार्म अंडों के मूल्य में निरंतर बढ़ने की प्रवृत्ति है, क्योंकि संतुलित आहारों की लागत लगातार बढ़ती जा रही है जो कि बड़ी मात्रा में देना आवश्यक है। देखा-देखी देसी अंडों के मूल्य भी बढ़ते हैं।

अंडे से प्राप्त पोषक

अंडे के खोल के भीतर कई प्रकार के पोषक भरे होते हैं। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जब एक उर्वर अंडे को सेया जाता है तो पूरी तरह इन्हीं पोषकों से तीन हफ्तों में एक पूर्ण चूजा बन जाता है। दो बड़े फार्म अंडों या तीन देसी अंडों का भार लगभग 100 ग्राम होता है। इसमें से 12 ग्राम खोल है, 30 ग्राम जरदी और 58 ग्राम सफेद भाग होता है।

जरदी या पीला भाग लगभग आधा पानी और शेष वसा और प्रोटीन है। सफेद

भाग मुख्य रूप से पानी और कुछ प्रोटीन होता है। दो अंडे खाने से लगभग 30-30 ग्राम प्रोटीन और वसा मिलती है। प्रोटीन अत्याधिक उच्च गुणवत्ता युक्त होता है। वास्तव में यही सभी ज्ञात खाद्य प्रोटीनों में सर्वोत्तम है। प्रयोगशाला में चूहों की वृद्धि से संबंधित प्रयोगों में, तथाकथित प्रोटीन कुशलता अनुपात (प्रोटीन एफिशिएंसी रेशियो या पी. ई. आर.) में यह सबसे ऊपर है। इसका पी. ई. आर. 3.9 है जबकि दूध के प्रोटीनों का 3.1 और मांस के प्रोटीनों का 2.3 है। कुल प्रोटीन उपयोग (नेट प्रोटीन यूटिलाइजेशन या एन. पी. यू.) जिसमें शरीर द्वारा पाचकता, अवशोषण और उपयोग की मात्राओं को एक साथ दर्शाया जाता है, मांस के लिए 80 और दूध के प्रोटीनों के लिए 75 की तुलना में अंडों के प्रोटीन के लिए 100 है।

अंडों में वसा असंतृप्त है और उसमें लिनोलीक अम्ल (जो असंतृप्त वानस्पतिक तेलों में भी विद्यमान रहता है, देखिए पृष्ठ, 36) और एराकाइडोनिक अम्ल (जो एक "पशु" असंतृप्त वसीय अम्ल है जो किसी भी सामान्य वानस्पतिक तेल में नहीं मिलता और विशेष रूप से बहुत छोटे, बढ़ते हुए बच्चों के लिए आवश्यक होता है) दोनों होते हैं। यही नहीं वसा पायसीकृत रूप में होती है जो बच्चों, किशोरों और वृद्ध लोगों द्वारा समान रूप से सरलता से पचाई जा सकती है। यह वसा, वसा संबंधी यौगिकों के एक वर्ग "फॉस्पोलिपिड्स" से भी भरपूर होती है, जो ऊर्जा के रूप में या प्रत्येक कोशिका की दीवार के निर्माण के एक आवश्यक घटक के रूप में वसा को रक्त के द्वारा शरीर के सभी अंगों को सामान्य रूप से पहुंचाने में सहायता करते हैं।

अंडे विटामिनों के भंडारगृह हैं। इनमें 14 विटामिन विद्यमान रहते हैं। दो अंडे किसी की भी आवश्यकता का लगभग संपूर्ण विटामिन 'ए', विटामिन 'बी-12' और फॉलिक एसिड तथा अधिकांश अन्य विटामिनों की आवश्यकता का लगभग एक चौथाई देते हैं। अंडों में दर्जन भर खनिज भी होते हैं, जिनमें कैल्शियम और फॉस्फोरस जैसे खनिज भी हैं, जिनकी शरीर को प्रचुर आवश्यकता होती है। अंडे में उपस्थित लोहा, यद्यपि प्रचुर मात्रा में नहीं होता, फिर भी अंडे खाने पर पूरी तरह अवशोषित हो जाता है, जबकि अधिकांश अन्य आहारों से लोहा सामान्य रूप से उपस्थित मात्रा का केवल 5-10 प्रतिशत ही अवशोषित होता है। अंडों में आयोडिन भी होता है और इस प्रकार उनका घेघा रोग से सुरक्षात्मक महत्व (देखिए पृष्ठ 72) है। अंडों में आयोडिन की मात्रा मुर्गियों के आहार में अधिक आयोडिन मिलाकर प्रचुरता से बढ़ाई भी जा सकती है। अंडों में विटामिन 'सी' का पूर्ण अभाव है और इसे पाने के लिए अन्य खाद्य स्रोतों पर निर्भर करना पड़ता है।

चक्रीय (कोरोनरी) हृदय रोग के प्रति प्रवण लोगों के रक्त में कोलेस्ट्रॉल के उच्च स्तर की प्रवृति (100 मिलिलिटर में 120-160 मिलिग्राम के सामान्य स्तर की अपेक्षा 220 मिलिग्राम से अधिक) दिखाई पड़ती है। साधारणतया उन्हें अंडों

का प्रयोग कम करने का परामर्श दिया जाता है, क्योंकि दो बड़े अंडों की जरदी में 700 मिलिग्राम कोलेस्ट्रॉल होता है। फिर भी प्रतिदिन इस मात्रा से दो या तीन गुना कोलेस्ट्रॉल शरीर में अन्य खाद्यों के भंजन से निर्मित उत्पादों से बनता है, और ऐसा संश्लेषण पुनर्निवेश-नियंत्रण पर निर्भर करता है। इसका आशय यह है कि यदि अधिक कोलेस्ट्रॉल खाया गया, तो कम ही संश्लेषित होगा। यद्यपि अंडे खाने के बारे में अतिरंजित भय शायद अनुचित है, फिर भी जो रक्त में कोलेस्ट्रॉल के उच्च स्तर के प्रति प्रवण हैं, वे अंडे की जरदी का प्रयोग घटाकर अच्छा करते हैं।

अंडों में बी समूह का एक विटामिन बायोटिन होता है, बच्चों के भोजन में जिसकी अनुपस्थिति से लगातार अतिसार (डायरिया) और असामान्य त्वचा की स्थिति हो सकती है। अंडे के सफेद भाग में उपस्थित प्रोटीन, एविडिन न केवल इस बायोटिन को रोकता है, बल्कि भोजन में उपस्थित अन्य किसी भी मात्रा को बांध देता है और इस प्रकार शरीर को इस विटामिन से वंचित कर देता है। जब अंडे को उबाला, तला या अन्य किसी रूप में पकाया जाता है, तो एविडिन-बायोटिन संश्लेषण टूट जाता है और शरीर के उपयोग में आने के लिए विटामिन मुक्त हो जाता है।

कुछ कल्पनाएं और तथ्य

पौष्टिकता की दृष्टि से कच्चे अंडों में कोई विशेष गुण दिखाई नहीं देता, बल्कि यह कमी है कि बायोटिन अनुपलब्ध रहता है, जिस पर हमने अभी चर्चा की। खोल के रंग का कोई भी महत्व नहीं है और यह केवल मुर्गियों की हर प्रजाति का लक्षण है। "रोड आइलैंड रेड्स" भूरे और लैगहार्न सफेद अंडे देती है और कौवों के अंडे सुंदर हरे रंग के होते हैं जिनमें भूरे चकत्ते होते हैं। अंडे की जरदी का रंग मुर्गी के आहार पर निर्भर करता है, गहरे पीले रंग की जरदी विटामिन 'ए' के कैरोटिन प्रकार से भरपूर हो सकती है, किंतु हल्के रंग की जरदी में भी अधिक विटामिन 'ए' हो सकता है, बशर्ते कि तदनुसार आहार की संरचना की गई हो। जैसा कि हम देख चुके है, अंडे का स्वाद (मुर्गी के) आहार पर निर्भर करता है और उसकी कोई स्वाद-प्रासंगिता नहीं है।

अंडे की अंतर्वस्तुओं का प्रतिशत-संयोजन पर्याप्त स्थित रहता है। इसलिए बड़ा अंडा छोटे अंडे की अपेक्षा अधिक पोषण प्रदान करता है। वास्तव में, जैसा कि हम कह चुके हैं दो बड़े अंडे उतना ही पोषण प्रदान करते हैं जितना तीन छोटे अंडे।

बत्तख के अंडे भी खाए जाते हैं। क्योंकि बत्तखें चारा खोजती हैं, इसलिए उनके अंडों में स्वाद और दूषण की प्रवृत्ति होती है, जिसे हर कोई पसंद नहीं कर सकता। संरचना और पोषण के महत्व में वे मुर्गी के अंडों से बहुत अधिक मिलते जुलते हैं और उनमें एक लाभदायक बात यह है कि वे आकार में बड़े होते हैं। बत्तख

के अंडों में एक गंभीर दोष यह है कि उनमें सैलमोनेला अवयव होते हैं और यदि पर्याप्त नहीं पकाया जाए तो गैस्ट्रोएंट्राइटिस को बढ़ा सकते हैं। मुर्गी के अंडों में सैलमोनेला के वहन की प्रवणता कम होती है।

युद्ध के वर्षों में, दुर्गम और दूरस्थ क्षेत्रों में सैनिकों के आहार के लिए अंडों के चूर्ण का निर्माण विकसित किया गया। जैसे दूध का पाउडर रोलर और स्प्रे द्वारा सुखाने की प्रक्रिया द्वारा पानी निकाल कर प्राप्त करते हैं (अध्याय 3), वैसे ही अंडों से भी उसी प्रक्रिया द्वारा रोयेंदार पीला पाउडर प्राप्त होता है। यदि सही ढंग से बनाया जाए तो यह पाउडर पानी के साथ मिलाकर ऑमलेट, केक और आइसक्रीम बनाने में उपयोग करने के लिए सरलता से पुनर्गठित हो जाता है। हर 100 ग्राम अंडे के पाउडर में 43 ग्राम तक प्रोटीन और 43 ग्राम तक वसा होती है। इसके अतिरिक्त साबुत अंडे की अपेक्षा विटामिनों और खनिजों के समाहार की मात्रा मोटे तौर पर तीन गुना होती है। ताजा अंडों की अपेक्षा पाउडर में एक यही अभाव होता है कि ताप के प्रति संवेदनशील विटामिन 'ए' और थाइमिन जैसे पदार्थ नहीं रहते हैं।

लागत की दृष्टि से समस्त कैलोरी और प्रोटीन दोनों के प्रदाता के रूप में अंडे, दूध या मांस के बहुत अधिक समान होते हैं। फिर भी, उपयोग में हल्का होने के अतिरिक्त उसके अनेक विटामिन और खनिज घटकों की दृष्टि से दूध की तुलना में अंडे का पलड़ा भारी है।

व्यावहारिक उपयोग में अंडे

अंडे भोजन बनाने के बहु-आयामी संघटक हैं, जो कच्चे भी (अलबत्ता यह विटामिन बायोटिन की उपलब्धता से संबंधित कारणों से, जैसी कि पृष्ठ 114 पर चर्चा की गई है, उपयुक्त नहीं है) विशेषकर दूध के साथ फेंट कर खाए जा सकते हैं। अंडे उबाले या तले जा सकते हैं या ऑमलेट बनाने के लिए, मांस के चॉप्स के साथ या चीनी शैली के नूडल्स और सूप बनाने के लिए, तोड़कर फेंटे जा सकते हैं।

फेंटे हुए अंडों में महीन बुलबुलों के रूप में हवा की काफी बड़ी मात्रा होती है। जब केक के मिश्रण में मिलाते हैं, तो ये बुलबुले फैल जाते हैं। अंडे की सफेदी का प्रोटीन या एल्ब्यूमन हवा के बुलबुलों की दीवारों को मजबूती देता है जिसके परिणामस्वरूप केक एक हल्की रंध्रयुक्त संरचना में पकता है। अंडे की जरदी की उपस्थिति तेल और पानी के मिश्रण की स्थिरता को पुष्ट करती है और इसीलिए मायोनेज (80 प्रतिशत तेल, 10 प्रतिशत पानी और 10 प्रतिशत अंडे की जरदी) बनाने और घोल या लोई के एक संघटक के रूप में उपयोग की जाती है। आइसक्रीम में, यदि अंडा उपस्थित हो तो बर्फ के कण बनने और बढ़ने से रुकते हैं, जिससे मुंह में नरम मलाईदार अनुभूति होती है। यही, फेंटी हुई मलाई और कुछ भारतीय

मिठाइयों के लिए भी सच है। अंडे की गाढ़ा बनाने की क्षमता भी अनूठी है : अंडे की सफेदी को यदि पर्याप्त रूप से फेंटा जाए तो वह स्वयं अपने आप कड़ी बनी रहेगी और पूरे अंडे को दूध के साथ फेंटा जाए, तो वह कस्टर्ड बन जाएगा।

अंडे का सफेद एल्ब्यूमन 60-65° से. पर जम जाता है, किंतु उबलते पानी के 100° से. तापमान पर यह कड़ा, लचीलेपन से रहित और अपेक्षाकृत अरुचिकर हो जाता है। जब कभी पूरी तरह उबले अंडे में जरदी पर हरापन-सा दिखाई देता है, तो उसका कारण अधिक पक गए प्रोटीन द्वारा विकसित हायड्रोजन सल्फाइड के साथ जरदी में उपस्थित लोहे की प्रतिक्रिया है, जो हरा फेरस सल्फाइड देती है। अधिक उबले हुए अंडे को ठंडे पानी में रखकर इस हरेपन को घटाया जा सकता है।

कच्चे अंडों के अतिरिक्त, उबले, तले या फेंट कर पकाए गए अंडों के बीच पौष्टिकता की दृष्टि से बहुत अंतर है। हल्के उबले अंडे लगभग 100 मिनट में पेट से निकल जाते हैं, जबकि पूरे उबले या ऑमलेट इससे दो गुना समय लेते हैं। आंत से, सभी रूपों में अंडे पूरी तरह अवशोषित हो जाते हैं। क्योंकि वे आंत में कोई अवशेष नहीं छोड़ते, इसलिए कुछ लोगों को अंडे कब्जियत-प्रवण लगते हैं। बहुत कम संख्या में लोग प्रोटीन युक्त कुछ खाद्य-वस्तुओं के प्रति प्रत्यूर्जित (एलर्जिक) होते हैं, और अंडे उन वस्तुओं में से एक हैं : यहां तक कि बहुत छोटा सा भाग भी, उल्टी, सूजन या त्वचा पर ददोरे जैसी प्रबल प्रतिक्रिया का कारण हो सकता है। यदि बच्चों में ऐसी प्रतिक्रिया दिखाई दे, तो उन्हें अंडे नहीं देने चाहिए। अधिकांश बच्चों के लिए अंडे सर्वोत्तम आहार हैं। लगभग 4 या 5 महीने की आयु से बच्चों को बहुत नर्म, चूरे हुए रूप में जरदी देने की शुरुआत करना लाभजनक है। यह मात्रा बच्चे के 7 या 8 महीने का होते होते एक पूरे अंडे तक बढ़ाई जा सकती है।

आमाशय के रोगियों के लिए अंडे के खाद्य पदार्थ उपयोगी हो सकते हैं क्योंकि मांस या मछली की अपेक्षा इससे पेट में हायड्रोलिक एसिड का स्राव कम होता है। इससे भी अच्छा अंडे और दूध का मिश्रण जैसे कस्टर्ड है। चूंकि अंडों में कोई कार्बोहाइड्रेट नहीं होता, परंतु उनमें कई प्रकार के अन्य पोषक तत्व होते हैं। वे वजन घटाने वाली खुराक में उपयोगी होते हैं। छोटे बच्चों, गर्भवती स्त्रियों और दूध पिलाने वाली माताओं के लिए, जिन्हें पोषकों की विशेष आवश्यकता होती है, भारत में अंडे विशेष मूल्यवान हैं क्योंकि सामान्य भोजन में कार्बोहाइड्रेट भरपूर, अच्छे प्रकार के प्रोटीन, साधारण मात्रा में और वसा अपेक्षाकृत कम होती है।

मछली

बड़ी मछली, छोटी मछली

देश के आसपास एक लंबा समुद्र तट होने के कारण अपेक्षा की जा सकती है कि भारत में काफी अधिक मछली खाई जाती होगी। प्रति वर्ष 20 लाख टन के आसपास पकड़ी जाने वाली मछलियों में लगभग दो-तिहाई समुद्री मछलियां होती हैं जिनमें सार्डीन, कैमेरेल, शार्क, पोम्फ्रेट, बांबे डक (स्थानीय नाम बोंबिल का विकृत रूप) और सोल जैसी मछलियां शामिल हैं। शेष में रोहू, कतला और मृगाल (सभी भारतीय प्रकार) हिल्सा, कवई परिवार की भेक्ती और म्यूरल जैसी ताजा पानी में रहने वाली मछलियां शामिल हैं। कैटफिश कुछ नदियों के थलों और जलाशयों में बढ़ती हैं। समस्त पकड़ी गई मछलियों में से लगभग दो-तिहाई ताजा या थोड़े समय के लिए बर्फ में रखे जाने के बाद खाई जाती हैं। शेष को धूप में या आंच पर सुखाकर, लकड़ी के धुएं में सुखाकर या नमक और मसालों के साथ डिब्बाबंद करके पारंपरिक विधि से सुरक्षित रख दिया जाता है।

अभी हाल तक, मछली का कोई परिवहन कठिनाई से ही संभव था। जब बर्फ उपलब्ध होने लगी तो बांस या लकड़ी की टोकरियों में बर्फ में रखकर मछली को रात भर में लाने-ले जाने का काम किया जाने लगा। आजकल पोलिस्टरीन फोम के अस्तर लगे प्लाईवुड के संदूकों को काम में लाया जाता है। इसका और भी विस्तार किया गया है कि संसाधित और सुखाई हुई मछलियों के स्थान पर ताजा मछली के परिवहन के लिए इनका उपयोग किया जाता है। बहुत कम अर्थात कुल पकड़ी गई मछलियों में से केवल एक प्रतिशत डिब्बाबंद की जाती हैं और इसमें भी प्रमुख रूप से प्रॉन, श्रिम्प, मैकरैल और सार्डीन ही हैं।

जो बढ़ा है, वह निर्यात उद्योग है, और यह भी लगभग पूरी तरह से प्रॉन (झींगा) और लॉब्स्टर (समुद्री झींगा) से संबंधित है। कभी ये 'गीले' लवण-जल में पैक किए जाते थे, किंतु आज उन्हें साफ कर, धोकर और छांटकर आकार के अनुसार पॉलीथिलिन थैलियों में (यह सब ठंडे कमरों में स्त्रियों द्वारा कठोर स्वास्थ्यकारक नियमों का पालन करते हुए किया जाता है) पैक करके भंडार कर दिया जाता है और प्रशीतित स्थितियों में समुद्र पार भेज दिया जाता है, ताकि मूल ताजा स्वाद और परिष्कृत संरचना बनी रहे। तथाकथित टायगर प्रॉन इतनी बड़ी होती हैं कि केवल बारह का वजन एक किलोग्राम हो जाता है। प्रतिवर्ष लगभग 200 करोड़ रुपये मूल्य के प्रॉन निर्यात किए जाते हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि बहुत कम शेष रहता है, और फिर केवल छोटे से छोटे से आकार की श्रिम्प (झींगा) भारतीय बाजार में बिकने के लिए बच जाती है। देश के भीतर प्रशीतित परिवहन विकास में धीमा रहा है : पहियों पर प्रशीतित रेल डिब्बों की उपलब्धि बहुत कम है।

मछलियों के द्वारा पौष्टिकता

मछलियां उच्च श्रेणी का पशु प्रोटीन प्रदान करती हैं और इस संबंध में एक से दूसरी मछली में या मछली और शंख मीन (जिसे कभी कभी समुद्री भोजन कहते हैं) में बहुत ही कम अंतर है। सभी में प्रोटीन का वही स्तर, 18-20 प्रतिशत रहता है, जितना कि मटन में और वह भी आधी कीमत पर। सार्डीन के गोश्त में 27 प्रतिशत वसा होती है, जबकि हैरिंग में 12 प्रतिशत, हिल्सा में 19 प्रतिशत से भी कम वसा होती है। उनमें कोई कार्बोहाइड्रेट भी नहीं होते, इसलिए वजन कम करने वाले भोजन में मछली का महत्व है। मछलियां प्रथम श्रेणी का प्रोटीन हैं, मांस से बहुत अच्छा और दूध के लगभग बराबर। इसका कारण मछली के प्रोटीन में एमिनो एसिड लायसिन का स्तर लगभग 10 प्रतिशत है जो विशेष रूप से ऊंचा है। ऐसे ही मैथियोनिन का स्तर भी लगभग 3 प्रतिशत है। ये आवश्यक एमिनो एसिडों में से दो हैं, जिन्हें चावल और गेहूं जैसे धान्य रेशों पर आधारित शाकाहारी भोजन से पर्याप्त मात्रा में पाना सरल नहीं है। धान्य प्रोटीनों की निम्न गुणवत्ता को मछली के प्रोटीनों में उपस्थित इन एमिनों एसिडों की बड़ी मात्रा के द्वारा पुष्ट किया जा सकता है। इस प्रकार धान्य-मछली मिश्रण में, इन दोनों स्रोतों से प्राप्त समस्त प्रोटीनों की गुणवत्ता ऊंची उठ जाती है।

मछली और शैलफिश अनेक प्रकार के खनिज भी पर्याप्त मात्रा में प्रदान करती है। इनमें कैल्शियम, फॉस्फोरस, मैगनेशियम, तांबा, मैंगनीज और जस्ता शामिल हैं। समुद्री मछली में लोहा विशेष रूप से अधिक है और ताजा पानी की मछली की अपेक्षा शैलफिश में लगभग तीस गुना है। आयोडिन की कमी के कारण होने वाला घेंघा रोग, समुद्री मछली खाने वाले देश जापान में पूरी तरह अनुपस्थित है। दांतों के विकास के महत्वपूर्ण फलौटिन भी समुद्री मछली में ऊंची मात्रा में हैं। नदी की मछली की तुलना में शैलफिश में तांबा और जस्ता तीन गुना है। अपने जिगर (लिवर) में धातुओं को संकेंद्रित करने के प्रति शैलफिश का झुकाव पारे के संबंध में भी सच है। जापान में मिनामाता बीमारी का प्रसिद्ध प्रकोप हुआ था, जिसमें पांवों और मुंह में जड़ता आ जाती है जिससे चाल अस्थिर और जबान लड़खड़ाने लगती है। इसका स्रोत उस स्राव में पाया गया जिसमें पारा था और जो एक कारखाने से उस समुद्री खाड़ी में बहाया गया था जहां से झींगा मछली पकड़ी जाती थी। मछली के मांस में सोडियम की मात्रा कम (प्रति 100 ग्राम में 40 मिलिग्राम) होती है और इसलिए इसे उच्च रक्तचाप को नियंत्रित करने के लिए बनाई गई खुराक में शामिल कर सकते हैं।

मछली के जिगर के तेल के बारे में एक बात। मछली के शरीर के तेल में चाहे वह ताजा पानी की हो या समुद्री पानी की, विटामिन 'ए' (प्रति ग्राम 0.3 माइक्रोग्राम) या विटामिन 'डी' (प्रति ग्राम 0.2-0.4 माइक्रोग्राम) बहुत कम होता है। यहां तक कि ताजा पानी की मछली के जिगर के तेल में भी विटामिन 'डी'

की मात्रा इससे केवल लगभग दो गुनी होती है। समुद्री पानी की मछलियों की, कॉड और शार्क जैसी कुछ प्रजातियों में उनके जिगर के तेलों में वसा में घुलनशील तीन विटामिन संकेंद्रित होते हैं। लिवर तेल के हर ग्राम में, विटामिन 'ए' 150 माइक्रोग्राम तक, विटामिन डी, 5 से 10 माइक्रोग्राम तक और विटामिन ई, 1 से 2 माइक्रोग्राम तक रहता है। विटामिन 'ए' के अग्रगामी कैरोटिन से भरपूर होते हैं। मछली के तेल में विटामिन 'डी' शायद मछली द्वारा ही संश्लेपित किया जाता है। कॉड और शार्क के जिगर के तेल निचोड़े और इन विटामिनों के स्त्रोतों के रूप में, शिशुओं, गर्भवती स्त्रियों और दूध पिलाने वाली माताओं के लिए उपयोग किए जाते हैं। मनुष्य को प्रतिदिन 750 माइक्रोग्राम विटामिन ए, 5 माइक्रोग्राम विटामिन डी और 25-30 मिलीग्राम जैसी बड़ी मात्रा में विटामिन ई की आवश्यकता पड़ती है, इसलिए चाय का एक चम्मच भर शार्क लिवर आइल प्रथम दो विटामिनों को पर्याप्त रूप से पाने के लिए काफी है। पशुओं और मुर्गी के पूरे जिगर का हमारे भोजन में उपयोग इन विटामिनों की पूर्ति को निश्चित करने का, साथ ही बी समूह के कई विटामिन भी और लोहे जैसे खनिज पाने का दूसरा रास्ता है।

मछली और ज्वर

कुछ लोग प्रोटीन युक्त खाद्यों में कुछ रूपों से, जैसे अंडे, मांस और यहां तक कि दूध या दही के प्रति भी प्रत्यूर्जित (एलर्जिक) जन्मते हैं। इस सूची में मछली भी शामिल है। प्रत्यूर्जा (एलर्जी) के साधारण लक्षण हैं छींकना, सूजन, ददोरे, उल्टी, अतिसार और ज्वर। घटनाक्रम काफी जटिल रोग प्रतिकारकों के निर्माण का कारण बनता है, जो भविष्य में उपयोग के लिए भंडारित हो जाते हैं और यह भंडार प्रतिरक्षा को पुष्ट करता है। जब वही एंटीजेन फिर प्रवेश करता है, तो ये रोग प्रतिकारक शरीर के ऊतकों से फटकर अलग हो जाते हैं। इस प्रकार ऊतकों को पहुंची यह लगभग अतिसूक्ष्म हानि हिस्टामिन नामक पदार्थ के छोटी मात्रा में मुक्ति का कारण बनती है। यह त्वचा और श्लेष्मल झिल्ली तक पहुंचता है, जिससे प्रत्यूर्जा के विभिन्न लक्षण पैदा होते हैं।

यदि निरंतर प्रशीतित न रखी जाए तो मछली अपेक्षाकृत जल्दी खराब हो जाती है और खराब मछली को खाने से आंत में गड़बड़ हो सकती है। किसी समय इसका कारण टोमेन से विषाक्तता को समझा जाता था, जो खराब होते खाद्य पदार्थ के साथ जीवाणुओं की प्रतिक्रिया से उत्पन्न होता है। फिर भी अनेक सड़न युक्त खाद्य हानिरहित हैं, जैसे लिंबर्गर और गोर्गोजोला चीज़। यह तभी होता है, जब सड़न के साथ साथ संदूषण भी होता है, जैसे किस्टैफिलोकोकस जीवाणु के द्वारा, तो परिणाम में विषैला प्रभाव होता है। धूमायित, नमकीन और डिब्बाबंद मछली, सभी स्टैफिलोकोकस की विभिन्न प्रजातियों को जन्म दे सकती है जो एक बार

आंतों में प्रवेश कर ले तो आंत्र विषों को पैदा कर सकती हैं, जिसके परिणामस्वरूप ज्वर हो सकता है। अनेक बार जीवाणु-विषाक्तता का स्रोत विशेष रूप से सूखी बांबे डक के उपभोग में पाया गया है। जहां सीवेज (मल जल) डाला जाता है, ऐसे प्रदूषित तटीय जल से प्राप्त मछली जीवाणु की वाहक हो सकती है, जैसे सैल्मोनेला और शिगेला, जो शरीर में विष छोड़ती हैं और उपभोक्ता को काफी बीमार कर सकती हैं।

संक्रमण के दौरान क्या होता है, इसका सार उपयुक्त हो सकता है। जीवाणु में सैल्मोनेला (मांस, अंडे और प्रदूषित पानी संभावित स्रोत हैं) शिगेला (पानी, कीट-पतंग), 'विब्रियो कॉलेरा' (पानी, भोजन) और विभिन्न वाइरस शामिल हैं। अंतिम में 'एस्केरिचिया कोली' शामिल है जो गैस्ट्रोएंट्राइटिस का बहुत सामान्य कारण है, क्योंकि यह वाइरस भोजन, कपड़ों, हाथों और वयस्क मानवीय वाहकों में शरण पाता है और महीनों तक धूल में और फर्नीचर में भी डटा रहता है। एक बार यदि ये रोगोत्पादक शरीर में प्रवेश कर जाएं, तो शरीर इन आक्रांताओं को नष्ट करने के काम पर लग जाता है। लार और शरीर से निकलने वाले अन्य स्रावों में शक्तिशाली एंजाइम होते हैं, जैसे लिसोजाइम जो यह काम बहुत प्रभावशाली रूप में करता है। नाक और गले में श्लेष्मक झिल्ली जीवाणु को भीतर जाने से रोकती है। लार और आंत्रद्रवों में उपस्थित एक यौगिक लैक्टोफैरिन लोहे के लिए आतुर रहता है और जीवाणु को इस पदार्थ से वंचित करके नष्ट कर सकता है। पेट, जैसा कि हम जानते हैं हाइड्रोक्लोरिक एसिड बनाता है। यह इतना प्रभावशाली विनाशक है कि जो अवयव डिओडेनम और जेजुनम इसके पीछे पीछे पाचन नली में पहुंचते हैं, वास्तव में असंक्राम्य हो जाते हैं। आंतें शरीर का अंतिम युद्ध क्षेत्र हैं। वहां रहने वाले बहुत सूक्ष्म रेशे रोगकारकों को उनसे लड़कर बढ़ने से रोकते हैं। इस प्रक्रिया को जीवाणु-प्रतिरोध कहते हैं। इसके अतिरिक्त आंत में एक बहुत जटिल प्रतिरक्षा प्रणाली कोशिका-अवयवों और आसपास के माध्यम के बीच काम करती है।

मांस

अपना अपना स्वाद

भारत में मांसाहारी बकरे का मटन पसंद करते हैं जो कि मांस के कुल उपभोग का लगभग 40-45 प्रतिशत है। शेष में लगभग आधा आधा भेड़ का मटन और बीफ है। बीफ में लगभग दो-तिहाई भैंस से और एक तिहाई गाय से मिलता है। शूकर मांस समस्त मांस उपभोग का केवल 5 प्रतिशत है, जो पांच से छह लाख टन प्रतिवर्ष

है। इसके अतिरिक्त डेढ़ लाख टन मुर्गी का मांस भी खाया जाता है। यह प्रतिदिन प्रति व्यक्ति लगभग 3 ग्राम मांस का औसत पड़ता है। यदि यह गणना केवल मांसाहारी जनसंख्या के लिए की जाए जो कि कुल जनसंख्या का तीन-चौथाई है, तो भी आंकड़ा केवल 4 ग्राम मांस प्रतिदिन आता है। यह आश्चर्यजनक भी नहीं है क्योंकि यह एक महंगा खाद्य है। यहां तक कि संपन्न परिवार भी प्रत्येक सदस्य के लिए 50 ग्राम प्रतिदिन से अधिक दे सकने में समर्थ नहीं हैं। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद ने एक वयस्क की संतुलित मांसाहारी खुराक के लिए सावधानीपूर्वक केवल 30 ग्राम मांस प्रतिदिन का सुझाव दिया है।

पश्चिम के विपरीत, मांस की एक नगण्य मात्रा ही भारत में प्रशीतित और डिब्बाबंद की जाती है। व्यवहार में, सारा का सारा मांस ताजा काटा और खाया जाता है। बकरे-बकरियां बूचड़खानों में लाई जाती हैं, वहां पशु चिकित्सक द्वारा प्रमाणित करने के बाद या तो गर्दन के नीचे गलशिरा और फिर श्वास नली काटकर (इसे हलाल कहते हैं) या एक ही वार में सिर काटकर (इसे झटका कहते हैं) उनका वध कर देते हैं। इसके बाद जानवर का चमड़ा उतारते हैं। (यह काम बहुत तेजी से किया जाता है) अग्रभाग को चीरकर अंतड़ियां निकाल देते हैं और लोथ खुदरा बाजार में टुकड़ों में भेजने के पहले आंकड़ों पर टांग देते हैं। बूचड़खाने में जो सादी किंतु वांछनीय सुविधाएं होनी चाहिए, वे हैं अच्छी जलापूर्ति, आंतरिक अवयवों की व्यवस्था करने के लिए सरलता से धोने योग्य पत्थर की मेजें (लकड़ी की मेजों के स्थान पर), गिल्टी रोग के संक्रमण और दिन के अंत में बूचड़खाने के असंक्रमण के लिए निरीक्षकों द्वारा गर्हित बनाई गई लोथों के निपटान की व्यवस्था। विष्ठा प्रदूषण रोकने के लिए मलाशय को निकाल देने पर भी बल दिया जाता है। यह सौभाग्य की बात है कि उष्ण कटिबंध में पशुओं में तपेदिक लगभग नहीं होती और साधारण रूप से सैलमोनेला अनुपस्थित पाए गए हैं। किंतु हाथों, चाकुओं और पशु विष्ठा से कोलीफॉर्म गणनांक का ऊंचा होना सामान्य है और इससे ज्वर का प्रकोप हो सकता है। पूरी शृंखला में प्रशीतन (रेफ्रिजरेशन) तो केवल एक बिंदु है और यह हमेशा वरदान नहीं है क्योंकि यदि एक बार मांस शीत भंडार से बाहर निकल आता है तो वह बहुत तेजी से बिगड़ने लगता है।

सुविधा के कारण शहरी क्षेत्रों में प्रशीतित, प्रसाधित चिकन तेजी से लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है अलबत्ता ताजे रक्त के अभाव और संरचना में सूखेपन के कारण ताजा कटे पक्षी की अपेक्षा वह कम आकर्षक है। मुर्गी के मांस के बढ़िया स्वाद और साधारणतया ऊंची छवि के कारण पारंपरिक रूप से यह मटन की अपेक्षा महंगा है, किंतु आहार का वास्तविक खर्च समझ में आने के कारण लाभ की गणना की जाने लगी है, इसलिए आज एक किलोग्राम चिकन एक किलो मटन से सस्ता है।

सतह के नीचे

एक अनुभवी गृहिणी जानती है कि मटन खरीदते हुए उसे चटकीला लाल रंग देखना चाहिए क्योंकि मांस फीका पड़कर गुलाबी या स्लेटी हो जाता है। गोश्त आर्द्र और लोचदार दृढ़ होना चाहिए। जीवित चिकन बहुत बड़ा न हो। इसके चिह्न हैं –सूखे, पपड़ीदार पांव और जांघों पर कड़ा गोश्त। प्रशीतित अभिसाधित चिकन, जिसका भार बहुत अधिक, जैसे डेढ़ किलोग्राम के आसपास हो, वह अधिक उम्र का रेशेदार पक्षी होता है। शूकर मांस खरीदते समय देखना चाहिए कि चर्बी दृढ़ और रबर जैसी हो, ढीली नहीं।

डिब्बाबंद मांस या मछली का टिन, जिसमें सिरों पर फूलने का जरा भी संकेत हो, रद्द कर देना चाहिए। इसी प्रकार जंग या मोर्चे का चिह्न दिखाई देने पर करना चाहिए (देखिए पृष्ठ 165)। डिब्बाबंद करने के लिए कारखाने में मांस को पर्याप्त रूप से पकाया जाता है, जिससे सभी बहुसर्जक जीवाणु नष्ट हो जाएं और बीजाणु के जन्म और वृद्धि को रोकने के लिए नमक, नाइट्रेट या नाइट्रिट मिलाए जाते हैं। नाइट्रेटों से मांस को आकर्षक लाल रंग भी मिलता है। नवीन अध्ययनों से पता चला है कि नाइट्रेटों के कारण विशेष रूप से बच्चों में, रक्तचाप में गिरावट और रक्त में हीमोग्लोबिन की कमी हो सकती है, जबकि नाइट्रिट मछली, मांस और चीज़ में उपस्थित एमिनों के साथ प्रतिक्रिया करके नाइट्रोसेमिन और कार्सिनोजेनिक देते हैं। इसलिए डिब्बाबंद उत्पादों में इन यौगिकों के अनाप-शनाप उपयोग पर प्रतिबंध हैं।

उपयोग के लंबे इतिहास के बावजूद मांस और मछली जैसे धूमायित आहार संदेहास्पद बनते जा रहे हैं। आइसलैंड में रहने वाले, जहां ताजा मांस बहुत कम मिलता है, धूमायित मांस, सॉसेज और मछली का काफी बड़ी मात्रा में उपयोग करते हैं, और वहां पेट के कैंसर की घटनाएं भी अपेक्षाकृत अधिक होती हैं। आग की लपटों पर सीधे पकाया गया मांस, जैसा बारबेक्यू या भूनने में हो सकता है, सरलता से झुलस सकता है और झुलसा हुआ मांस और काठ कोयले का धुआं, दोनों में ही कार्सीनोजेन होते हैं। सींक कबाब को भूनते हुए उन्हें जलते हुए कोयलों या आग की लपटों के संपर्क से बाहर रखना उपयुक्त है।

भविष्य की ओर

हमारे देश में लगभग 3000 म्यूनिसिपल बूचड़खाने हैं जो कुल पशु वध के केवल 12 प्रतिशत का ही संचालन करते हैं। शेष केवल अनिरीक्षित वध है। न केवल बूचड़खाने अपने आप में आदर्श नहीं हैं, बल्कि उनकी गुणवत्ता और संख्या दोनों बढ़ाने की आवश्यकता है।

भविष्य में सूअर के मांस के उपयोग पर ध्यान देने की आवश्यकता है। सूअर

चीन में मांस उत्पादन के मुख्य माध्यम हैं और ये पशु हर तरह का अपशिष्ट-खेत, कचरा और यहां तक मल जल (सीवेज) अपशिष्ट भी खाते हैं। कृमि (ट्राईपैनोसोम) संक्रमण के खतरों पर आहार के माध्यम से, (जो पशु स्वयं नहीं खोजते) प्रतिरक्षण के द्वारा विजय पाई गई है।

भारत में पोल्ट्री के विकास में अच्छी नस्ल के पक्षियों के झुंडों को सघन रूप से पालने वाले फार्मों का रास्ता अपनाया गया है। ऐसे फार्मों के लिए ऊंचे पूंजी निवेश की आवश्यकता होती है। इसलिए छोटे ग्रामीण किसानों द्वारा, जिनमें से हरेक किसान कुछ पक्षियों का स्वामी हो, विकेंद्रित अंडा और पोल्ट्री उत्पादन पर विचार का अच्छा मामला है। इसमें संग्रहरण, प्रशीतन, संसाधन, परिवहन और वितरण की उसी आधुनिक प्रणाली का अनुसरण कर सकते हैं, जिसे दुग्ध-विकास में सफलतापूर्वक अपनाया गया है। प्राणिज खाद्यों को उन्नत करने की दृष्टि से पोल्ट्री सबसे कम खर्चीले खाद्य हैं। एक पक्षी जिसे प्रति वर्ष 50 किलोग्राम आहार दिया जाता है, बदले में 200 अंडे, 1.5 किलो ग्राम मांस और 25 किलोग्राम उच्च-उर्वरता-गुण युक्त उत्सर्जन देता है।

पशुओं को पालने के विपरीत, मछली-पालन में आहार के प्रत्यक्ष प्राविधान की आवश्यकता नहीं होती, किंतु तालाबों में वानस्पतिक वृद्धि के लिए पादक पोषकों की आवश्यकता होती है, जो प्रचुर मत्स्य जीवन को सहायता देते हैं। समुद्र और अंतर्देशीय झीलों, तालाबों और नदियों, दोनों स्रोतों से वर्तमान में प्रतिवर्ष लगभग 10-10 लाख टन मछली उत्पादन प्राप्त होता है। इसमें कई गुना वृद्धि संभाव्य है। ऐसे विकास के लिए परिवहन विपणन महत्वपूर्ण सहायक है।

8. भट्ठी से गरमागरम

ब्रेड, बिस्कुट और केक

ब्रेड में क्या होता है

हमने पहले अध्याय में देखा था कि गेहूं कठोर, मध्यम और नर्म हो सकता है और इस वर्गीकरण में चिपचिपा प्रोटीन ग्लुटन मुख्य भूमिका निभाता है, और बेक किए गए हर उत्पाद के लिए विशेष प्रकार के आटे की आवश्यकता रहती है, जिसकी लोई में अधिक अंशों में विकास की क्षमता तो हो किंतु फैलाव की क्षमता अधिक नहीं होनी चाहिए। यह विशेष रूप से तब आवश्यक है, जब ब्रेड बड़े कारखानों में बनाई जानी हो, जिसका कारण मशीनों से उत्पादन के लिए विस्तृत स्तर पर कार्य-व्यापार है। जब घर में, या पारिवारिक शैली की बेकरी में बनाते हैं, तो निम्न ग्लुटयुक्त नर्म आटे भी बढ़िया ब्रेड दे सकते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि लोई हाथ से मिलाकर बनाई गई हो। खमीरीकरण यीस्ट के द्वारा नहीं, बल्कि रसायनों का उपयोग करके किया गया हो और बेकिंग की पूरी प्रक्रिया का सावधानीपूर्वक पर्यवेक्षण और नियंत्रण किया गया हो।

व्यवहार में अच्छा, गेहूं का आटा एकदम सफेद होने की अपेक्षा रंग में 'क्रीमी' और स्पर्श में सूखा होगा। अंगूठे और अंगुली के बीच दबाने पर यह ढेला नहीं बनेगा और कपड़े पर से आसानी से झड़ जाएगा। आटे की गंध ताजा और मीठी होनी चाहिए। यदि आटे को गर्म पानी के साथ मिलाया जाए और उठती हुई गंध को सूंघें तो यह पहचानना सरल है। मोटे तौर पर, 100 ग्राम बढ़िया आटा 350 ग्राम की ब्रेड देता है।

ब्रेड बनाने के लिए आटे को उचित अनुपात में पानी के साथ मिलाया जाता है। ग्लुटन लचीलेपन का जाल बना देता है, जो बेकिंग के बाद गैस को पकड़े रखता है और दृढ़ किंतु स्प्रिंग संरचना बन जाता है। थोड़ा-सा नमक मिलाने से स्वाद बढ़ता है, यीस्ट की क्रिया नियंत्रित होती है और लोई का संचालन और स्थिरता बढ़ती

है। शक्कर से भी स्वाद बढ़ता है, किंतु यह मिलाए गए 'बेकर्स यीस्ट' के लिए खमीरीकरण के माध्यम के रूप में अधिक महत्वपूर्ण है। यीस्ट वास्तव में एक प्रकार की फफूंद है जो 10 घंटों में दस लाख गुना हो जाती है। ऐसा करने में यह शक्कर पर जीवित रहती है और उसे अल्कोहल, कार्बन डायऑक्साइड और पानी में परिवर्तित करती है। इसके अतिरिक्त अल्प मात्रा में सुगंधकारक पदार्थ भी देती है। एक ओर बेकिंग के लिए और दूसरी ओर अल्कोहल के आसवन के लिए विशेष प्रकार के यीस्ट चुनते हैं, जैसा कि हम अध्याय 12 में देखेंगे। कार्बन डाइऑक्साइड का निकलना ही ब्रेड को उसकी स्पंज जैसी संरचना प्रदान करता है। मिश्रण करते हुए विशेष सुघट्य बेकरी वसाएं (देखिए पृष्ठ 42) मिलाई जाती हैं जो ब्रेड की संरचना (बिस्कुट के मामले में और अधिक) में योगदान करती हैं। वसा के कणों में फंसी हवा या गैस उन्हें आकार में तब तक बड़ा होने में सहायता करती है, जब तक कि वह बेकिंग के दौरान बाहर नहीं निकल जाती। इसके साथ ही वसा आटे के कणों को आवृत्त करती है और उन्हें आपस में चिपकने से रोकती है।

कुछ अन्य पदार्थ भी अल्प मात्रा में मिश्रण के दौरान ब्रेड की लोई में मिलाए जाते हैं। कभी ब्रेड को विरंजित और सफेद करने के लिए रासायनिक कारकों का उपयोग किया जाता था, किंतु आज इसके लिए एक सामान्य उत्पाद साबुत सोयाबीन का आटा है, जिसमें एक प्राकृतिक आक्सीकारक एंजाइम है। स्वयं गेहूं के आटे में दो एमीलेस एंजाइम अल्फा और बीटा हैं। दोनों टूटकर मांड से शक्कर बन जाते हैं, किंतु बीटा, जो प्रचुरता में उपस्थित है, मांड के ऐसे कणों पर आक्रमण नहीं कर पाता जो क्षतिग्रस्त नहीं हैं, और यदि क्षतिग्रस्त मांड-कणों पर आक्रमण करता भी है तो उन्हें शर्करा-माल्टोस में परिवर्तित करने के लिए अपेक्षाकृत धीरे धीरे काम करता है। अल्फा-एमिलेस क्षतिग्रस्त मांड कणों पर अपने आक्रमण में बहुत अधिक आक्रामक है और उन्हें डेक्स्ट्रिन नामक छोटी इकाइयों में बदल देता है। यह एंजाइम गेहूं में केवल बहुत थोड़ी मात्रा में उपस्थित रहता है और आटा गूंथते समय अतिरिक्त एंजाइम मिलाना सामान्य बात है। इसे द्विस्थैतिक एंजाइम कहते हैं और पारंपरिक व्यवहार में अंकुरित जौ या अंकुरित गेहूं का आटा भी इस उद्देश्य से उपयोग किया जाता था, किंतु आज कुछ फफूंदों से अलग किए गए शक्तिशाली एंजाइम पसंद किए जाते हैं। ऐसे एंजाइमों से यह निश्चित होता है कि खमीरीकरण के लिए पर्याप्त शक्कर बन जाए (विशेषरूप से तब जबकि अतिरिक्त शक्कर का उपयोग न किया गया हो) जो कार्बन डायऑक्साइड गैस के निकलने का कारण बनती है। ब्रेड को कोमलता और आनम्यता देने के लिए पायसकारक (एमल्सीफायर) का उपयोग किया जाता है, जो सामान्यतया वसीय अम्ल के मोनोग्लिसराइड होते हैं, जैसे कि जी. एम. एस. या ग्लिसरोल मोनोस्टीअरेट (पृष्ठ 50) जिसे ट्राइग्लिसराइड के रूप में समझा जा सकता है (समस्त वसाएं अनिवार्य रूप से ट्राइग्लिसराइड हैं, जैसा कि पृष्ठ

34 पर चित्रित है), जिसमें तीन में से दो वसीय अम्ल निकाले जा चुके होते हैं। इस पर भी एक अन्य रासायनिक योग पोटेशियम ब्रोमेट बहुत ही अल्प मात्रा में मिलाते हैं। इसे आटे को उन्नत करने वाला माना जाता है, और यह ग्लुटन अणुओं के बीच अतिरिक्त प्रति-संपर्क बनाकर काम करता है, जिसके परिणामस्वरूप लोई के यांत्रिकी गुणों को लाभ मिलता है। फिर भी यह पाया गया है कि इस तरह के मिश्रण से उन्नत होने में सभी आटे सक्षम नहीं हैं।

ब्रेड की बेकिंग

पानी के साथ आटे और समस्त आवश्यक योगजों का सम्मिश्रण केवल मिलाने की क्रिया मात्र नहीं है। इसे इस प्रकार से करना चाहिए कि कार्बन डाइऑक्साइड के विकास के लिए पिंड में बहुत सारी हवा फंस जाए और ग्लुटन के जाल के पूरे विकास तथा एंजाइम क्रिया के उत्पादों के नरम होने और लोई को परिपक्व होने के लिए पर्याप्त समय देना चाहिए। बहुत अधिक मात्रा में ब्रेड के उत्पादन के लिए ये सब करने की दो विधियां हैं। छोटी बेकरियों में लोई के पूरे के पूरे पिंड में यीस्ट अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में मिलाते हैं और उसे विशेष मशीनों में थपक (जैसे चपातियां बनाते हुए हाथ से करते हैं) देते हैं, इसके बाद लोई को दो से चार घंटे तक खमीरीकरण या परिपक्वन के लिए छोड़ देते हैं। दूसरी प्रक्रिया में, जिसका उपयोग हमारी बड़ी बेकरियों द्वारा किया जाता है, लोई के एक छोटे भाग में यीस्ट और योगजों को मिलाते हैं और पिंड को लगभग 10 मिनट तक तेजी से मिलाते हैं। तथाकथित स्पंज को, जो गाढ़ेपन में काफी पतला रहता है, लोई के बड़े पिंड के साथ समान रूप से मिश्रित करते हैं। पिंड को फिर ढाई से तीन घंटों के लिए छोड़ देते हैं, जबकि खमीरीकरण की क्रिया प्रगति करती है और ग्लुटन का जाल विकसित होता है। इसके बाद तथाकथित पलट मिश्रण (नॉक बैक मिक्सिंग) करते हैं, जिसमें लोई के छोरों को बार बार अंदर की ओर मोड़ते हैं जिससे एकत्रित गैस निकल जाती है और लोई ताजा आक्सीजन के संपर्क में आती है, जिससे यीस्ट फिर से अपना काम शुरू कर सकता है।

अगले चरण में लोई के बड़े पिंड को टुकड़ों में काटते हैं, जिसमें हर टुकड़े से 400 ग्राम डबलरोटी (ब्रेड) बनती है और यह काम एक लोई विभाजक में किया जाता है। कटे टुकड़े आकार में अनियमित और चिपचिपी सतह वाले होते हैं, इसलिए उन्हें एक राउंडर में भेजा जाता है, जो उन्हें ड्रम की सतह पर घुमाकर आटा छिड़कते हुए उनकी सतहों को चिकना कर देता है, लगभग वैसे ही जैसे हाथ से चपाती के लिए गोला बनाते हुए करते हैं। यह क्रिया महत्वहीन लग सकती है, किंतु यह जो कुछ करती है वह बाद में पपड़ी के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण है। सतह, आटे के आवरण और हवा में खुले रहने, दोनों कारण से सूख जाती है और सतह पर कार्बन

डाइऑक्साइड के कोश बैठ जाते हैं और लोई पर एक मोटी परत बन जाती है। लोई के गोले अब धीरे धीरे लगभग 10 मिनट में बिना गर्म की हुई किंतु बहुत आर्द्र सुरंग से जिसे 'प्रूफर' कहते हैं, गुजरते हैं, जहां वे 'शिथिल' होती हैं और खमीरीकरण की प्रक्रिया का एक भाग चला जाता है। प्रूफिंग सुरंग के अंत पर, लोई के टुकड़े, जो चपटे किए गए गोले के रूप में होते हैं, मोल्डर या सांचे से गुजरते हैं, जहां हर टुकड़ा, एक दूसरे से एकदम निकट रखे गए अनेक बेलनों की एक श्रृंखला से गुजरकर चपटा होता है और चादर जैसा आकार ग्रहण कर लेता है। इस दौरान लोई में एकत्रित गैस निकल जाती है। हर शीट या चादर अंततः एक ढील बेलनाकार में लिपट जाती है, जिसे चरणों में दबाया जाता है। दबाने से गुंथी हुई लोई का पिंड बन जाता है जो धातु के सांचों में, जिसे पैन कहते हैं, गिरता है। यहां इसे दुबारा प्रूफिंग के लिए बहुत अधिक आर्द्रता में घंटे भर के लिए छोड़ देते हैं।

बेकिंग शुरू करने के लिए धातु के सांचे या पैन एक पट्टे पर 260 सेल्सियस के तापमान पर भट्ठी में लगभग 30 मिनट तक रखे जाते हैं, जिससे लोई 'फूल कर' अपना आकार ग्रहण करती है। यहां अनेक रुचिकर परिवर्तन होते हैं। ऊंचे तापमान पर निश्चय ही पानी निकल जाता है और बाहर निकलने में रोटी के सार भाग में बिल्कुल भी पानी नहीं होता, यद्यपि यह बाद में वातावरण से या डबलरोटी के भीतर से ही पुनर्वितरण में ग्रहण कर सकता है। पपड़ी का गहरा रंग और उसका स्वाद, प्रोटीन और शक्कर के बीच, माययार्ड भूरी रंजन प्रतिक्रिया (देखिए पृष्ठ 14) और शक्कर के जलने का परिणाम है। पपड़ी का स्वाद गौण प्रतिक्रियाओं से मिलता है और सुगंध ब्रेड के पिंड में फैल जाती है। समझा जाता है कि पपड़ी की चमक डैक्स्ट्रिन से मिलती है, जो कि आंशिक रूप से जल-अपघटित शर्कराएं हैं, जबकि इसकी कुरकुरी के बजाय रबर जैसी संरचना इस तथ्य की देन है कि मांड के जलयोजन के लिए उसमें पर्याप्त पानी नहीं है।

डबलरोटी (ब्रेड) के भीतर भी, ओवन (भट्ठी) में कई चीजें होती हैं। यीस्ट और जीवाणु बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं। इसके बाद, पिंड में जैसे जैसे तापमान बढ़ता है, मांड जिलेटिन बन जाता है, प्रोटीन जम जाते हैं और एंजाइम निष्क्रिय हो जाते हैं। जलयोजित ग्लुटन की संरचना दृढ़ हो जाती है, जो मांड को नियंत्रित करती है। कार्बन डाइऑक्साइड और जो अन्य गैसें बनी होती हैं, वे निकल जाती हैं, जिससे ब्रेड फूल जाती है और पिंड में छेद रह जाते हैं। अंतिम चरण में जब ब्रेड के भीतर तापमान 100 सेल्सियस पहुंच जाता है, पानी का एक बड़ा भाग (किंतु सारा नहीं) उड़ जाता है, और ब्रेड वास्तव में आयतन में थोड़ी सिकुड़ जाती है। वास्तव में अच्छी ब्रेड में 38 प्रतिशत पानी होता है। अंतिम चरण में ब्रेड को लगभग दो घंटों में ठंडा होने देते हैं ताकि नमी सूख न जाए और अस्वास्थ्यकर

संचालन से भी बचाया जाए। एक बार खोल लेने पर ब्रेड की नमी बनाए रखने के लिए रेफ्रिजरेटर में भी हवा बंद टिन या प्लास्टिक की थैली में सिरे को मजबूती से मोड़कर रखना चाहिए।

अच्छी ब्रेड में आयतन और आकार होना चाहिए। पपड़ी नरम हो और रंग गहरा न हो। वह आर्द्र होनी चाहिए और उसकी संरचना लचीली और समान होनी चाहिए जिसमें बीच में कोई छेद न हों। साथ में भीतरी सतहों पर विशिष्ट चमक हो, गंध ताजी हो, जिसमें खट्टेपन, या बासीपन या लसलसेपन का कोई चिह्न न हो, जो कि जीवाणु के द्वारा पैदा होने वाली सड़ने की मितली लाने वाली मीठी-सी गंध होती है। सफेद, काले या हरे रंग की फफूंद भी नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार की त्रुटियां अक्सर बेकरी में सफाई न रहने के कारण होती हैं।

बन और नान

बन भी लगभग ब्रेड के समान ही बनाते हैं, किंतु उनमें उच्च अवशोषण क्षमता युक्त अधिक महीन और मृदु आटा, अधिक पानी, 10 प्रतिशत तक शकूर (मीठे रोल के लिए इससे अधिक भी), लगभग 5 प्रतिशत दूध और समान मात्रा में ही वसा का उपयोग करते हैं। जितना यीस्ट ब्रेड बनाने में उपयोग किया जाता है, सामान्य रूप उससे दुगुना यीस्ट इसमें उपयोग करते हैं और इस सबसे बन को एक मीठा, चबाने योग्य गुण और अधिक लचीली पपड़ी मिलती है। एक बार लोई बना लेने पर उसे विभाजित करके गोले बनाते हैं, प्रूफ करके आकार देते हैं और अलग अलग बर्तनों में बेक करते हैं, वैसे ही जैसे ब्रेड को करते हैं।

भारतीय रोटी, नान बन से मिलती जुलती है किंतु उसकी संरचना कम लचीली होती है। सामान्य रूप से यह मैदे से बनाते हैं, जिमसें थोड़ी शक्कर, नमक और वसा का पुट होता है और इसमें यीस्ट या दही या दोनों में खमीर उठाते हैं। नरम लोई में खमीर उठने के लिए भीगे कपड़े से ढककर रखते हैं। फिर गोले बनाकर थोड़ी देर छोड़ देते हैं। थपककर दिल जैसा आकार देते हैं और फिर तंदूर या भट्ठी की दीवार पर लगाकर बेक कर लेते हैं। बड़े आधुनिक कारखानों में नान के व्यापक उत्पादन के प्रयत्नों में एक अपेक्षाकृत सूखा, भुरभुरा उत्पाद ही प्राप्त हुआ, जो जल्दी ही बासी पड़ जाता था, किंतु ऐसा कोई कारण नहीं है कि हाथ से बनाने की बारीकियों का मशीन पर अनुकरण करके नान का बड़े पैमाने पर उत्पादन नहीं किया जा सके।

बिस्कुट

जैसा कि हम पहले अध्याय में देख चुके हैं बिस्कुट के लिए ऐसे नरम आटे की आवश्यकता होती है जिसकी लोई में लचीलापन या प्रतिरोध तो कम हो, किंतु अत्यधिक विस्तार की क्षमता से युक्त हो। शक्तिशाली ग्लुटन लोई को फैलने से

रोकता है और इसलिए बिस्कुटों को विशेष आकारों में ढालने में रुकावट आती है। वैफर्स या पतले बिस्कुटों के लिए बहुत ही अधिक नरम गेहुंओं या कॉर्नफ्लोर (मक्की का आटा), अरारोट या आलू का आटा मिलाकर कृत्रिम रूप से कमजोर किए गए गेहूं के आटे का उपयोग करते हैं। क्रैकर्स (बिस्कुटों का एक प्रकार) के लिए थोड़े कठोर गेहूं ले सकते हैं। बिस्कुट के आटे में पानी सोखने की कम क्षमता होती है और इसलिए गेहूं के दानों को सावधानीपूर्वक पीसकर क्षतिग्रस्त मांड के कणों को कम से कम रखना चाहिए। रंग 'क्रीमी' के बजाय सफेद होना चाहिए, और आटा महीन, नर्म और ताजा होना चाहिए जो गर्म पानी के साथ मिलाने और सूंघने पर फफूंददार या बासी गंध न दे।

बिस्कुट बनाने के लिए उपयोग किए जाने वाले उपकरणों में लोई बनाने के लिए एक कुशल मिक्सर शामिल है, जो एक टोकनी के जरिए रोलरों (बेलनों) तक जाता है और पिंड को लोई की एक चादर में बदल देता है। यह चादर लंबाई और चौड़ाई में समान होनी चाहिए। इस चादर को एक या एकाधिक बार आटा छिड़क कर मोड़ते हैं और फिर बेलते हैं। उदाहरण के लिए, क्रीम क्रैकर बनाने में परतदार संरचना अपेक्षित होती है। बिस्कुट के आकारों को या तो एक घूमने वाली ठप्पा मशीन के द्वारा शीट (चादर) में से काट लेते हैं, जैसा कि मैरी बिस्कुट या क्रीम क्रैकर के लिए किया जाता है, या फिर उचित सांचों में लोई में से ही आकार देते हैं, जैसा कि जिंजरनट बनाने में उपयोग की जाने वाली नर्म लोई के लिए किया जाता है। एक अन्य विधि में, जो किनारों वाले वैफर्स बनाने में उपयोग की जाती है, **ढलुआ प्रणाली** से गुजरते हुए लोई के फीते के सही आकार के टुकड़ों को स्टील या बुने हुए तारों की एक पट्टी पर रखकर सुरंग जैसी भट्टी में 200 से 300 से. तापमान में 5 से 10 मिनट तक विभिन्न अवधियों के लिए रखते हैं, जहां से वे एक बिना गर्म की गई सुरंग में से निरंतर गुजारकर धीमे धीमे ठंडे किए जाते हैं। इसके बाद उन्हें पैक कर देते हैं। बेकिंग के दौरान बिस्कुटों में होने वाले परिवर्तन उसी क्रम में होते हैं जिनका वर्णन डबलरोटी (ब्रेड) की बेकिंग में किया गया है—आरंभिक चरण में अवयवों की घुलनशीलता और पिघलना, जिसके साथ ही गैस का विकास भी होता है, मध्य चरण में प्रोटीन का जमना, मांड का श्लेषीकरण और आर्द्रता का निष्कासन, और अंत में बिस्कुटों का अंतिम आकार, निर्माण और सतह का मध्यम भूरा रंजन।

अब पांच प्रमुख बिस्कुटों का वर्णन किया जाएगा।

सामान्य "मैरी", तकनीकी रूप से एक अल्प-मधुर, कठोर-लोई बिस्कुट है जिसमें पहले ही से नर्म आटे को कॉर्नफ्लोर आदि मिलाकर और कमजोर किए गए आटे का उपयोग करते हैं। वसा 22 प्रतिशत से कम और शक्कर 24 प्रतिशत मिलाते हैं, जबकि अपेक्षाकृत सौम्य गंध दूध, शक्कर सीरप (चाशनी) और वैनिला से उपजती

है। लोई मिश्रण के काम को लंबा करते हैं जिससे ग्लुटन पहले पूरी तरह विकसित हो जाए (सामान्य रूप से थोड़ा बेकिंग सोडा भी मिलाते हैं) और फिर टूट जाए जिससे बिस्कुट को उसकी अंतिम कोमल, भुरभुरी बनावट मिले। मिलाते समय लोई को मोड़ा तो जाता है किंतु उस पर आटा नहीं छिड़का जाता। अरारोट बिस्कुट भी इससे बहुत मिलते-जुलते हैं, जिनमें निर्बलीकरण के लिए अरारोट का आटा मिलाते हैं। वसा और शक्कर की मात्रा कम रखते हैं और लोई बहुत पतली बनाते हैं।

क्रीम क्रैकर्स भी कठोर लोई के बिस्कुट हैं, किंतु लोई में यीस्ट का उपयोग करके 3 घंटे तक खमीर उठाते हैं, और लोई को कई बार मोड़ते हैं और हर बार आटे और वसा के मिश्रण को उस पर छिड़कते हैं। चीज़ क्रैकर्स भी इसी प्रकार बनाते हैं किंतु बेकिंग से पहले उन पर हल्के से नमक छिड़कते हैं। नमकीन बिस्कुट भी ऐसे ही बनते हैं किंतु बेकिंग के बाद उन पर तेल की फुहार छिड़कते हैं और इसलिए अन्य बिस्कुटों की तुलना में वे जल्दी बासी हो जाते हैं।

जिंजरनट पारंपरिक रूप से कठोर और भुरभुरे होते हैं। जिंजर (अदरक) बिस्कुट इससे थोड़े कम किंतु इसी प्रकार के होते हैं। कठोरता शक्कर और शक्कर सीरपों की अधिक मात्रा के उपयोग से आती है और गहरा भूरा रंग अपेक्षाकृत ठंडी (कम तापमान) भट्टी में अधिक समय तक बेकिंग से मिलता है। इन बिस्कुटों में दरारों के लिए लोई को बहने देते हैं, शक्कर और सोडे से ग्लुटन को नर्म होने देते हैं और दरारें बनाने के लिए बड़े दानों वाली शक्कर का उपयोग करते हैं।

लोकप्रिय ग्लुकोस बिस्कुट में ग्लुकोस मिलाते हैं। साथ ही एंजाइम क्रिया के द्वारा शक्कर के उत्क्रमण से थोड़ा ग्लुकोस और फ्रुक्टोस भी बन जाता है। अंतिम रूप से बिस्कुट में 2 प्रतिशत ग्लुकोस और लगभग 30 प्रतिशत शक्कर होती है। चूंकि शक्कर की मात्रा अधिक रहती है इसलिए वसा कम रखी जाती है। यह सामान्य है कि लोई से एक घूमने वाले सांचे पर बिस्कुट का आकार बनाते हैं। यह धातु का ढांचा होता है जिसमें दबाए हुए बिस्कुट के आकार होते हैं जिनमें लोई को ठूंसकर भरा जाता है। ढले हुए टुकड़े रबड़ चढ़े चलित पट्टे पर रखे जाते हैं, जो उन्हें भट्टी में ले जाते हैं। अनेक तथाकथित नर्म लोई वाले बिस्कुट इसी तरह से बनते हैं।

वैफर्स के लिए अन्य बिस्कुटों के समान नर्म आटे की नहीं, बल्कि मध्यम दृढ़ता के आटे की आवश्यकता होती है, जिसे नर्म आटे में कठोर आटे का मिश्रण करके प्राप्त करते हैं। थोड़ा-सा मलाई रहित दूध पाउडर, स्वाद के लिए नमक और शक्कर, थोड़ी-सी मात्रा में वसा और बेकिंग सोडे के अतिरिक्त कोई चीज नहीं मिलाई जाती। रंध्रयुक्त भुरभुरी संरचना तब विकसित होती है, जब घोल अचानक बहुत गर्म धातु की तश्तरी के संपर्क में आता है और एकाएक भाप पैदा होकर निकल जाती है। वैफर्स के लिए क्रीम भराव 60 भाग आइसिंग शक्कर और 40 भाग वसा का सामान्य मिश्रण होता है।

केक

न्यूनतम ग्लुटन युक्त आटा केक के लिए बहुत उपयोगी होता है। उसमें चिपचिपाहट भी कम होनी चाहिए। पानी का अवशोषण कम ही होना चाहिए, जिससे मांड को हानि भी कम से कम पहुंचे और इसका अर्थ है कोमल किंतु बहुत महीन पिसाई। इसका सफेद रंग, मीठा स्वाद और गंध महत्वपूर्ण है। डबलरोटी के आटे के विपरीत केक का अच्छा आटा अंगूठे और अंगुली के बीच दबाने पर एक स्थिर पिंड बन जाएगा और इसे चादर से आसानी से झाड़ा भी नहीं जा सकता।

अच्छा केक बनाने के लिए वसा का विशेष महत्व है। सामान्यतया बेकरी वसा नाम की विशेष प्रकार की उद्‌जन युक्त वसाएं उपयोग की जाती हैं। महत्वपूर्ण यह है कि वे मलाई जैसी गाढ़ी होनी चाहिए, और काफी हवा (वसा की परिरक्षण क्षमता उन्नत करने के लिए कभी कभी नाइट्रोजन) उसमें फंसी रहे तथा वसा कण स्वयं भी बहुत महीन हों। बेकिंग में वसा की गोलियों में उपस्थित गैस फैलकर निकल जाती है और केक को एक हल्की फूली-फूली संरचना देती है। वसा आटे के कणों को भी आवृत्त करती है और उन्हें कठोर ग्लुटन जाल का निर्माण करने से रोकती है, जिससे भी केक में हल्कापन आता है।

स्पंज केक में जितना आटा उतनी शक्कर और 70 प्रतिशत तक मलाई जैसी वसा का उपयोग करते हैं। वसा और शक्कर को एक साथ मिलाकर मलाई जैसा बनाते हैं, और कभी कभी उसमें अतिरिक्त पायसकारक भी मिलाते हैं। अंडे अलग से फेंटते हैं और फिर दोनों को मिलाते हैं। इसके बाद, अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में बेकिंग सोडे के साथ आटे को हल्के हल्के वसा-शक्कर-अंडे के मिश्रण में पानी के साथ मिलाते हैं, जिससे कि एक नर्म, हल्का गाढ़ापन प्राप्त हो। इस स्पंज को चिकनाई लगे और आटा बुरके हुए सांचों में 190 से. पर 25 मिनट तक बेक करते हैं और गर्म गर्म ही निकाल लेते हैं। स्विस रोल भी ऐसे ही बनते हैं और इनमें स्पंज केक की अपेक्षा अधिक अंडे उपयोग करते हैं, जो उनके पीले रंग का कारण है।

पेस्ट्री

दो प्रकार की पेस्ट्री पर विचार करें। पैटी अनेक परतों वाला उत्पाद है जिसमें बहुत पतली लोई की परत और मलाई जैसी वसा की परत एक दूसरे के ऊपर (एकांतर रूप में) रहती है। इसमें वसा उत्पाद का 60 प्रतिशत होती हैं। आरंभ में आटे को गूंथने में वसा का केवल एक भाग काम में लिया जाता है। गूंथकर आटे को एक नम कपड़े में लपेटकर 10 मिनट तक रख देते हैं और फिर उसे बेल लेते हैं। बाहर के दोनों भागों पर वसा का लेप करके उन्हें अंदर की ओर मोड़ देते हैं और उसे फिर से बेलकर चपटा कर देते हैं। यह कई बार, बेलने के बीच थोड़ा रुक

रुक कर करते हैं। इसके बाद उसे बेकिंग के लिए आयताकार टुकड़ों में काटते हैं ओवन (भट्ठी) में, आरंभिक बेकिंग के दौरान उपस्थित नमी फैलती है और वसा-लोई की परतों में फंस जाती है, जिससे वे अलग अलग हो जाती हैं और ढेर लग जाता है। बेकिंग के बाद वाले चरण में लोई की संरचना स्थिर होती है और परतें कड़क और खस्ता हो जाती हैं। पैटी में पकाई हुई सब्जियां, मांस या चिकन या जैम भर सकते हैं।

पाई क्रस्ट (इसे कचौरी की पपड़ी कह सकते हैं), जिसमें फलों (सेब, अनन्नास, जैम) मैरिंज (अंडे की सफेदी और शक्कर को मिलाकर बेक की गई वस्तु भरी जाती है, उसे ''शार्ट क्रस्ट पैस्ट्री'' कहते हैं। ये पपड़ियां संरचना में कोमल, किंतु कठोर और मजबूत होनी चाहिए। यह निश्चित रूप से कठोर आटे, उससे आधे वजन की वसा, अंडे, शक्कर और न्यूनतम ठंडे पानी का मिश्रण होना चाहिए। बेकिंग के पहले कम से कम सम्मिश्रण करते हैं, क्योंकि मिश्रण से ग्लुटन कठोर हो जाता है जिससे पपड़ी और भी अधिक कड़क मिलती है। अन्यत्र ''टार्ट'' और ''फ्रूट पाइ'' बहुत लोकप्रिय हैं।

बेकिंग में पोषकों की हानि

पहले अध्याय में गेहूं और उसके उत्पादों में विटामिनों और खनिजों के स्तर की रूपरेखा और पोषकों से आटे की पुष्टि का उल्लेख किया गया था। संयुक्त राज्य अमेरिका में, आटे और उससे बनी डबलरोटी में आवश्यक पोषकों के स्तर निर्धारित हैं, जिससे यह पता लगता है कि आटे के विटामिनों का लगभग दो-तिहाई बेकिंग की प्रक्रिया के बाद भी डबलरोटी में बना रहता है। बिस्कुटों में व्यावहारिक रूप से हर चीज नष्ट हो जाती है। निश्चय ही, दोनों में कैल्शियम और लोहा तो रहता ही है। टोस्ट की एक 'स्लाइस' या सादा केक या डबलरोटी की दो स्लाइसें (टुकड़े) या एक कप कॉर्नफ्लेक, हरेक का वजन लगभग 25 ग्राम होगा जिससे 100 कैलोरी, 2 ग्राम प्रोटीन, 5 मिलीग्राम कैल्शियम और 0.3 मिलीग्राम लोहा और साथ में 50 माइक्रोग्राम थायमिन, इतना ही रिबोफ्लेविन और 500 माइक्रोग्राम नायसिन मिलता है।

फिर भी बेकिंग के दौरान, विशेष रूप से यदि ग्लुकोस या उत्क्रमित शर्करा मिश्रण (सुकरोस से) जैसी घटती हुई शर्कराएं उपस्थित हों, तो प्रोटीन की गुणवत्ता को नुकसान पहुंचता है। प्रोटीन में विद्यमान एक महत्वपूर्ण एमिनो एसिड लायसिन के साथ इन शर्कराओं के बंधने से ऐसा होता है। लायसिन एक प्रतिघातक एमिनो समूह है। इसके और शक्कर के बीच माययार्ड प्रतिक्रिया होती है और कुल मिलाकर प्रोटीन की गुणवत्ता घट जाती है। इस प्रकार ग्लुकोस बिस्कुट में प्रोटीन की गुणवत्ता गेहूं के आटे या चपाती में उपस्थित प्रोटीन की गुणवत्ता से आधी भी नहीं रहती।

9. भारतीय रुचि

अचार, चटनियां, सॉस और पापड़

सड़न पर रोक

हर कोई जानता है कि सब्जियां और फल कितने जल्दी खराब हो जाते हैं। बैंगन या टमाटर या आम को कुछ दिन के लिए अलग रख दीजिए तो वह पिलपिला हो जाएगा और बदबू देने लगेगा। सड़ांधकारक जीवाणु और फफूंद उन कच्चे उत्पादों में पनपते हैं जिनमें काफी पानी (अधिकांश फलों और सब्जियों में 80 प्रतिशत या इससे भी अधिक) और कुछ ऐसे प्रोटीन और शर्कराएं होती हैं जिनमें खमीर पैदा हो सकता है और जो बहुत अधिक अम्लीय नहीं होते। यीस्ट तो अम्लीय स्थितियों में भी पनप सकता है, इसीलिए तेल युक्त अचारों में कभी कभी एक सतही फफूंद विकसित हो जाती है, विशेषकर तब, जब वे सूख जाते हैं और अल्कोहल की-सी गंध देने लगते हैं।

संरक्षण के विभिन्न रूप इन्हीं त्रुटियों पर विजय पाने के प्रयत्न हैं। फलों और सब्जियों को केवल धोने से ही उनकी सतह पर जमे जीवाणु धुल जाते हैं। नमक रसाकर्षण क्रिया द्वारा स्वयं कोषों में प्रवेश कर लेता है। यहां वह उन जीवाणुओं को बढ़ने से रोकता है, जो कोशों की दीवारें तोड़कर नर्म पड़ने और बिगड़ने का कारण बनने वाले एंजाइम पैदा करते हैं। इसके साथ ही, यदि नमक के स्तर को धीमे धीमे बढ़ने दें तो ऐसे कुछ जीवाणु बढ़ सकते हैं जो लैक्टिक एसिड बनाते हैं। लैक्टिक एसिड बहुत अच्छा संरक्षक है जिसके एक निश्चित मात्रा में बन जाने के बाद जीवाणु जीवित नहीं रह सकते और नष्ट हो जाते हैं। थोड़ी देर के लिए गर्म करना निश्चित रूप से विकृति पैदा करने वाले जीवों के लिए उत्तम मारक है, वास्तव में गर्म करने के बाद भी बचे रहने वाले जीवाणु वे हैं, जो बीजाणुओं के रूप में रहते हैं। विनेगर या सिरका एक अन्य संरक्षक है। यह 4 से 5 प्रतिशत एसेटिक एसिड है और यह स्वयं उन सब्जियों को संरक्षित रखता है जिन्हें सुखाकर

लवणयुक्त कर दिया गया हो। यह तब और अधिक उपयोगी है जब शक्कर भी उपस्थित हो। इस तरह यह त्रिमुखी संरक्षण क्रिया बन जाती है। अनेक मसाले भी, जो अचारों को स्वाद देते हैं, जीवाणु-वृद्धि को रोकते हैं, जबकि वे उपचयन विरोधी के रूप में काम करके विद्यमान तेल को बासी होने से रोकते हैं।

कुछ सादे सिद्धांत भी यहां काम करते हैं। सादे नमकीन अचारों में विद्यमान पानी में नमक का कम से कम 12 प्रतिशत सांद्रण संरक्षण के लिए आवश्यक है। नमक और तेल वाले अचारों में भी यही स्तर (हमेशा पानी की मात्रा पर गणना की जाती है) आवश्यक है, तेल सब्जी के टुकड़ों पर लिपटकर काम करता है और इस तरह उन तक हवा पहुंचने से रोकता है, जो उन्हें बिगाड़ सकती है। इसे वैज्ञानिक वात-निरपेक्षता या "वातानुकूलन-नहीं" कहते हैं। सिरका वाले अचारों और चटनियों में भी, पानी का स्तर निर्धारित करता है कि संरक्षण के लिए कितना एसेटिक एसिड आवश्यक है। यह विद्यमान पानी को 100 से विभाजित करके भागफल का 3.6 गुना होना चाहिए। अचार की सामग्री में उपस्थित विभिन्न कार्बनिक एसिड, जैसे कच्चे आमों में साइट्रिक और मैलिक एसिड, नींबू में साइट्रिक एसिड और आंवलों में एस्कॉर्बिक एसिड, एसिड के स्तर में योगदान करते हैं। एक खट्टे यूरोपीय व्यंजन सावरक्रॉट में पत्ता गोभी के कटे हुए टुकड़ों में ठीक 2.5 प्रतिशत नमक मिलाने के बाद 3 से 6 हफ्तों तक खमीर उठाया जाता है, यह विद्यमान पानी के साथ मिल कर 10 प्रतिशत लवण-जल घोल देता है, जिसमें लैक्टिक एसिड के जीव बढ़ते हैं। जब तक सांद्रण को 15 प्रतिशत बढ़ाने के लिए और नमक मिलाते हैं, तब तक सारे अवांछित जीव नष्ट हो जाते हैं और अम्लीय स्थिति में बढ़ने की क्षमता रखने वाले अन्य अनुकूल जीव खमीरीकरण को पूरा कर देते हैं।

यदि संरक्षण के लिए केवल शक्कर का उपयोग किया जाए, तो इसे 68.5 प्रतिशत तक ऊंची मात्रा में रखना पड़ता है। यदि नमक या सिरका या दोनों उपस्थित हैं तो शक्कर की मात्रा कम की जा सकती है। इस प्रकार यदि 4 से 6 प्रतिशत नमक उपस्थित है (जो कि सामान्य है) तो एसेटिक एसिड 1.5 प्रतिशत, तो 30 से 40 प्रतिशत शक्कर भी विकृति से संरक्षण प्रदान करेगी। हल्दी पाउडर, सरसों के दाने या तेल, अदरक और लहसुन जैसे मसाले स्वाद के अतिरिक्त, संरक्षण के लिए आवश्यक नमक की मात्रा को आधे तक भी कम करने में सहायता करते हैं और इस तरह कम नमकीन स्वाद की सुविधा देते हैं।

खाद्य पदार्थों को संरक्षित रखने के लिए साधारण रूप से तीन रासायनिक संरक्षकों का उपयोग करते हैं। पहला सल्फर डाइऑक्साइड है और विशेष रूप से फलों को एक बंद पात्र में प्रायः जलते हुए सल्फर का धुआं देते हैं। अचारों में, सुविधा की दृष्टि से पोटेशियम मैटाबाइसल्फाइट या के एम. एस. का उपयोग करते हैं और अम्लीय स्थिति से सल्फर डाइऑक्साइड निकलता है जो फफूंद से बीजाणुओं

और सिरका बनाने वाले जीवाणुओं के लिए विशेष रूप से विषाक्त है। बेंजोइक एसिड विशेष रूप से यीस्ट के लिए मारक है, किंतु अपेक्षाकृत अघुलनशील होने के कारण यह जैम, स्क्वेश और अन्य मीठे उत्पादों में अपने घुलनशील लवण सोडियम बेंजोइट के रूप में उपयोग किया जाता है। सॉर्बिक एसिड भी अपने सोडियम लवण के रूप में उपयोग किया जाता है। यह विशेष रूप से डिब्बाबंद चीज, मांस और खमीरीकृत खाद्यों में फफूंद की वृद्धि को रोकता है। इन रसायनों की प्रति दस लाख में केवल 50 से 200 भाग तक की बहुत छोटी-सी मात्रा भी यीस्ट और फफूंद की वृद्धि रोकने में शक्तिपूर्वक काम करती है।

व्यवहार में संरक्षण

आइए, आगे हम देखें कि ये सामान्य सिद्धांत तालिका 9.1 में दर्शाए गए चार अचारों और एक मुरब्बे के वास्तविक नुस्खों में किस प्रकार प्रतिबिंबित होते हैं। नींबू के नमकीन अचार में, सतह पर उपस्थित जीवाणु धो देने के बाद, परासरणी विस्थापन द्वारा पानी निकाल देते हैं। खमीर कारक एसिडों के विकास के बिना ही संरक्षक के रूप में नमक पर्याप्त मात्रा में फलों में प्रवेश करता है। नींबू संरचना में नरम और दिखावे में पारभासी हो जाते हैं। यही सिद्धांत छोटे सफेद छिलके वाले प्याजों में भी काम में लाते हैं, जिन्हें एक दिन के लिए 12.5 प्रतिशत नमक के घोल में रखते हैं, और उसके बाद कांच की बोतल में ठंडे सिरके में डालते हैं। सामान्य रूप से सिरके में पहले कई दिनों तक सूखी लाल मिर्च, मिर्च के दाने, लौंग, इलायची, दालचीनी, हरा धनिया, व लौंग्स इत्यादि भिगोकर उसे उपयुक्त रूप से मसालेदार बना लेते हैं। इस तरह डाला गया प्याज का अचार 6 से 8 महीनों तक रहता है। पश्चिमी देशों में ऐसे नमक-निर्जलीकृत सिरके में भिगोई चीजों को अचार कहा जाता है, किंतु भारत में इस शब्द का, उत्तर में अचार और दक्षिण में उरुगा का अर्थ भिन्न है, जिसमें मिर्चों का उपयोग भी निहित है।

दूसरे उदाहरण आंध्र प्रदेश के अवक्काई आम के अचार में इसका अच्छा प्रतिपादन होता है। यहां, नमी कम करने के लिए नमक-परासरण के स्थान पर धूप में सुखाते हैं। यह एक ऐसी सुविधा है जो अधिकांश भारत में उपलब्ध है। मसालों की अधिकता के कारण आवश्यक नमक की मात्रा घट जाती है और इसमें उपयोग किया जाने वाला तिल का तेल अपनी संरक्षक गुणवत्ता के लिए विख्यात है, जिसे मसाले और बढ़ा देते हैं। उत्तरी और पूर्वी भारत में सरसों का तेल, जो इसी प्रकार स्थिर है और चटकीला तीखापन लिए होता है, तेल वाले अचार बनाने के लिए पसंद किया जाता है। ऐसे अचार को कसौंदी कहते हैं। कुछ हफ्तों की परिपक्वता स्वाद को विशेष रूप से बढ़ा देती है। भारत में शुद्ध तेल वाले अचार सामान्य हैं और बहुत बड़ी संख्या में सब्जियों और फलों के अतिरिक्त मांस और मछली को

भी इस प्रकार साल भर से भी अधिक समय तक संरक्षित रखते हैं।

अवक्काई आम का अचार बनाने में किसी प्रकार के गर्म करने की आवश्यकता नहीं होती, किंतु बैंगन के सिरके वाले अचार के नुस्खे में निर्जीवाणुता के लिए सभी उपादानों को अच्छी तरह पकाना होता है, इसके साथ ही सिरके के अपेक्षाकृत अधिक उपयोग से नमक की मात्रा संरक्षक की अपेक्षा केवल स्वाद के स्तर तक घट जाती है। यदि उपलब्ध हो तो केवल 5 सीसी एसेटिक एसिड, नुस्खे में उपयोग किए जाने वाले 100 सीसी सिरके का लाभदायक स्थानापन्न हो सकता है।

गुजरात के आम के छूंदे के नुस्खे में शक्कर भी उपयोग में लाई जाती है। यही नहीं, खड़ा नमक (और हल्दी) का उपयोग करके कैरी की पट्टियों का रात भर निर्जलीकरण होने देते हैं और पानी निचोड़कर निकाल देते हैं। भारत में इस तरह नमकीन बनाने की प्रक्रिया सामान्य है। नमकीन पदार्थ स्वाद के लिए ज्यों का त्यों भी, या वर्तमान उदाहरण में पूरा तैयार करने के बाद भी, उपयोग किया जाता है। छूंदा में शक्कर का स्तर साधारण होता है किंतु उबालने के दौरान फल में पूरी तरह व्याप्त हो जाती है। छूंदा तैयार करने में उपयोग की जाने वाली अन्य सामग्री में मीठे नींबू, नींबू के छिलके और आंवला शामिल हैं।

अंतिम नुस्खा मुरब्बे के लिए है। मुरब्बा अरबी शब्द है जिसका अर्थ है संरक्षित या निर्जलीकृत और उसमें बड़ी मात्रा में शक्कर एक मात्रा संरक्षक है। कड़ा और सुरक्षित दोनों रखने के लिए फल में फिटकरी भर देते हैं और ताजा फल में उपस्थित पानी को शक्कर की चाशनी द्वारा और बाद में गाढ़ा बनाने के लिए उबालते समय निकाल देते हैं। किसी समय इस काम के लिए शहद का उपयोग करते थे, परंतु वह महंगा पड़ता है। आंवले का ताजा फल विटामिन सी या एसॉर्बिक एसिड का सबसे समृद्ध ज्ञात स्रोत है, जो हर 100 ग्राम फल में 750 मिलिग्राम होता है। मुरब्बे में इसका दो-तिहाई बना रहता है और आंवले में केवल नमक मिलाने से भी जैसा कि पहले नींबू के नुस्खे में बताया गया है, आधे विटामिन बचे रहते हैं, जिनमें दोनों उत्पादों को भंडारित करने पर आगे और कमी आती है। इस प्रकार ये संरक्षित उत्पाद विटामिन सी युक्त ताजा फलों के लिए स्थानापन्न के रूप में उत्तम पोषक महत्व रखते हैं। समझा जाता है कि अदरक का मुरब्बा गैस-निर्माण और छाती के संकुलन में राहत देता है, इसके साथ ही वह अत्यंत स्वादिष्ट भी होता है। अन्य अनेक कठोर चीजें भी मुरब्बा बनाने के काम आती हैं। अधपका पपीता, कटहल, परिपक्व पेठा और कद्दू, चुकंदर, गाजर, खजूर और किशमिश वास्तव में ये उत्पाद उन परिरक्षित फलों से प्रकार में मिलते जुलते हैं जिन पर हम अगले अध्याय में विचार करेंगे

तालिका 9.1

कुछ पारंपरिक अचार और मुरब्बे

1. **नमक में नींबू का अचार**

पूरे पके नींबू 50
नमक (चूर्ण) 500 ग्राम

(क) नींबू को अच्छी तरह धोकर कपड़े से पोंछकर सुखा लीजिए।
(ख) हर नींबू को चार भागों में काटिए
(ग) नमक डालकर हाथ से अच्छी तरह मिला लीजिए और छेददार तश्तरी पर रखिए, क्योंकि 3 दिनों तक काफी मात्रा में रस बाहर निकलेगा।
(घ) रस को छोड़ दीजिए। टुकड़ों को एक अवशोषी कपड़े पर रखकर धूप में अच्छी तरह सुखा लीजिए।
(च) कांच या चमकीली बर्नी में रखिए, दो महीने तक रहने दीजिए, किंतु इसके पहले भी अचार तैयार हो सकता है।

2. **तेल में अवक्काई आम का अचार**

आम (कच्चे, मध्यम आकार के बहुत खट्टे, रेशेदार किस्म के) 25

मिर्च का पाउडर	750 ग्राम
नमक	750 ग्राम
सरसों दाना	450 ग्राम
हल्दी पाउडर	200 ग्राम
जीरा	100 ग्राम
कच्चा मेथी दाना	40 ग्राम
काबुली चना	100 ग्राम
तिल का तेल	900 सीसी

(क) आमों को अच्छी तरह धो लीजिए, कपड़े से पोंछकर सुखा लीजिए। गुठली सहित लंबाई में दो टुकड़े कर दीजिए हर टुकड़े को 12 से 15 टुकड़ों में काट लीजिए। पूरी तरह सूखने के लिए दो घंटों तक धूप में फैला दीजिए।
(ख) सरसों के दाने धूप में सुखा दीजिए। फिर कूटकर चूर्ण बना लीजिए।
(ग) सभी ठोस उपादानों को मिला लीजिए फिर तेल के साथ पीसकर एक चिकनी लेई बना लीजिए।
(घ) आम के टुकड़ों को, हर बार थोड़े थोड़े लेई से लपेट दीजिए और एक

सूखी, कांच की बर्नी में भर दीजिए। इतना तेल डालिए कि ऊपर तेल की एक सेंटीमीटर (आधा इंच) की परत बन जाए।

(च) बर्नी के मुंह पर एक साफ कपड़ा बांधकर अलग रख दीजिए। तीन दिन बाद सारी सामग्री को हिला दीजिए। इसे तीन या चार बार दुहरा दीजिए।

(छ) उपयोग के लिए थोड़ी थोड़ी मात्रा में निकालिए।

3. बैंगन का सिरके वाला अचार

बैंगन	1½ कि.ग्रा.
सरसों का तेल	500 सीसी
मेथी	20 ग्राम
जीरा	10 ग्राम
सरसों के दाने	20 ग्राम
करी पत्ता	6
लहसुन (पिसी हुई)	100 ग्राम
हल्दी पाउडर	30 ग्राम
मिर्च पाउडर	60 ग्राम
सिरका	1000 सीसी
नमक	30 ग्राम
हरी अदरक, बारीक कटी	15 ग्राम
हरी मिर्चे चीरी हुई	50 ग्राम

(क) हर बैंगन के चार टुकड़े कर लीजिए परंतु उन्हें अलग मत कीजिए।

(ख) एक बर्तन में तेल गर्म कीजिए। मेथी जीरा, सरसों के दाने और करी पत्ता मिलाइए। फिर पिसी लहसुन डालिए और जब वह लाल होने लगे, हरी अदरक, हल्दी पाउडर और मिर्च पाउडर मिला कर 3 मिनट तक गरम होने दीजिए।

(ग) सिरका और नमक डाल कर अच्छी तरह मिलाइए।

(घ) इसके बाद बैंगन, अदरक के टुकड़े और हरी मिर्चे मिलाइए, और 20 मिनट तक हिलाते हुए आंच पर पकाइए।

(च) ठंडा करके बोतल में भर दीजिए।

4. आम का छूंदा

कच्चे आम	1 कि.ग्रा.
हल्दी पाउडर	50 ग्राम
नमक	स्वादानुसार
शक्कर	500 ग्राम

(क) आमों को छीलकर लंबे लंबे लच्छे काट लीजिए।

(ख) लच्छों को नमक और हल्दी के साथ मिलाइए। रात भर अलग

जीरा (पिसा हुआ)	20 ग्राम
मिर्च पाउडर	20 ग्राम
किशमिश	(वैकल्पिक)
बादाम के लच्छे	वैकल्पिक
सोडियम मैटाबाइसल्फाइट	80 मि. ग्राम या 1/50 चाय का चम्मच

रख दीजिए। पानी निचोड़ दीजिए।

(ग) शक्कर को 3 कप पानी में घोलकर धीमी आंच पर हिलाते हुए एक तार की चाशनी बना लीजिए।

(घ) आमों को डालिए और नर्म होने तक पकाइए।

(च) जीरा और मिर्च पाउडर मिलाइए, स्वाद के अनुसार नमक मिलाइए। आग पर से उतार लीजिए, सोडियम बैंजोइट डालकर अच्छी तरह मिला दीजिए।

(छ) बोतल में डालकर ठंडा होने दीजिए। यह 9 महीनों तक रहेगा।

5. आंवला मुरब्बा

आंवला (नेल्लिक्काइ)	1 कि.ग्रा.
फिटकरी	1 ग्राम
शक्कर	2 कि.ग्रा.
केशर का एसेंस (वैकल्पिक)	कुछ बूंदें

(क) एक तेज मोटी सूई से आंवले के हर फल को छेद दीजिए।

(ख) फिटकरी को पानी में घोल लीजिए और उसमें फलों को एक घंटे एक भीगने दीजिए। फलों को निकाल लीजिए और पानी से धो लीजिए।

(ग) फलों को नर्म होने तक पानी में उबाल लीजिए। ठंडा करके पानी बहा दीजिए।

(घ) एक लिटर पानी में शक्कर को घोलकर धीमी आंच पर पकाइए, जिससे कड़क दो तार की चाशनी मिले।

(च) फलों को डालकर, धीमी आंच पर दो तार की चाशनी बनने तक गाढ़ा कीजिए।

(छ) ठंडा कीजिए, एसेंस मिलाइए। यह छह महीने तक रहेगा।

चटनियां

हिन्दी शब्द चटनी ही अंग्रेजी चटनी का उद्गम है, फिर भी इसमें भारतीय-अभारतीय का अंतर है। एक अंग्रेजी लेखक इसका भावपूर्ण वर्णन करते हुए कहता है : "चटनी एक ऐसा व्यंजन है जो तीखा, मसालेदार, मीठा और खट्टा है, यह जैली से अधिक दृढ़, अचार की अपेक्षा कम खट्टा, जैम से कम मीठा, तीखा और मिर्च युक्त जिसमें अदरक आवश्यक उपादान के रूप में शामिल होता है। यह सौम्य और सालन युक्त दोनों प्रकार के आहारों के साथ स्वादिष्ट लगता है। वास्तव में, चटनी, जिसे उपनिवेशवादी भारत में पसंद करने लगा था और जिसे वह अपने साथ अपने देश लेकर गया, वह एक अधिक मीठे छूंदे के अतिरिक्त कुछ नहीं थी, जिसमें लगभग दो गुनी शक्कर, किशमिश, खूबानी, शक्कर में पगे फलों के छिलके और द्राक्षा मिलाई गई थी। इस प्रकार की, बोतल में सीलबंद चटनियां अब भारत में भी बनाई और बेची जाती हैं।

हम में से अधिकांश लोगों के लिए चटनी से आशय है ताजा-ताजा पीसकर बनाया गया उत्पाद, जिसे ताजा ही खाया जाता है। नारियल की चटनी इडली और डोसा के साथ खाई जाती है, तो तिल की चटनी गेहूं या चावल की चपाती के साथ। दही पर आधारित रायता और पचड़ी सब्जी या गोश्त बिरयानी के साथ चलता है। कचूम्बर (कचूमर) कटे हुए कच्चे उपादानों का मिश्रण है जिसे भारतीय सलाद कह सकते हैं। ऐसे व्यंजन अदरक, लहसुन, पुदीना, ककड़ी (खीरा) हरे आम, अंकुरित और भीगी दालें, विभिन्न सरस फलों, खजूर और किशमिश से बनाते हैं। इनका अभी तक व्यावसायीकरण नहीं हुआ है जिससे ये संसाधित आहार की श्रेणी में गिने जा सकें।

व्यापक स्तर पर उत्पादन

व्यावसायिक उत्पादन घरेलू चलन का ही विस्तार है जिसमें मानदंडों का अनुकूलन किया जाता है। उदाहरण के लिए हम आम की मीठी चटनी को चुनें। पूरी तरह से बड़े, किंतु कच्चे आमों को बहते पानी की धारा में धोते हैं, हाथ से छीलते हैं, टुकड़े करके गुठली निकाल देते हैं। बहुत बड़ी मात्रा में छीलने और टुकड़े करने के लिए मशीनों का भी उपयोग कर सकते हैं। टुकड़ों को लकड़ी के पीपे में 10 प्रतिशत लवण घोल में जिसमें के एम. एस. या सोडियम मैटाबाइसल्फाइड 225 पी पी एम की मात्रा में (सल्फर डाइऑक्साइड के 200 पी. पी. एम. के बराबर) हो, एक दिन के लिए भिगोते हैं। फिर लवण जल को निथार देते हैं और उसके स्थान पर के एम एस की उतनी ही मात्रा युक्त 5 प्रतिशत लवण जल डाल देते हैं। लवण जल में भीगे टुकड़े 4 से 6 महीनों तक रखे जा सकते है, जिससे कि आम जैसा मौसमी फल भी पूरे साल भर संरक्षण के लिए उपलब्ध रहता है।

आवश्यकता पड़ने पर, आम के टुकड़े पीपे में से निकाल उनमें से नमक हटाने के लिए सादे पानी में कुछ घंटों तक भिगोए रखते हैं। फिर हल्के एसेटिक एसिड में कुछ घंटों तक फिर से भिगोकर घोल को निथारकर निकाल देते हैं। टुकड़ों को मसालों के साथ मिलाकर शक्कर के घोल में उबालते हैं, जिसके बाद सिरका या एसेटिक एसिड डालते हैं और कुछ मिनटों तक पकने देते हैं। उत्पाद को पीपों में परिपक्व करते हैं और बोतलों में सीलबंद करने के पहले अम्लता और शक्कर का समन्वय कर लेते हैं। बोतल में भरने का काम ठंडा होने पर करते हैं। बोतलें बिल्कुल साफ और सूखी होनी चाहिए जिन्हें ऊपर शीर्ष तक भरते हैं। धातु के चूड़ीदार ढक्कन, उपयुक्त तामचीनी या रोगन युक्त होने चाहिए जिससे उनमें मोर्चा न लगे। ढक्कन में नीचे (अंदर) लगी कॉर्क की गोल चकत्ती में टैनिन होता है जो अचार में उपस्थित लोह के साथ क्रिया करके उसे काला रंग देगा, अतः कॉर्क के नीचे प्लास्टिक की पतली गोल चकत्ती, या प्लास्टिक का चूड़ीदार ढक्कन भी आजकल सामान्य उपयोग में है।

बोतलों में उच्च-अम्ल युक्त अचारों को साधारणतया पैकेजिंग के बाद निर्जीवाणुकृत नहीं करते, किंतु एसेटिक एसिड की मात्रा यदि एक प्रतिशत से कम है, तो हवा निकालने के लिए बोतलों में गर्म अचार भर के ढक्कन लगा देते हैं, और थोड़े दबाव के अंतर्गत उबलते पानी में एक साथ कई बोतलों को जीवाणु रहित करते हैं। भाग्यवश बहुत से अचार घर में बोतल खोलने के बाद विकृतिकारक रोगाणुओं से सरलता से पुनर्प्रभावित नहीं होते। आम के टुकड़ों का लवण-जल से अधूरा संसाधन जीवित यीस्ट छोड़ सकता है, जिन्हें नष्ट करना जीवाणुओं को नष्ट करने की अपेक्षा अधिक कठिन है, और ये बाद में बोतल में खमीर उठा सकते हैं। यदि द्रव भाग में एसेटिक एसिड का सांद्रण 3.6 प्रतिशत से कम हो, तो भी खमीर उठ सकता है। एक बार यह शुरू हो जाए तो फिर अचार को फेंक देने के अलावा और कुछ नहीं किया जा सकता। यदि यीस्ट भी, अक्सर द्रव से बाहर निकले टुकड़ों पर, एक पीताभ परत के रूप में बढ़ना शुरू हो जाए, तब भी कुछ नहीं किया जा सकता। अचारों पर फफूंद शायद ही लगती है।

डिब्बों और पैकेटों में सब्जियां

मटर के संसाधन से उदाहरण मिलता है कि कैसे एक मौसमी खाद्य पूरे साल भर के लिए और कितने विविध रूपों में उपयोग के लिए उपलब्ध कराया जा सकता है। फलियों से मटर के दाने निकालकर उन्हें स्टेनलैस स्टील की पिन (लोहे की पिन से वे बाद में काले पड़ सकते हैं) से छेद करते हैं। मटर के दानों को मलमल के थैलों में रखकर तीन से चार मिनट तक उबलते पानी में भिगोते हैं, जिसमें तीन प्रकार के लवण होते हैं। एक तो है संरक्षक, 0.5 प्रतिशत पोटेशियम बाइसल्फाइट,

दूसरा है 0.1 प्रतिशत मैगनेशियम ऑक्साइड जो मटर को डिब्बाबंद करने के बाद भी कड़क रखता है, और तीसरा है 0.1 प्रतिशत सोडियम बाइकार्बोनेट जो मटर का आकर्षक हरा रंग बनाए रखने में सहायता करता है। विवर्ण करने की क्रिया के स्वयं कई उद्देश्य हैं। एक तो यह कि मटर की सतह पर की गंदगी साफ हो जाती है, त्वचा पर से कुछ तिक्त और संकोचक तत्वों के निकल जाने से स्वाद उन्नत होता है, जबकि इसके ढीला होने और कड़ा होने से बाद में डिब्बे में सघन पैकिंग में सहायता मिलती है। विकृति और विवर्णता के कारक एंजाइम नष्ट हो जाते हैं और ऑक्सीजन जैसी गैसें निकल जाती हैं। विवर्णित मटर के दानों को तत्काल ठंडे पानी में डुबाकर ठंडा करते हैं। इसके बाद उन्हें कम से कम चार प्रकार से संरक्षित रखा जा सकता है।

पहला तो यह कि मटर के दानों को डिब्बों में रख सकते है, जिन्हें फिर 2 प्रतिशत लवण-जल घोल से लगभग पूरा भर देते हैं। इसमें स्वाद के लिए 4 प्रतिशत शक्कर और कभी कभी थोड़ी पुदीने की सुगंध भी रहती है। ढक्कन को आंशिक रूप से सीलबंद या कस देते हैं। डिब्बों को उबलते पानी में या भाप के सामने तब तक रखते हैं, जब तक कि डिब्बों के मध्य का तापमान 82^0 से. पहुंच जाए। यह तापमान डिब्बे में उपस्थित सारी हवा को निकाल देने के लिए आवश्यक है। यह एक महत्वपूर्ण प्रत्यय है, और डिब्बे का आकार जितना बड़ा होगा उतना ही अधिक समय निष्कासन में लगेगा क्योंकि पानी और नमक का घोल ताप का धीमा और शक्कर का घोल बहुत धीमा संचार करते हैं। यहां ताप के निष्कासन के कई लाभ हैं। हवा के द्वारा विटामिन सी का ऑक्सीकरण धीमा हो जाता है, बाद में भंडारन के दौरान डिब्बे को ज़ंग लगना और विवर्ण होना रुक जाता है और मटर के दाने फूलकर अपना पूरा आकार ग्रहण कर लेते हैं और डिब्बे को सघन रूप से भर देते हैं। अंतिम रूप से, ढक्कन को हाथ द्वारा या विशेष 'सीमर' यंत्र का उपयोग करके स्वचालित ढंग से 'सील' किया निर्वात डिब्बे को नतोदर बनाए रखता है और समय पूर्व फूलने से रोकता है। डिब्बे को सील करने की आधुनिक विधि में डिब्ब के सिरे पहले बाहर की ओर मोड़कर ओंठ बना दिया जाता है। ढक्कन को नीचे और फिर ऊपर की ओर मोड़कर उस ओंठ में अटका देते हैं। इस जोड़ को एक साथ दबाने से हवाबंद सील लग जाती है। इसके बाद सील किए गए डिब्बों का, बच गए जीवित जीवों को नष्ट करने के लिए, पर्याप्त ऊंचे तापमान पर काफी लंबे समय तक निर्जीवीकरण (पैश्चुराइजेशन) किया जाता है।

दूसरे विकल्प के रूप में, विवर्णित मटर के दाने, यदि इच्छा हो तो अन्य सब्जियों के साथ सालन में डाले जा सकते हैं। सब्जियों को डिब्बे में रखकर, अलग से तैयार किया गया गर्म सालन ऊपर से डालते हैं और डिब्बों से ताप को निष्कासित करके सीलबंद कर देते हैं और फिर उसका निर्जीवीकरण कर देते हैं।

तीसरे, सूखे और निर्जलित मटर के दाने बनाने के लिए, विवर्णित मटर को गर्म हवा के प्रवाह में रखते हैं। (केंद्र बहुत धीमे सूखते हैं) जब तक कि नमी का स्तर 4 प्रतिशत के स्तर तक नहीं गिर जाए और सल्फर डॉइऑक्साइड का अवशेष लगभग 400 पी पी एम संरक्षक के रूप में न छूट जाए। सुखाए गए मटर के दाने पॉलिथिलिन, कागज और एल्यूमीनियम की पत्रियों को एक साथ चिपकाकर बनाए गए लचीले पैकेटों में बंद कर देते हैं। ये पैकेट हवा और नमी के प्रवेश के विरुद्ध एक प्रभावशाली निरोध प्रदान करते हैं।

अंतिम रूप से, मटर के दानों को सूखे और गीले सूप (शोरबे) में भी बदला जा सकता है। हरे मटर के सूप में गेहूं का आटा, दूध और मक्खन के साथ ही मसाले, नमक और शक्कर भी शामिल हैं। यह वैसे ही बनाते हैं, जैसे घर में और अच्छी तरह से रोगन लगे डिब्बों (अनेक सब्जियों में उपस्थित सल्फर लोहे का रंग गहरा करने में समर्थ होता है) में डिब्बाबंद कर देते हैं। निर्जीवाणुकरण अपवाद रूप से लंबा होता है, क्योंकि उत्पाद में अम्लता कम होती है और इसलिए यह जल्दी ही बिगड़ सकता है। अचारों और सालनों जैसे अधिक अम्लतायुक्त उत्पादों से भरे डिब्बों का निर्जीवीकरण कम समय के लिए और कम तापमान पर किया जाता है, जिससे कि उपस्थित रोगाणु नष्ट हो जाएं। सूखा सूप पाउडर बनाने के लिए, विवर्णित मटर के दानों को पहले बताए गए अनुसार निर्जलित करते हैं और फिर उसे आवश्यक मसालों, नमक और शक्कर के साथ पहले ही से पकाए गए मांड के आधार के साथ पीस लेते हैं जिससे कि पाउडर गर्म पानी के साथ मिलाने पर सुविधा के साथ पुनर्गठित हो सके।

दो आधुनिक भारतीय सुविधाजनक आहारों में केवल इमली फल के गूदे का उपयोग करते हैं। इमली सार एक जल-निष्कर्ष है जो निर्वात में घटकर एक लसीले काले द्रव के रूप में रह जाता है, जिसमें ताजा इमली की अम्लता के साथ ही उसकी गंध बनी रहती है, जबकि इसे एक साल तक सरलता से रख सकते हैं। इमली के पाउडर में, उपयोग की सरलता के लिए एक सूखे मांड-आधार पर खट्टेपन के कारक अम्ल को अवशोषित कर लेते हैं।

सिरका

यद्यपि यह देशी उत्पाद नहीं है, फिर भी आज यह देश में बनाया जाता है और अचार डालने और भोजन पकाने में इसका व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। उचित रूप में खमीरीकरण से शक्कर अल्कोहल देती है। अल्कोहल में जब उपयुक्त यीस्ट द्वारा खमीर उठाते हैं, तो एसेटिक एसिड मिलता है। पानी के 100 भागों में 4 से 5 भाग एसेटिक एसिड का घोल सिरका या विनेगर है। संश्लेषित सिरका ऐसे ही घोल से बनता है, जिसमें रंग के लिए थोड़ी-सी जली शक्कर और गंध

के लिए बार्ली माल्ट मिलाते है। भारत में अनेक प्रकार के शर्करा पदार्थों का अल्कोहल और फिर उससे सिरका बनाने के लिए खमीरीकरण करते हैं। अंकुरित बार्ली से माल्टेड (यवयुक्त) सिरका, अनन्नास, नारंगी और अंगूर जैसे फलों का डिब्बाबंद करने से बचा अपशिष्ट, टेपिओका, नारियल, गन्ने का रस, कोलासेस (शीरा) गुड़ और ताड़ी। साइडर विनेगर सेब के रस से प्राप्त करते हैं। भोजन की मेज पर उपयोग के लिए सौम्य प्रकार का सिरका एक धीमी खमीरीकरण की 'नियंत्रित' प्रक्रिया द्वारा बनाते हैं, जिसमें 3 महीने लगते हैं। प्रक्रिया को त्वरित बनाने के लिए एक तेज 'टपकन' विधि में अतिरिक्त हवा का उपयोग होता है, किंतु सिरके को लगभग 6 माह के लिए रखा रहने देना पड़ता है ताकि फलों की गंध के साथ थोड़ी थोड़ी मात्रा में रसायनों के निर्माण से उसका सूखा स्वाद और गंध सौम्य हो जाए। सामान्य रूप से, चमक देने के लिए सिरके को छान लेते हैं और उसे निर्जीवाणुता देने के लिए या तो बोतलबंद करने के पहले या बाद में निर्जीवीकरण करते हैं। भारत में बने सिरके में से केवल एक-चौथाई खमीरीकृत उत्पाद होता है, जो माल्ट सिरका कहलाता है, शेष संश्लेषित होता है, जो एक अम्लीय द्रव है, जिसमें कोमल गंधों की व्यंजना नहीं रहती।

सॉस (विदेशी ढंग की चटनियां)

टोमेटो केचप, चिली सॉस, वूस्टर (या 1 में 8) सॉस और सोयाबीन सॉस विदेशागत हैं, जो भारतीय खानों में अपना स्थान बना रहे हैं।

केचप और चिली सॉस एक जैसे उत्पाद हैं। बस चिली सॉस में मिर्च ज्यादा है। छिलका उतरा, बीज निकला और छाना हुआ टमाटर का गूदा नमक और सिरके के साथ उबाल लेते हैं, मोटे मलमल के कपड़े में छानते हैं (लोहे की जाली की छननी से उत्पाद में कालापन आ जाएगा) और फिर शक्कर के साथ गाढ़ा होने तक गर्म करते हैं। शक्कर स्वाद के लिए मिलाते हैं और मुख्य संरक्षक एसेटिक एसिड है। प्याज, लहसुन, काली मिर्च, लौंग, दालचीनी, जीरा, पेपरिका और अदरक का सत्व पहले ही उस सिरके में निचोड़ लेते हैं, जो केचप बनाने में उपयोग करते हैं। पूरी तरह से तैयार उत्पाद को, जिसका एक-सा गाढ़ापन महत्वपूर्ण है, बोतलों में ऊपर तक भर देते हैं और जीवाणुरहित करते हैं। बोतलों पर पुराने कॉर्कों के उपयोग से, उनमें उपस्थित टैनिनों के साथ प्रतिक्रिया के कारण काला घेरा बन जाता है। इसलिए पानी में अच्छी तरह उबाले हुए एकदम नए कॉर्कों का उपयोग करना चाहिए या अंदर की ओर कॉर्क लगे ढक्कनों का या तामचीनी या प्लास्टिक के बने चूड़ीदार ढक्कनों का उपयोग करना चाहिए। इन उत्पादों में अब कृत्रिम लाल रंग, एमरैंथ के उपयोग की अनुमति नहीं है, इसलिए टमाटरों की ऐसी प्रजातियों (जैसे पूसा रूबी) का ही उपयोग करना चाहिए जिनका प्राकृतिक रंग गहरा लाल

हो जो पकाने के बाद भी बना रहे। पेपरिका (मीठी-सी लाल मिर्च) स्वाद को प्रभावित किए बिना रंग को गहरा करती है। टोमेटो कैचप 70 प्रतिशत पानी और 30 प्रतिशत यौगिक हैं और हर 100 ग्राम में 90 कैलोरी हैं।

वूस्टर सॉस की सांद्रता पतली होती है। विभिन्न सुगंधित पदार्थों जैसे इमली, काली मिर्च, धनिया, लौंग, लहसुन, अदरक, जायफल और ऑलस्पाइस (पिमेंटो या जमैकाई मिर्च) को पहले ही, सिरके में अलग अलग गलाकर उनका सत्व छानकर निकाल लेते हैं, और फिर उन्हें वांछित स्वाद के अनुरूप मिश्रित कर सोयाबीन या अखरोट से बने कैचप के साथ मिलाते हैं। इसमें आगे सोयाबीन सॉस, शक्कर और शेरी या ब्रांडी भी मिला सकते हैं। अंतिम रूप से मिश्रित सॉस को साधारणतया बोतल बंद करने के पहले कम से कम तीन महीनों तक सौम्य होने देते हैं।

सोयाबीन सॉस (जापानी में शोयो) को उसके गहरे रंग, नमकीन स्वाद और उत्तेजक गंध के साथ तैयार करना जटिल है। भीगे हुए सोयाबीन को भुने हुए गेहूं के साथ मिलाते हैं, जिसे एक विशेष ''एस्परगिलस'' फफूंद के साथ गूंथते हैं और 3 दिन तक कृत्रिम वात के अंतर्गत रखते हैं सारी सामग्री को पर्याप्त नमक-घोल मिलाकर 6 महीने तक खमीर उठने देते हैं। इस दौरान एक नियंत्रित क्रम में तापमान को कम से अधिक और फिर से कम करते हैं। अंतिम रूप से बने सोयाबीन सॉस में काफी ज्यादा नमक (18 प्रतिशत) और शक्कर (10 प्रतिशत तक) के अतिरिक्त घुलनशील प्रोटीन, उनसे बनने वाले उत्पाद, लैक्टिक और अन्य जैव अम्ल और अनेक गंधकारक घटक होते हैं। भोजन की मेज पर और चीनी ढंग की रसोई, दोनों में सॉस नमकीन बनाने, गंध और रंग देने का काम करता है।

पापड़

सामान्य रूप से गहरे तेल में तले जाने और कभी कभी भूने जाने वाले पापड़ या पापड़म साधारणतया विभिन्न आकार के चपटे वृत होते हैं। इसी ढंग के अन्य उत्पाद ढेलेदार, लड़ी जैसे या टिकली (वेफर) जैसे आकार के हो सकते हैं। सभी खस्ता होते हैं और भारतीय भोजन के संरचनागत विस्तार में एक कुरकुरा अवयव जोड़ते और खुशनुमा, हल्का और नमकीन स्वाद देते हैं। पापड़ क्षेत्रीय और पारिवारिक नुस्खों से हमेशा से घर में बनाए जाते थे, किंतु अब कच्चे रूप में व्यावसायिक रूप से उपलब्ध हैं, जिन्हें घर में खाने योग्य बनाते हैं और इसलिए संसाधित भोजन की श्रेणी में आते हैं।

चपटे पापड़ों का एक अनिवार्य घटक छिलका उतरी उड़द दाल है। इसमें एक लसदार अवयव होता है जो पापड़ की लोई को संसंजकता देता (इडली और डोसा की संरचना में भी इसकी भूमिका है) है। वास्तविक पापड़ में उड़द की दाल को अन्य दालों, जैसे मूंग, तुवर या चना दाल से एक सीमा तक ही स्थानापन्न कर

सकते हैं, किंतु पूरी तरह कभी भी नहीं। विभिन्न मसालेदार तत्वों, जैसे सूखी मिर्च या काली मिर्च के टुकड़ों, मिर्च पाउडर और पिसी हुई लहसुन या प्याज को लोई में मिलाकर पापड़ों के स्वादों में थोड़ा बदलाव ला सकते हैं।

अच्छी तरह पीसी और महीन छानी उड़द दाल को पानी, नमक और सोडियम बाइकार्बोनेट (बेकिंग सोडा) के साथ गूंथ लेते हैं। सोडियम बाइकार्बोनेट को उत्तर में पापड़खार या सज्जी खार और दक्षिण में अप्पालाकारम कहते हैं। कभी कभी पोटेशियम कार्बोनेट भी डाला जाता है। लोई को बहुत पतला बेल लेते हैं, 10 से 25 से.मी. व्यास के वृत्तों में काट लेते हैं। धूप में सुखाकर, चिपकने से रोकने के लिए चावल का आटा छिड़ककर एक के ऊपर एक रखकर ढेर बना लेते हैं। नमक, स्वाद के अलावा लोई को नर्म बनाता है और उसके फैलाव में सहायता करता है। इसके अलावा तलने पर पापड़ के विस्तार में या खिलने में भी सहायक है। नमक से भंडारन में भी सहायता मिलती है किंतु अधिक नमक का उपयोग करने से मानसून के दिनों में वह नमी को आकर्षित करता है जिससे सतह पर कण जम जाते हैं, जबकि बहुत कम उपयोग से फफूंद लग सकती है। बाइकार्बोनेटों और कार्बोनेटों के उपयोग से उड़द की दाल की अपेक्षाकृत कच्ची गंध सौम्य हो जाती है और रंग खिलता है। पूरे बने पापड़ 5 से 20 ग्राम वजन के होते हैं। उनमें खुद दाल के स्तर का 22 प्रतिशत प्रोटीन होता है। यदि तले जाएं, तो अपने वजन के आधे के बराबर तेल सोख लेते हैं। इसलिए 10 ग्राम वजन के एक पापड़ का पोषक योगदान 50 कैलोरी तक हो सकता है।

10. डिब्बों और बोतलों से

जैम, जैली, स्कवैश, प्रिजर्व्स और कैंडी फ्रूट्स

मुरब्बे, अवलेह, शरबत, परिरक्षक और शक्कर लिपटे फल
मुरब्बे के रूप में सब्जियों को परिरक्षित करने के लिए केवल शक्कर के उपयोग की पड़ताल पिछले अध्याय में की गई और लगभग वे ही सिद्धांत फलों पर आधारित मीठे उत्पादों के बनाने में लागू होते हैं। जबकि खट्टी और खट्टी मीठी सब्जियों को सुविधा के लिए बोतलों में बेचा जाता है, मीठे उत्पाद बोतलों अथवा टिन के डिब्बों में और अमरीकी शैली में कहें तो कैन में बेचे जाते हैं। इन उत्पादों को बनाने में, और बाद में उन्हें बेचने के लिए पैकिंग में, जो सिद्धांत काम करते हैं, वे तालिका 10.1 में वर्णित वास्तविक नुस्खों से संबंधित हैं। ये क्रमशः स्कवैश (शरबत) कॉर्डियल (पुष्टिकर), जैली (अवलेह), जैम (मुरब्बा), फ्रूट-इन-सीरप (चाशनी में डूबे फल), प्रिजर्व (परिरक्षित), कैंडीड पील (चाशनी चढ़े छिलके) और क्रिस्टलाइज्ड फल (क्रिस्टलीकृत फल) बनाने के लिए हैं।

फलों के रस
पहली विधि मैंगो स्कवैश (आम के शरबत) के लिए है और इसमें गर्म करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। अधिक शक्कर और साइट्रिक एसिड के अतिरिक्त के. एम. एस. परिरक्षक का उपयोग करके संरक्षण करते हैं, जैसा कि हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं। इससे सल्फर डाइऑक्साइड निकलता है, जो फफूंदकारक रोगाणु और जीवाणु को, जो सिरका बनाते हैं, दूर रखता है। निर्जीवाणुकृत बोतलों में ऊपर तक भरने के बाद आवश्यक है कि पानी में अच्छी तरह उबालकर निर्जीवाणुकृत और नर्म किए गए नए कॉर्कों का उपयोग किया जाए। पुराने कॉर्क निश्चित रूप से सूक्ष्म जीवों को पनपा देंगे, जो थोड़े ही समय में स्क्वैश को खराब कर देंगे। औद्योगिक रूप से धातु के एनेमल चढ़े या प्लास्टिक के ढक्कन, कभी कभी भीतर

कॉर्क का अस्तर लगाए बिना ही उपयोग किए जा रहे हैं। पहले इनके स्थान पर लहरदार किनारे वाले क्राउन कॉर्क का उपयोग किया जाता था, जैसे आजकल मुख्य रूप से हल्के पेयों, कार्बोनेटेड आसवों और बीयर की बोतलों पर पाए जाते हैं।

लाइम कॉर्डियल की विधि, एक स्पष्ट बहुत खट्टे उत्पाद के लिए है, जिसमें सतह पर फफूंद लगने का खतरा कम करने के लिए के एम. एस. मिलाते हैं क्योंकि ऐसा होना असामान्य नहीं है।

खाद्य रंग

पहली दो विधियों में, किसी उचित, खाने योग्य रंग का उपयोग उत्पाद के आकर्षण को बढ़ा देता है, किंतु उसका कोई पुष्टिकारक या संरक्षणात्मक काम नहीं है। वर्तमान में भारत में नियामक विधान, खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम के अंतर्गत खाद्य पदार्थों में ग्यारह संश्लेषित या कृत्रिम रंग मिलाने की अनुमति है किंतु सुरक्षा से संबंधित आशंका के कारण इस सूची में भी कमी की जा सकती है। इसलिए, एक लाल रंग एमरैंथ, जो कभी व्यापक रूप से उपयोग किया जाता था, प्रयोगशाला में किए गए प्रयोगों के बाद प्रतिबंधित कर दिया गया है, क्योंकि जानवरों पर किए गए प्रयोगों से पता चला कि यह उर्वरता को घटाता है, जन्म के समय विकृतियां को प्रेरित करता है और कैंसर भी दे सकता है। एक अन्य लाल रंग ''पांस्यू 4 आर'' भी प्रतिबंध का सामना कर रहा है क्योंकि इसमें लाल रक्तकोशों की संख्या कम करने की प्रवृत्ति है। ऐसा भी सुझाव है कि खाद्य पदार्थों में सारे कृत्रिम रंग प्रतिबंधित कर दिए जाएं। दूसरी ओर, अंगूर के छिलके, कुसुम पुष्पकों, चुकंदर इत्यादि जैसे प्राकृतिक उत्पादों से रंगों की एक श्रेणी विकसित करने के लिए अनुसंधान कार्य प्रगति पर है।

पैक्टिन होने का महत्व

तीसरी विधि अमरूद की जैली के लिए है, जो पैक्टिन (शक्कर जैसा एक यौगिक जो फल के पकने और गर्म करने पर प्राप्त होता है) को निकालने की विधि से अधिक कुछ नहीं है। जैम और जैली बनाने में यह अत्यधिक महत्वपूर्ण प्राकृतिक यौगिक है, जो नींबू जाति के फलों के गूदे में अमरूद, सेब, हरे पपीते और आम के छिलके के नीचे, कटहल की छाल में और कैथ के गूदे में अपेक्षाकृत बड़ी मात्रा में मिलता है। इन सारी चीजों में से उसी तरह घर में सार निकाल सकते हैं, जैसे तीसरे नुस्खे में बताया गया है, और ऐसी चीजों के साथ जैम बनाने में उपयोग कर सकते हैं, जिनमें प्राकृतिक रूप से पैक्टिन की कमी होती है। पैक्टिन निकालते हुए उसकी मात्रा का निर्धारण करने के लिए एक सरल परीक्षण करते हैं। एक चम्मच भर सार के साथ मैथिलेटेड स्पिरिट या परिशोधित स्पिरिट दो चम्मच भर मिलाते हैं। एक

तालिका 10.1
कुछ फल-आधारित उत्पाद

1. मैंगो स्क्वैश

आम का गूदा	1 कि. ग्रा.
पानी	1 कि. ग्रा.
शक्कर	1 कि. ग्रा.
साइट्रिक एसिड	30 ग्राम
पोटेशियम मेटाबाइ-सल्फाइट (के. एम. एस.)	0.6 ग्राम
खाने योग्य नारंगी-पीला रंग (वैकल्पिक)	

(क) ताजे, पूरे पके, खट्टे और रसीले आमों के छिलके और गुठली से गूदे को अलग कर लीजिए।
(ख) गर्म किए बिना गूदे को पानी, शक्कर और साइट्रिक एसिड के साथ मिलाइए।
(ग) मोटे मलमल के कपड़े में से छान लीजिए।
(घ) के. एम. एस. और रंग (सनसेट यलो, नारंगी ए जी) पानी में घोल कर मिलाइए।
(च) गर्म पानी में डालकर निर्जीवाणुकृत की गई साफ बोतलों में, ऊपर की ओर 2 से 3 से.मी. खाली जगह छोड़कर भर दीजिए। क्राउन कॉर्क से, या नए गीले कॉर्क से, या पानी में अच्छी तरह उबाले गए पुराने कॉर्क से हवाबंद रूप में सील कर दीजिए।

2. लाईम जूस कॉर्डियल

नींबू रस	1 कि.ग्राम
शक्कर	1.25 कि.ग्राम
पानी	1 कि.ग्राम
के. एम. एस.	1.5 से 0.3 ग्राम
खाने योग्य पीला-हरा रंग वैकल्पिक	

(क) ताजा, पूरी तरह पके कागजी नींबुओं को अच्छी तरह से धोकर उन्हें दो दो टुकड़ों में काट लीजिए।
(ख) हाथ से या स्कवीजर से रस निकाल लीजिए। रस को मोटे मलमल के कपड़े में छानकर बीज और गूदा अलग कर दीजिए।
(ग) 1.5 के. एम. एस. मिलाइए और 4 से 6 हफ्तों के लिए कांच की बोतलों में रख दीजिए।

(घ) रस को सावधानी पूर्वक निथारकर तलछट से अलग कर लीजिए। शक्कर, पानी, रंग और के. एम. एस. (0.3 ग्रा) मिलाइए। विधि नंबर एक के समान बोतलों में भर दीजिए।

3. अमरूद जैली

अमरूद	1 कि.ग्रा.
साइट्रिक एसिड	2 ग्रा.
शक्कर (विधि देखिए)	

(क) पके हुए किंतु जरा खट्टे और ज्यादा गूदे वाले फलों का उपयोग कीजिए। धोकर टुकड़ों में काट लीजिए।

(ख) टुकड़ों के ऊपर तक पानी भर कर साइट्रिक एसिड मिला दीजिए और 30 मिनट तक उबालिए, जब तक कि उसमें चिपचिपापन दिखने लगे, किंतु बीच में कड़छुल से हिलाते रहिए।

(ग) मोटे कपड़े से छान लीजिए। इसी तरह एक बार और छानकर सत्व निकाल लीजिए। दोनों बार निकले सत्वों को मिलाकर रात भर रहने दीजिए। साफ भाग को निथार लीजिए।

(घ) अल्कोहल का उपयोग करके पैक्टिन का परीक्षण कीजिए (देखिए पृ. 149) अगर कम है, तो सत्व को हल्के-हल्के उबाल कर पैक्टिन को सांद्रित कर लीजिए।

(च) जब पैक्टिन का स्तर पर्याप्त ऊंचा हो जाए, उसके भार की तीन-चौथाई शक्कर मिला लीजिए और तब तक उबालिए जब तक कि चम्मच से जैली चाशनी की धार के रूप में नहीं, किंतु टुकड़ों में गिरे।

(छ) निर्जीवाणुकृत बोतलों में भरकर चूड़ीदार ढक्कन लगा दीजिए।

4. अनन्नास जैम

अनन्नास का गूदा	1 कि.ग्रा.
शक्कर	1 कि. ग्रा.

(क) अनन्नास का शीर्ष, छिलका और आंखें निकालकर सिर्फ फल रहने दीजिए।

(ख) छोटे छोटे टुकड़ों में काट लीजिए और कुचलकर एक-सा गूदा बना लीजिए।

(ग) शक्कर मिलाकर एक घंटा रख दीजिए और फिर तेजी से हिलाते हुए तब तक धीमे धीमे पकाइए जब तक कि जैम जैसा गाढ़ापन आ जाए। (याद रखिए ठंडा होने पर यह और गाढ़ा होगा)

(घ) निर्जीवाणुकृत बोतलों को लकड़ी के तख्ते या मोटे कपड़े पर रख कर गर्म गर्म जैम को लगभग ऊपर तक भर दीजिए। लकड़ी के तख्ते या मोटे कपड़े पर रखने से गर्मी खत्म होती है। चूड़ीदार ढक्कन लगा दीजिए और बोतल को 5 मिनट के लिए उलटा कीजिए, जिससे ढक्कन भी जीवाणुरहित हो जाए।

5. कैनूड सैपोटा (चीकू)

चीकू के खंड	550 ग्राम
शक्कर	1250 ग्राम
पानी	1000 सीसी
साइट्रिक एसिड	55 ग्राम

(क) छिलका उतरे चीकू खंडों को एक ए-2½ आकार के कैन में रखिए।

(ख) शक्कर और साइट्रिक एसिड का पानी में घोल बनाइए जिससे 55 ब्रिक्स का सीरप मिले।

(ग) सीरप को उबालिए और उसे कैन में डालिए जिससे फल खंडों के बीच की जगह भर जाए किंतु शीर्ष पर लगभग एक से.मी. जगह खाली रहे।

(घ) कैन को उबलते पानी में 7 से 8 मिनट तक रखिए। कैन को सील कर दीजिए।

(च) सील किए हुए कैन को 25 मिनट तक पकाइए। इसके बाद ठंडा होने दीजिए।

6. परिरक्षित नाशपाती

नाशपातियां	500 ग्राम,
नमक का घोल	डुबोने के लिए,
खाने योग्य पीला या लाल रंग (वैकल्पिक)	
शक्कर	आवश्यकतानुसार
साइट्रिक एसिड	आवश्यकतानुसार

(क) फलों को धोकर दोनों सिरे काट दीजिए और छिलका उतार दीजिए। भूरा होने से रोकने के लिए 2 प्रतिशत नमक घोल में डुबो दीजिए। आवश्यकता पड़ने पर उन्हें नर्म करने और नमक निकालने के लिए उबलते पानी में 5 मिनट तक पकाइए।

(ख) यदि इच्छा हो तो रंग के घोल में उबालकर टुकड़ों को रंग दीजिए। धोकर, स्टेनलैस स्टील के कांटे से टुकड़ों को छेद दीजिए।

(ग) 100 सीसी पानी में 43 ग्राम शक्कर (30 ब्रिक्स) और 0.2 प्रतिशत साइट्रिक एसिड के घोल की पर्याप्त मात्रा में 5 मिनट तक उबालिए और रात भर रहने दीजिए।

(घ) अगले दिन सीरप निकालकर थोड़ा और साइट्रिक एसिड और पर्याप्त शक्कर मिलाकर सीरप की सांद्रता 67 प्रतिशत (40 ब्रिक्स) कर लीजिए। बढ़ी हुई सांद्रता के सीरप के साथ फिर उबालकर ठंडा कर लीजिए जिससे कि अंतिम रूप से 2 से 3 तार की चाशनी बन जाए (70 ब्रिक्स, 233 ग्रा./100 मिलीलिटर)

(च) पर्याप्त गर्म रहते ही सूखी निर्जीवाणुकृत बोतलों में भरकर ढक्कन बंद कर दीजिए। यह एक साल तक परिरक्षित रहेगा।

7. कैंडिड एशगॉर्ड (पेठा)

घनाकार पेठा	500 ग्रा.
अनबुझा चूना	60 ग्रा.
शक्कर	आवश्यकतानुसार

(क) ठोस गूदे के टुकड़े काट लीजिए, छिलका और बीज फेंक दीजिए। किसी काँटे (फोर्क) से छेद कीजिए।

(ख) फल के टुकड़ों को सुदृढ़ करने के लिए ताजा चूने और पानी के घोल में भिगो दीजिए (60 ग्राम अनबुझे चूने के लिए एक लिटर पानी डालिए, चूने को नीचे बैठ जाने दीजिए, फिर निथारे हुए साफ घोल का उपयोग कीजिए) 3 से 4 घंटे भीगने दीजिए (नर्म फल के लिए थोड़ा अधिक समय लगेगा) पानी निकाल दीजिए। टुकड़ों को पानी से अच्छी तरह धो लीजिए।

(ग) टुकड़ों को 15 से 20 मिनट तक उबलते पानी में डालकर गर्म कर लीजिए। निकालकर, कपड़े पर फैला दीजिए जिससे उनकी नमी निकल जाए।

(घ) एक किलो शक्कर का 1.5 लिटर पानी में घोल बनाकर उबालिए। झाग निकाल दीजिए और टुकड़े डालिए। दो से तीन तार की चाशनी बनने तक गर्म करते रहिए।

(छ) रात भर रहने दीजिए। चाशनी निथार लीजिए। जालीदार तश्तरी पर या कपड़े पर रखकर सुखाइए। जब चिपचिपाहट न रह जाए तब उथले ढक्कनदार बर्तन में रख दीजिए।

8. शक्कर चढ़े चकोतरे के छिलके

(क्रिस्टलाइज्ड पौमेलो पील)

चकोतरे के छिलके	500 ग्रा.
नमक	आवश्यकतानुसार

(क) छिलकों पर से सारा गूदा निकाल दीजिए। 2 सें.मी. × 10 से.मी. के

ग्लुकोस	वैकल्पिक
के. एम. एस.	आवश्यकतानुसार
साइट्रिक एसिड	0.1 ग्रा.

आयताकार टुकड़ों में काट लीजिए।

(ख) टुकड़ों को 8 प्रतिशत के सामान्य नमक के घोल में डालिए। प्रक्रिया को तेज करने के लिए इसमें थोड़ा ग्लुकोस मिला सकते हैं। लगभग 6 सप्ताह के लिए छोड़ दीजिए, तब टुकड़े पारभासी हो जाएंगे।

(ग) फिर टुकड़ों को 10 प्रतिशत के नमक घोल में रख दीजिए, जिसमें 0.2 प्रतिशत के. एम. एस. हो। इस घोल में टुकड़ों को तीन महीने रहने दीजिए।

(घ) आवश्यकता पड़ने पर बार बार गर्म पानी में भिगो लीजिए और नमक निकालने के लिए पानी से धो लीजिए। भीतर की ओर छिद्रित कीजिए जिससे सीरप अवशोषण अच्छा हो।

(च) 100 सीसी पानी में 43 ग्रा. शक्कर के घोल (30 ब्रिक्स) में टुकड़ों को डुबो दीजिए, और 2 दिन रहने दीजिए। सीरप को निकाल लीजिए, शक्कर की सांद्रता 100 सीसी में 67 ग्रा. (40 ब्रिक्स) तक बढ़ा दीजिए। 5 मिनट तक उबालकर 2 दिन के लिए छोड़ दीजिए। इसे 75 ब्रिक्स (300 ग्रा/100 सीसी) होने तक जारी रखिए, जिसमें साइट्रिक एसिड मिला दिया गया है। दो दिन बाद 5 मिनट के लिए उबाल लीजिए और गर्म सीरप को नियारकर निकाल दीजिए।

(छ) चिपचिपे टुकड़ों को बहुत महीन पिसी हुई शक्कर में डालकर हिलाइए और फिर तश्तरियों में सुखा लीजिए। सूखी कांच की बोतलों में रख दीजिए।

बड़ा थक्का जमने का अर्थ है कि पैक्टिन की मात्रा ऊंची है, कुछ छोटे छोटे थक्कों का बनना मध्यम मात्रा और एक पतली श्लेष्मा का बनना कम मात्रा का सूचक है। यदि कम है, तो पैक्टिन के सांद्रण के लिए सार को उबालना जारी रखना चाहिए। व्यावसायिक रूप से यह पाउडर के रूप में उपलब्ध है, इसका बढ़िया उपयोग करने के लिए इसके भार से 5 गुना शक्कर इसमें मिलाते हैं, और फिर इसे पानी में घोलते हैं।

पैक्टिन ही जैली या जैम के जमने का कारण है, और अच्छा उत्पाद पाने के लिए तीन चीजों, पैक्टिन, शक्कर और एसिड में उचित संतुलन होना चाहिए। पैक्टिन की एक निश्चित मात्रा के साथ कम शक्कर और अधिक एसिड या अधिक शक्कर और कम एसिड से अच्छा उत्पाद मिलेगा। इसलिए थोड़ा साइट्रिक या टार्टरिक एसिड अधिक मिलाकर शक्कर में काफी बचत कर सकते हैं। खट्टे सेब, अमरूद, नारंगी, आलूबुखारे और नींबू में पैक्टिन और एसिड दोनों अधिक होते हैं। कच्चे केले, नाशपाती, पके अमरूद और विभिन्न नींबू-जाति फलों के छिलकों में पैक्टिन अधिक किंतु एसिड कम होता है। खूबानी, आड़ू और स्ट्रॉबेरी जैसे पके और अधिक पके फलों में पैक्टिन और एसिड दोनों कम होते हैं।

पकाने की क्रिया के अतिरिक्त जैली या जैम को उबालना भी एक महत्वपूर्ण चरण है। इससे तीनों घटक परस्पर अच्छी तरह से घुल-मिल जाते हैं, जबकि धीरे धीरे शक्कर का सांद्रण बढ़ जाता है। समापन-बिंदु का निर्णय गर्म उत्पाद को चम्मच में उठाकर फिर से पात्र में गिरने देकर करते हैं : यह टुकड़ों या थक्कों के रूप में नीचे गिरना चाहिए। धारा के रूप में नहीं।

मार्मलेड एक जैली मात्र है जिसमें ठोस पदार्थ लटका रहता है। जैली मीठी या खट्टी हो सकती है, और ठोस पदार्थ प्रायः नारंगी या नींबू के छिलके की हल्की कड़वी कतरनें होती हैं। जिन्हें नर्म करने के लिए पहले ही उबाल लिया गया होता है। थोड़ा-सा नारंगी-तेल उबालने के दौरान कम हो गए स्वाद को बढ़ा देगा, और चुटकी भर 'के. एम. एस.' परिरक्षक के रूप में काम करेगा।

प्रतीप शक्कर

जबकि जैली या मार्मलेड फलों का सत्व है, जैम में फल का गूदा भी होता है। दिए गए उदाहरण में अनन्नास का गूदा कुचलकर पूरी तरह से विघटित कर देते हैं और आम, अमरूद, खूबानी और केले के जैम के बारे में भी यही सच है। किंतु स्ट्राबेरी, रसबेरी, चैरी, शहतूत और अंगूर जैसे फलों के जैम अपनी विशष्टिता तभी पाते हैं, जब वे जैम में पहचानने योग्य किंतु निश्चय ही नर्म और फैलाने योग्य रूप में होते हैं।

हमने देखा कि उबालने से फल पकता है, उसमें उपस्थित पदार्थ बंधते हैं

और शीरा (सीरप) गाढ़ा होता है। इसका एक अन्य महत्वपूर्ण प्रभाव भी है। जब साइट्रिक एसिड के साथ शक्कर उबालते और गाढ़ा करते हैं, तो सुकरोस दो छोटे टुकड़ों ग्लुकोस और फ्रुक्टोस में टूट जाती है। इस प्रक्रिया को उत्क्रमण (पृष्ठ 79) कहते हैं। मिश्रण शक्कर से भी अधिक मीठा होता है, पर फिर भी इसके रवे नहीं बनते जैसे कि जैम में शक्कर का सांद्रण बहुत ऊंचा होने पर उसके रवे बन सकते हैं। अनेक जैम ऐसे हैं जिनमें शक्कर उत्क्रमित रूप में 50 से 80 प्रतिशत तक होती है।

निर्जीवाणुकृत बोतलों में उत्पाद को गर्म गर्म भरते हैं। ढक्कन के पेंच मजबूती से लगाए जाते हैं और गर्म बोतल को भी प्रतिलोमित करते हैं, ताकि ढक्कन भी निर्जीवाणुकृत हो जाएं। व्यावसायिक चलन में, बोतलों (सीलबंद कैन, यदि उनका उपयोग किया गया हो) को फिर से 30 मिनट के लिए 90 से. पर निर्जीवाणुकरण करते हैं, ताकि सारे जीवाणु पूरी तरह नष्ट हो जाएं। जैम उस प्रक्रिया से भी कैन बंद किए जा सकते हैं, जो नमक के पानी में मटर के दानों को कैनबंद करने के लिए अध्याय-9 में बताया गया है।

जैम बनाने के लिए शक्कर के स्थान पर गुड़ का उपयोग न करना ही बेहतर है, क्योंकि उससे चमकदार रंग और स्वाद पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

शक्कर में भी क्षमता है

डिब्बाबंद चीकू (कैनूड सैपोटा) की विधि वास्तव में बहुत सरल है। शक्कर और साइट्रिक एसिड की बहुत ऊंची मात्रा एक दूसरे को शक्ति देती हुई संरक्षक के रूप में भी काम करती है। उपयोग की गई शक्कर 55 ब्रिक्स घोल है जिसका अर्थ यह है कि शक्कर के 55 भाग को पानी के 45 भाग के साथ मिलाया गया है। इस प्रकार द्रव के एक लिटर में 1.22 किलोग्राम शक्कर रहती है, जो कि पर्याप्त सांद्र घोल है। परिरक्षित नाशपाती के लिए अगली विधि में एक कम सांद्रता के 30 ब्रिक्स घोल (पानी के 70 भाग में 30 भाग शक्कर) का पहले उपयोग किया गया। बाद में इसकी सांद्रता बढ़ाकर 55 ब्रिक्स कर दी गई, जो अंगूठे और तर्जनी के बीच खींचने पर एक तार देगी, और अंतिम रूप से 2 से 3 तार के गाढ़ेपन, तदनुसार लगभग 70 ब्रिक्स तक क्षमता बढ़ाई गई। धीरे धीरे शक्कर की मात्रा में वृद्धि फल में झुर्रियां पड़ने से रोकने के लिए है, क्योंकि नाशपाती के टुकड़ों को सांद्र सीरप में एकसाथ डाल देने से उनमें झुर्रियां पड़ जाती हैं। हर चरण पर साइट्रिक एसिड के साथ उबालने का उद्देश्य शक्कर के एक भाग को उत्क्रमित करना है। जैसा कि हम देख चुके हैं, उत्क्रमित शक्कर का स्वयं क्रिस्टलन नहीं होता और शक्कर को भी क्रिस्टलन से रोकती है तथा परिरक्षित के रूप और मुंह में उसकी अनुभूति को भी बिगाड़ती है।

यह ध्यान देने की बात है कि नाशपाती की विधि में ताजा कटे हुए टुकड़ों को, उपयोग करने तक, नमक के घोल में डुबोते हैं। यह उनको भूरा होने से रोकने के लिए करते हैं, जैसा कि हम सभी ने सेब के मामले में सामान्य रूप से अनुभव किया है। भूरा रंग इन फलों में उपस्थित कुछ पोलीफेनोल पदार्थों पर उपस्थित एंजाइमों की प्रतिक्रिया से होने वाले ऑक्सीकरण का परिणाम है। यह प्रतिक्रिया हवा के ऑक्सीजन के साथ संपर्क से होती है। एंजाइम से भूरा होने की क्रिया माययार्ड प्रतिक्रिया की अपेक्षा काफी तेज है। माययार्ड प्रतिक्रिया फलों और सब्जियों सहित अनेक खाद्यों के संसाधन के दौरान भूरे उत्पाद देती है।

मीठा ही मीठा

अंतिम दो विधियों में भारी शक्कर परिरक्षण शामिल है। पेठे के टुकड़ों को कड़क करने के लिए बुझे हुए चूने में डुबोते हैं और फिर 70 से 75 की ऊंची ब्रिक्स मान वाली शक्कर की चाशनी में उबालते हैं। शक्कर उत्क्रमित रूप में पूरी तरह फल में प्रवेश कर जाती है इसलिए उसके कण नहीं बनते, बल्कि वह चाशनी के रूप में बनी रहती है। शक्कर में पगा पेठा अपने मीठे स्वाद और मुंह में खस्तापन के कारण लोकप्रिय मिठाई है।

अंतिम विधि में नींबू-वंश के फल चकोतरा के, जिसे अमेरिका में ग्रेपफ्रूट कहते हैं, मोटे छिलकों का उपयोग करते हैं। प्रारंभिक रूप से नमक के घोल में डालने से, जैसा कि नींबू के अचार में करते हैं, छिलकों में नमक प्रवेश करता है और उसे पारभासी बनाता है। बाद में इस नमक को धोकर निकाल देते हैं। टुकड़ों को बढ़ती हुई ब्रिक्स शक्ति के शक्कर के घोल में डुबोने से (जिसमें उत्क्रमण के लिए साइट्रिक एसिड मिलाया गया हो) छिलकों में पूरी तरह से शक्कर व्याप्त हो जाती है। अंतिम रूप से शक्कर के कणों में टुकड़ों को लिपटाने से उत्पाद को कणमय रूप मिलता है। यदि छिलकों पर शक्कर का पतला पारदर्शी आवरण दिया गया, जिससे उसे कांच जैसा रूप मिले, तो उत्पाद को ''कैंडीड पील'' कहते हैं। इन सभी शक्कर उत्पादों को अंतिम रूप से सुखाना महत्वपूर्ण है और व्यावसायिक रूप से यह काम गर्म हवा में उत्पाद को जालीदार तश्तरियों पर रखकर किया जाता है। अपर्याप्त रूप से सुखाए शक्कर-उत्पाद या जिन्हें गीले डिब्बों में बंद कर दिया गया हो, फफूंद को आकर्षित करते हैं, जिसका परिहार करने में के. एम. एस. का प्रयोग करते हैं।

शक्कर के क्रिस्टलन को रोकने का एक अन्य साधन है, ग्लुकोस (या कॉर्न सीरप) और शक्कर का एक समान मिश्रण उपयोग करते हैं जिससे फलों के ऊतक संतृप्त हो जाते हैं। इससे उबालने के काम को टालने में सहायता मिलती है, जो आम और आड़ू जैसे कुछ प्रकारों के, पहले ही से नर्म फलों के मामले में सुविधाजनक है।

शुष्कता द्वारा संरक्षण

आर्द्रता की मात्रा को एक निश्चित स्तर से नीचे लाने से सूक्ष्म जीव आधारहीन हो जाते हैं। जहां भी ताजा फल नहीं मिल सकते, जैसे कि मौसम के अलावा, रेगिस्तान में, युद्ध के मैदान में या ऐसे ही स्थानों पर, वहां सुखाए हुए फलों के उपयोग का एक प्रशंसनीय इतिहास है।

किशमिश बलूचिस्तान में बीज रहित अंगूरों से बनाई जाती है, जिसमें 20 से 24 ब्रिक्स की मात्रा में आवश्यक प्राकृतिक शक्कर होती है। पके हुए गुच्छे एक अंधेरे कमरे में तब तक लटका रखते हैं जब तक वे हल्का हरा या अंबरी रंग न ग्रहण कर लें। कैलिफोर्निया में, गुलाबी, केशर जैसी गंध वाले मस्कट अंगूरों को सुखा कर किशमिश और हरे-भूरे बीज रहित प्रकार के थॉमसन अंगूरों को सुखाकर सुलताना (किशमिश का एक प्रकार जिसे पुडिंग और केक में विशेष रूप से उपयोग करते हैं) प्राप्त करते हैं। पूरी तरह पके फलों को कास्टिक सोडे के पतले घोल में, जिस पर जैतून के तेल की एक पतली परत होती है, क्षणिक रूप से डुबोते हैं। कास्टिक सोडे से अंगूर की सतह पर का मोम निकल जाता है और फल पर तेल की एक पतली परत का आवरण चढ़ जाता है, जो बाद में सुखाने में दरार पड़ने से रोकती है और हर दाने को एक चमक देती है। अंगूरों को तश्तरियों पर फैलाकर 4 से 6 दिन धूप दिखाते हैं, फिर उन्हें सावधानीपूर्वक पलटकर उतने ही दिन फिर से धूप दिखाते हैं। सुखाने का अंतिम चरण छाया में करते हैं और यह सप्ताह भर चलता है। यदि बीजरहित दानों को सुखाने से पहले जीवाणुरहित करने के लिए जलती गंधक दिखाई जाए तो सुलताना का रूप पारभासी, श्वेताभ होगा। काली किशमिश गहरे नीले अंगूरों से बनाई जाती हैं।

सुखाई गई खूबानियां (जरदालू) अफगानिस्तान से आयात करते हैं और वे छोटी सफेद खूबानियों को गंधक से उपचारित कर सुखाया हुआ उत्पाद हैं। सूखे खजूर मुख्य रूप से मध्य पूर्व का उत्पाद हैं, जो देगलेट-नूर, खद्रावी और हलावी जैसे विभिन्न प्रकार के खजूरों को धूप में सुखाकर या तो कड़क सूखे रूप में (जिसे भारत में छुहारा या खारक कहते हैं) या फिर अभी भी नम, रसदार (सामान्य खजूर) रूप में उत्पादित करते हैं। खजूर में शक्कर अधिकांश रूप में उत्क्रमित होकर ग्लुकोस और फ्रुक्टोस बन जाती है। भारत में भी गुजरात, राजस्थान और हरियाणा-पंजाब में कुछ मात्रा में खजूर उपजाते हैं और चटाइयों पर फैलाकर धूप में सुखाते हैं और चटाइयों में ही बाद में बंडल के रूप में बांध देते हैं।

किसी मजबूत वानस्पतिक तंतु की लड़ी में पिरोए हुए सूखे अंजीर बहुधा बड़े, सफेद स्मिर्ना अंजीरों से बनते हैं, जो भूमध्य सागर के आसपास के देशों और संयुक्त राज्य अमेरिका में उपजाए जाते हैं। भारत में तथाकथित पूना अंजीरों को आरंभिक गंधकीकरण के बाद सप्ताह भर के लिए धूप में सुखाते हैं और पूरी तरह

से सूखने के पहले ही उन्हें दबाकर चपटा कर देते हैं। अंतिम रूप से उन्हें नर्म करने और उनका स्वाद उन्नत करने के लिए नमक के उबलते पानी में डुबोते हैं।

ताजा सेब पिरोकर ही एक घेरा बनाते हैं और फिर उस माला को धूप में लटकाकर सुखा लेते हैं।

सुखाया हुआ कटहल और सुखाया हुआ आमरस दो भारतीय उत्पाद हैं। कटहल के कंदों को गुठली निकालकर पट्टियां काट लेते हैं और फिर गंधक दिखाकर या बिना दिखाए धूप में सुखा लेते हैं। पुनर्गठन करने के लिए उन्हें पानी में भिगोया जा सकता है या फिर गहरे तेल में उन्हें वैसा ही तलकर "चिप्स" बना लेते हैं। हरे आम के टुकड़े भी इसी प्रकार धूप में सुखा लेते हैं। और पीसकर भोजन में खट्टापन लाने के लिए उपयोग करते हैं। रस देने वाले प्रकार के पके आम, "चेरूक्कु" (छोटे) और "पेड्डा" (बड़े), जो आंध्र प्रदेश में पैदा होते हैं और बहुत रसदार होते हैं, आमरस या आम पापड़ नाम के दो उत्पाद बनाने के लिए उपयोग किए जाते हैं। दबाकर आम का रस निकालते हैं, और बांस की चटाइयों पर फैलाकर उस पर शक्कर छिड़कते हैं और धूप में सुखा लेते हैं। इसके बाद उसी पर रस की दूसरी परत फैलाते हैं और मोटाई 3 से 5 सें.मी. तक कर देते हैं। इस हल्के भूरे उत्पाद में एक रुचिकर खट्टा-मीठा स्वाद और परतदार संरचना होती है। अमरूद, केला और पपीते के गूदे को भी इसी प्रकार सुखाकर और आधुनिक, सुखाने की विधियों और संरक्षकों का उपयोग करके, फलों के स्वादिष्ट टुकड़े प्राप्त कर सकते हैं, जिन्हें कनफेक्शनरी के समान चबाने, आइसक्रीम या 'बटर स्प्रेड' में फल के रूप में और बेकिंग में किशमिश और शक्कर में पगे छिलकों के स्थान पर उपयोग कर सकते हैं।

फलों के रस और पाउडर

फल का रस निश्चित रूप से फल को दबाकर निकाला गया द्रव है, जिसमें कभी कभी खट्टेपन को संतुलित करने के लिए थोड़ी-सी शक्कर मिलाते हैं, जबकि स्कवैश (शरबत) में थोड़ा-सा साइट्रिक एसिड भी होता है। नारंगी, अनन्नास, अंगूर और सेब का रस उनके गूदे से पेराई यंत्र (प्रेस) द्वारा निकालते हैं, बीज और मोटे रेशे इत्यादि छानकर अलग कर देते हैं। सामान्य रूप से थोड़ी शक्कर मिलाते हैं। इसके बाद रस को गर्मकर, बोतल बंद करके जीवाणुरहित करते हैं। 'कॉर्डियल' के अतिरिक्त अधिकतर फलों के रस धुंधले होते हैं क्योंकि उनमें ठोस पदार्थ बहुत महीन रूप में होते हैं, और ऐसा धुंधलापन उपभोक्ता द्वारा अपेक्षित और रुचिकर भी है।

कुछ फलों के रस, उनका स्वाद बनाए रखने के लिए निर्वात का उपयोग करके सांद्रित करते हैं और देश भर में खुदरा विक्रय इकाइयों को वितरित करते

हैं, जहां बर्फ जैसे ठंडे पानी का उपयोग करके उनका पुनर्गठन करते हैं और स्फूर्तिदायक पेय के रूप में बेचते हैं।

फलों के रस 'रोलर' या 'स्प्रे' द्वारा पाउडर के रूप में सुखाए और घर में भी बनाए जा सकते हैं। सी एफ टी आर आई, मैसूर ने थोड़ी मात्रा में खाने योग्य झागकारक मिलाने के बाद रस को सुखाने की एक नई तकनीक विकसित की है। इस प्रकार प्राप्त भुरभुरे पाउडर को पानी के साथ मिलाकर बड़ी सरलता से पुनर्गठित कर सकते हैं और स्वाद भी अच्छा बना रहता है।

क्या संसाधित आहारों में विटामिन बने रहते हैं?

फलों में विशेष रूप से दो विटामिन रहते हैं। विटामिन सी 'खट्टा' विटामिन है। जो हवा, ताप और प्रकाश के द्वारा सरलता से नष्ट हो जाता है। वास्तव में, यह ज्ञात लगभग सभी बारह विटामिनों में सर्वाधिक संवेदनशील है। फलों में विटामिन 'ए' अपने पूर्व रूप 'कैरोटीन' के रूप में उपस्थित रहता है, जो रंग में पीला होता है। शरीर में कैरोटिन विटामिन 'ए' में परिवर्तित हो जाता है। तालिका 10.2 के अंतर्गत कुछ सामान्य फलों और फल उत्पादों में इन दो विटामिनों की मात्रा दर्शाई गई है। विटामिन सी से समृद्ध फल हैं आंवला, काजूफल, देशी अमरूद, कच्चा पपीता और सारे नींबू जाति के फल, जबकि सभी प्रकार के आम (बादामी और रसपूरी विशेष रूप से), ताजा खूबानी, रसबैरी, पका पपीता, फालसा और पके टमाटर में विटामिन 'ए' अधिक होता है।

यदि उत्पाद की एक बोतल या डिब्बा खरीदें तो इनमें से कितने विटामिन की अपेक्षा कर सकते हैं? सूखे फलों और गूदे में ताजा फल की तुलना में, बहुत थोड़ा विटामिन 'सी' (यदि हो तो) और शायद आधा विटामिन 'ए' रहता है। सीरप, जैली और जैम में मूल विटामिन 'सी' और 'ए' का तीन चौथाई होने की अपेक्षा कर सकते हैं। फलों के रस में विटामिन 'सी' की लगभग उतनी ही मात्रा हो सकती है जो खरीदते समय थी। इसके अतिरिक्त अधिकतर डिब्बाबंद आहारों में भंडारन के कारण लगभग 20 से 50 पी पी एम की छोटी-सी मात्रा में टिन और लोहा भी आ जाता है, जो पूर्ण रूप से अहानिकर होते हैं।

डिब्बाबंद आहार की खरीद

डिब्बाबंद आहार क्योंकि पकाए हुए, विकृतिकारक जीवाणुओं को नष्ट करने के लिए निर्जीवाणुकृत, निर्वात के अंतर्गत भंडारित होते है और वे लंबी अवधियों तक रह सकते हैं : फल कम से कम एक साल, सब्जियां 2 साल, मांस और मछली 5 साल, टमाटर के सॉस में रखी मछली एक साल और संघनित दूध एक साल तक रह सकते हैं। ये अवधियां बढ़ाई भी जा सकती हैं। एक बार खोल देने पर,

तालिका 10.2

कुछ फलों और फल उत्पादों में विटामिन की मात्राएं

प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग के लिए आकलन

	विटामिन 'सी' मिलीग्राम	विटामिन 'ए' माइक्रोग्राम में
आंवला	600	5
सेब	1	शून्य
खूबानी (ताजा)	6	1080
केला (पका हुआ)	7	39
बेर	76	11
केप गूजबेरी (कोडी ने लिक्काई)	49	714
काजू फल	180	12
चैरी, लाल	7	शून्य
खजूर, नर्म-सूखे	3	13
अंजीर	5	81
अंगूर, नीले या सफेद	शून्य	शून्य
छोटा चकोतरा, रस	31	शून्य
अमरूद देशी	212	शून्य
अमरूद कृष्ट	15	शून्य
अमरूद जैली	43	शून्य
कटहल	7	83
नींबू	63	8
नींबू का रस	40	1
आम :		
बादामी	20	2800
बंगन पल्ली	16	-
लंगड़ा	176	-
तोतापरी	8	916
अन्य	13 से 18	1000
खरबूज	26	85
तरबूज	1	शून्य
शहतूत	12	29
नारंगी :		
मौसंबी (साथकुडी)	52	शून्य
कुर्ग	26	शून्य
नागपुर (संतरा)	21	शून्य

पपीता, पका	57	333
पैशन फ्रूट जूस	30	35
आड़ू	6	शून्य
नाशपाती	शून्य	14
फालसा	22	210
अनन्नास	39	9
आलूबुखारा	5	83
अनार	16	शून्य
चकोतरा	20	60
किशमिश	शून्य	शून्य
रसबेरी	30	624
चीकू	6	49
सीताफल (शरीफा)	37	शून्य
स्ट्राबेरी	52	9
टमाटर, पका	27	176
टमाटर का रस	16	24
टमाटर कैचप	18	44
कैथ	3	32
वयस्क के लिए दैनिक आवश्यकता	40	750

अधिकतर आहार डिब्बे में उतने ही समय रह सकता है, जितना कि एक सामान्य पकाया हुआ आहार, किंतु रेफ्रिजरेटर में वह कुछ अधिक समय तक रहेगा। यह अच्छा होता है कि फल को डिब्बे से निकालकर कांच की तश्तरी में रख लिया जाए क्योंकि खुले डिब्बे में कुछ समय रहने देने पर स्वाद में बदलाव आ जाता है। डिब्बे में रखे किसी भी रस का भी उपयोग कर लेना चाहिए। इसे फेंकने की आवश्यकता नहीं है। यदि नम जगहों पर रखे गए हों, तो आहारों के डिब्बों को मोर्चा लग सकता है और डिब्बों में छेद हो सकते हैं, जिससे उनमें रखी गई चीजें तत्काल असुरक्षित हो जाती हैं।

जो डिब्बे सिरों पर फूल जाते हैं, और दबाने के बाद भी फिर से उभर जाते हैं, वे इस बात का संकेत देते हैं कि कार्बन डाइऑक्साइड या अल्कोहल छोड़ने के लिए नष्ट न हुए सूक्ष्म जीवाणुओं से अंदर खमीरीकरण चल रहा है। ऐसे डिब्बे रद्द कर देने चाहिए क्योंकि उनके अंदर रखी वस्तु खाने योग्य नहीं रह गई है और यहां तक कि उसमें घातक विषैले जीव 'क्लॉस्ट्रीडियम बोटुलिनम' पनप रहे हैं। डिब्बों का फूलना खमीरीकरण के अतिरिक्त अन्य कारणों से भी हो सकता है : डिब्बे में मोर्चा लगने के परिणामस्वरूप उद्जन का निर्माण, अंदर रखी वस्तु की

आवश्यकता से अधिक मात्रा या अपर्याप्त निर्वात। यद्यपि इनमें से किसी भी कारण से अंदर रखी वस्तु उपयोग के अयोग्य नहीं हो जाती, फिर भी ऐसे डिब्बों को रद्द कर देना ही सुरक्षित है। डिब्बाबंद सब्जियों में खट्टा या अरुचिकर स्वाद केवल फूले हुए डिब्बों में ही नहीं आ सकता क्योंकि वह डिब्बाबंद करने की क्रिया के पहले ही आ चुका हो सकता है। किंतु कोई भी चीज, जिसकी गंध या स्वाद थोड़ा ही असामान्य हो, खानी नहीं चाहिए। डिब्बे के अंदर की ओर रोगन का आवरण सुनहले रंग का होता है। स्लेटी रंग दर्शाता है कि लोहे पर रोगन का पर्याप्त आवरण नहीं किया गया है और उसने आहार में उपस्थित प्रोटीन अवयव द्वारा निर्मित हाइड्रोजन सल्फाइड के साथ प्रतिक्रिया करके आयरन सल्फाइड का निर्माण किया है। ऐसे डिब्बों के आहार को रद्द कर दीजिए।

11. मीठे स्वाद का संतोष

चॉकलेट, कोको और कंफेक्शनरी

चॉकलेट

कोको : इतिहास और भूगोल

वे प्राचीन मैक्सिको के निवासी थे जिन्होंने चॉकलेट बनाने के लिए कोको बीजों की खोज की। इसे वे देवताओं का आहार कहते थे। लैटिन नाम ''थियोब्रोमा ककाओ'' इस संबंध को सूत्रबद्ध करता है। पहले तो यूरोपीय लोगों ने इसे ककाओ कहा, किंतु बाद में यह भ्रष्ट होकर सरलता से उच्चारणीय कोको हो गया। कोको और लोकप्रिय कोकोनट (नारियल) में कोई समानता नहीं है।

स्पेनी विजेता कोको को यूरोप लाए और जल्दी ही इसकी प्रसिद्धि फैल गई। कोको वृक्ष के पनपने के लिए गर्म, आर्द्र जलवायु और कुछ कुछ विशेष भूमि-स्थितियों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसा लगता है कि भूमध्य रेखा के दोनों ओर 20^0 की संकीर्ण भौगोलिक पट्टी में यह सर्वाधिक कारगर है। वर्तमान में घना और नाइजीरिया कोको बीजों के सबसे बड़े उत्पादक हैं, जबकि ब्राजील और कैमरून इसमें मामूली योगदान करते हैं।

दक्षिण भारत एकदम ठीक भौगोलिक पट्टी में पड़ता है और वहां की जलवायु इतने भिन्न प्रकार की है कि यह आश्चर्य की बात नहीं है कि कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल में कोको वृक्ष का अच्छा उत्पादन हो रहा है। वृक्ष 8 से 10 मीटर तक ऊंचा होता है और 50 से 60 वर्ष तक चलता है। यह चार वर्ष की आयु से फल देने लगता है और 10 से 30 वर्ष की आयु के बीच सर्वाधिक उत्पादन देता है। हृष्ट-पुष्ट और बहु-फलदायी ''फारेस्टरो'' प्रकार के वृक्ष विश्व भर की फसल का 90 प्रतिशत से अधिक देते हैं। क्रिओलो प्रकार यद्यपि बेहतर स्वाद का है, किंतु कम महत्वपूर्ण है। अधिक महंगे होने के कारण कच्चे या तैयार कोको उत्पादों की

मांग भारत में कभी भी बढ़ने की संभावना नहीं है, किंतु समृद्ध देशों में बहुत बड़ी मात्रा में लाभदायक निर्यात के लिए उनकी मांग है। यही नहीं, कोको वृक्षारोपण के लिए मूल खाद्य फसलों के वर्तमान उपयोग में कटौती की आवश्यकात भी नहीं है।

चॉकलेट कैसे बनती है

कोको फल या फली किरमिजी रंग की होती है और आकार मध्यम आकार के खीरे के बराबर, लगभग 8 से.मी. चौड़ा और 15-25 से.मी. लंबा होता है। प्रत्येक फल में 25-40 बीज या दाने गूदे में वैसे ही जमे हुए होते हैं जैसे खीरे में रहते हैं, अलबत्ता बीज काफी लंबे होते हैं। खमीरीकरण द्वारा फल को सड़ने देते हैं, जिसके बाद कोको बीजों को एकत्र करके सुखाते हैं और थैलों में भरकर विश्व भर में भेजते हैं।

कच्चे बीज स्वाद में कटु और कषाय होते हैं, और बीजों को भूने जाने पर ही कोको या चॉकलेट की विशिष्ट गंध विकसित होती है। काफी के बीजों को उसकी अपनी विशेष कॉफी-गंध विकसित करने के लिए भूनने के बाद कोको बीजों के बाहरी छिलके भुरभुरे हो जाते हैं और सरलता से निकालकर फेंके जा सकते हैं, तब गिरी रह जाती है। इन्हें कोकोनिब कहते हैं, शायद इसलिए कि इसके दांतेदार किनारे फाउंटेन पेन की तीखी निब के समान दिखते हैं।

कोकोनिब में 50 प्रतिशत से भी अधिक तेल, 10-15 प्रतिशत प्रोटीन और 20 प्रतिशत पचाने योग्य कार्बोहाइड्रेट होते हैं। मोटा रेशा बहुत कम होता है, इसलिए निब को बहुत महीन पीसा जा सकता है। ऐसी पिसाई के समय विकसित ताप भी वसा को पिघला देता है और यदि पिसे हुए पदार्थ को सांचों में रख दें, तो गहरे भूरे, थोड़े कड़वे खंड मिलते हैं जिनका सादा, गहरे रंग के, बिना मीठे बनाए गए चॉकलेट के रूप में पकाने के काम में उपयोग कर सकते हैं।

मीठी चॉकलेट, दूध चॉकलेट इत्यादि बनाने के लिए पिसे हुए पदार्थ में शक्कर, दूध और सुगंधें जैसे अन्य घटकों को मिलाना पड़ता है। यह भी महत्वपूर्ण है कि जब तैयार चॉकलेट को मुंह में रखें, तो एक बहुत परिष्कृत, मखमली संरचना प्राप्त हो। चिकनापन लाने के लिए पिसे हुए पदार्थ को पानी से ठंडे किए धातु के भारी बेलनों के बीच से गुजारते हैं और उसके बाद 2-3 दिन के लिए 'कोंच' नामक एक यंत्र में पीसते हैं। इसमें एक चिकना द्रोणी बना होता है, जिसके भीतर चिकने पत्थर या चीनी मिट्टी का रोलर लगा रहता है जो न केवल कोको लेई को पीसता है, बल्कि इसे आसपास जमा भी देता है। इसी धीमी कोंचिंग क्रिया के दौरान विकसित हुए धीमे ताप से चाकलेट का पूरा स्वाद उभर आता है।

कोंच से बाहर आने वाले घोल का प्रानुकूलन करना पड़ता है। नर्म करने की इस प्रक्रिया में चॉकलेट को सिर्फ पिघलाते हैं, निरंतर मिश्रण द्वारा ठंडा करते हैं,

जिससे विद्यमान ठोस वसा के छोटे छोटे क्रिस्टल बनते हैं, और फिर उन्हें शीघ्रता से मिलाते हैं, ताकि पूरे पदार्थ में उनका समान वितरण हो जाए। पर्याप्त गाढ़ापन इसी चरण में होता है और गर्म पदार्थ को प्लास्टिक की तश्तरियों में डाल देते हैं, जिन्हें फिर बर्फ पिघलने के तापमान तक ठंडा करते हैं, जिससे चॉकलेट सुविधाजनक सिल या पट्टी के रूप में जम जाती है। जमने के दौरान थोड़ा संकुचन होता है, और जब तश्तरी को उलटा करके तेज थपकी देते हैं तो चॉकलेट की पट्टी बाहर निकल आती है। वसा भी पट्टी की सतह पर एक खूबसूरत चमक देती है। फिर भी इसका एक अन्य गुण है जो इतना अच्छा नहीं है। यदि वसा को पूरी तरह से प्रानुकूलित नहीं किया गया तो चॉकलेट को लंबे समय तक रखने पर, धीमे धीमे वसा सिल की सतह के ऊपर उभर आएगी। यहां यह एक सफेद, चूर्ण जैसी परत बना लेगी, जिसे चाकलेट का फूलना कहते हैं, जिससे निश्चित ही सिल का रूप बिगड़ता है। उचित प्रानुकूलन से, चाकलेट की सिल को बाद में रखे रहने पर, इस तरह का फूलना घट जाता है और भंडारन गुण और सतह की चमक दोनों में वृद्धि होती है।

कोको पाउडर और पेय चॉकलेट

पिसी हुई कोको में, जैसा कि हम देख चुके हैं, काफी वसा होती है। यदि इसे दो छन्ना तख्तियों के बीच ऊंचे दबाव और तापमान पर दबाया जाए तो वसा निचुड़ कर बाहर निकल आएगी और ठंडी होने पर हल्के क्रीम या भूरे रंग के ठोस के रूप में जम जाएगी। इसे कोको वसा या जैस कहते हैं। कोको मक्खन कठोर, भुरभुरी, चमकदार वसा होती है जिसमें चॉकलेट की खुशनुमा गंध रहती है। पूरे संसार में कंफेक्शनरी बनाने के लिए इसकी बहुत मांग है। अपनी अनूठी विशेषताओं के कारण, यह सबसे महंगी वसा है, सारी वसाओं में सोने के समान है। मुंह में रखने पर कोको मक्खन तेजी से पिघल जाता है और किसी प्रकार का अरुचिकर तैलीय संवेदन नहीं छोड़ता। ठंडा होने पर यह थोड़ा सिकुड़ जाता है, और जैसा कि हम देख चुके हैं कि इसी कारण चॉकलेट की सिल सांचे में से साफ-साफ बाहर निकल आती है। अनेक देशों में वैज्ञानिक प्राकृतिक कोको मक्खन का विकल्प या विस्तारक भी खोजने का लगातार प्रयत्न कर रहे हैं।

कोको में विद्यमान लगभग आधी वसा निचोड़कर निकाली जा सकती है, और अवशिष्ट दबाए हुए पदार्थ में फिर भी लगभग 25 प्रतिशत वसा रह जाती है, जिसे पीस और छानकर कोको पाउडर बनाते हैं। यह थोड़ा कड़वा होता है। पुडिंग, कस्टर्ड और आइसक्रीम को खुशनुमा स्वाद और भूरा रंग देने के लिए इसका उपयोग करते हैं। सुगंधों और शक्कर के साथ मिश्रित कर पाउडर से पेय चॉकलेट बनाते हैं, जिसे दूध में मिलाने पर रुचिकर पेय मिलता है।

आहार के रूप में चॉकलेट

चॉकलेट सिल या 'वार' उच्च पोषक मूल्य का आहार है, जिसमें तीन मुख्य पोषक होते हैं : कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और वसा। दूध मिलाने से पोषकता और अधिक बढ़ जाती है। कोको पाउडर, जो चॉकलेट-निर्माताओं के लिए कच्चा माल है, प्रति 100 ग्राम में 500 कैलोरी देता है। सादी चॉकलेट 545 और दूध-चॉकलेट 590 कैलोरी देती है। इस प्रकार यह सांद्रित उच्च-ऊर्जा का खाद्य पदार्थ है, और यदि पहले ही से मोटे नहीं हैं, तो बच्चों के लिए निश्चय ही महत्वपूर्ण है। निश्चय ही, सभी मीठे खाद्य पदार्थों के समान, चॉकलेट भी दांतों की दरारों के बीच जमा होने पर अस्थि क्षय या दांतों में गड्ढों को (देखिए अध्याय 4) बढ़ाता है। मीठा खाने के बाद अच्छे से कुल्ला करके इसे रोक सकते हैं।

सादा चॉकलेट भी अनेक खनिजों का अच्छा स्रोत है। प्रति 100 ग्राम चॉकलेट में उनकी मात्रा मिलिग्राम में इस प्रकार है : पोटेशियम 250, सोडियम 145, फॉस्फोरस 140, मैगनेशियम 130, कैल्शियम 63 और लोहा 3 (ये अंतिम दोनों एक बच्चे की दैनिक आवश्यकता का लगभग एक अष्टमांश हैं) दूध-चॉकलेट में ये मात्राएं और भी बढ़ जाती हैं, किंतु मैगनेशियम और लोहे की मात्रा कम हो जाती है क्योंकि दूध में ये दोनों खनिज बहुत कम हैं।

पेय चॉकलेट छोटे चम्मच की मात्राओं में उपयोग किया जाता है जिससे कि दूध का स्वाद बढ़े और इसलिए उसका पौष्टिकता मूल्य कोई बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। छोटे चम्मच में ऊपर तक भरा हुआ पेय चॉकलेट भैंस के दूध के एक गिलास में निहित ऊर्जा में वृद्धि करता है। दूध की 300 कैलोरी में 40 कैलोरी और मिल जाती हैं।

चाय और कॉफी के समान (अध्याय 6) कोको उत्पादों के स्फूर्तिदायक गुणों का श्रेय आंशिक रूप से उनमें उपस्थित दो उद्दीपकों, कैफीन और थियोब्रोमीन को जाता है। दोनों रक्त-संचार और मूत्र-विसर्जन को उद्दीप्त करते हैं। उनमें कैफीन अधिक शक्तिशाली है। दोनों संचयी या आदत डालने वाले नहीं हैं, किंतु हृदय रोगियों को उनसे बचना चाहिए। जबकि अत्यधिक स्नायुविक या मंदाग्नि-ग्रस्त लोगों में निद्राहीनता, धड़कन और अवसाद का कारण बनते हैं। कॉफी और चाय में मुख्य रूप से कैफीन (एक कप में 40 से 60 मि.ग्रा.) और थोड़ा-सा थियोब्रोमीन (2 से 3 मि.ग्रा.) रहता है, जबकि कोको में मुख्य रूप से हल्का थियोब्रोमीन (एक कप में 250 मि.ग्रा.) और साथ में थोड़ा कैफीन (6 मि.ग्रा.) होता है।

अपने बच्चों को दूध पिलाने वाली माताओं को कोको युक्त उत्पादों का कम उपयोग करने का परामर्श दिया जाता है। थियोब्रोमीन अपेक्षाकृत तेजी से छाती के दूध में चला जाता है, जो शिशुओं द्वारा सरलता से चयापचयित नहीं होता और उनमें प्रत्यूर्जा (एलर्जी) के लक्षण दे सकता है। कोको में हिस्टैमीन और टायरामीन

बंधे हुए रूप में होते हैं और कुछ संवेदनशील व्यक्तियों को एलर्जी दे सकते हैं।

मिठाइयां

यदि शक्कर के सीरप को गाढ़ा होने तक उबाल लें, और फिर उसे ठंडा होने दिया जाए, तो कणों के रूप में शक्कर का क्रिस्टलन हो जाएगा क्योंकि यह विद्यमान पानी में केवल थोड़ी ही घुलनशील है। इसे रोकने के लिए शक्कर को उसके भार की दो-तिहाई उत्क्रमित शक्कर के साथ मिलाना पड़ेगा, जिसके बारे में जैम के निर्माण के संबंध में (अध्याय 10) हमने सीखा है। जैसा कि हमने देखा, इसमें ग्लुकोस और फ्रुक्टोस रहते हैं, जो कि दोनों ही पानी में बहुत अधिक घुलनशील हैं। यदि सकरोस घोल के साथ मिलाएं, तो मिठाइयां बनाते समय वे शक्कर के किण्वन को रोकेंगे। यही नहीं, उत्क्रमित शक्कर सकरोस की अपेक्षा थोड़ी मीठी भी होती है, इसलिए इस गुण को भी हानि नहीं पहुंचती।

द्रव ग्लुकोस एक अन्य पदार्थ है जो सकरोस के किण्वन को रोकता है। द्रव ग्लुकोस, जिसे कभी कभी ग्लुकोस सीरप भी कहते हैं, किसी उपयुक्त प्रकार के मांड, उदाहरण के लिए मकई के मांड में उपस्थित संबद्ध ग्लुकोस इकाइयों को हाइड्रोक्लोरिक एसिड (अध्याय 4) के उपयोग से तोड़कर बनाते हैं। द्रव ग्लुकोस स्वयं शक्कर से थोड़ा कम मीठा होता है, किंतु इससे उबली हुई मिठाई के स्वाद पर प्रभाव नहीं पड़ता। वास्तव में नर्म और उन्नत करने में इसका भी उपयोग कर सकते हैं।

उबली हुई मिठाइयां शक्कर और या तो उत्क्रमित शक्कर या द्रव ग्लुकोस के मिश्रण का जब तक लगभग सारा पानी न निकल जाए, तब तक गाढ़ा करके बनाते हैं। इसके लिए बहुत कौशल की आवश्यकता है। गाढ़े सीरप को चिपकने से रोकने के लिए तेल या आटा लगे सांचों में डालकर ठंडा कर लेते हैं। जब मिठाइयां ठंडी और कठोर हो जाती हैं, तब उन्हें सैलोफेन में आकर्षक रूप से लपेट देते हैं।

सुवासों में विभिन्नताएं संभव हैं। नींबू, नारंगी और अन्य फलों के सुवास बहुत लोकप्रिय हैं, जबकि पुदीने और पिपरमिंट जैसे तीखे सुवासों का भी उपयोग करते हैं। साइट्रिक, टार्टरिक और लैक्टिक एसिड एक खुशनुमा अम्लीय चरपरापन देते हैं।

टॉफी

बटरस्कॉच और टॉफी एक जैसी 'कॉच सदृश्य' उबली मिठाइयां हैं। इनमें निर्माण के समय मीठा संघनित दूध, मक्खन या दग्ध-शर्करा भी शक्कर में मिलाते हैं और अंतिम रूप से थोड़ा अधिक पानी रहने देते हैं। चर्वणीय बनाने के लिए, जिलेटिन का उपयोग करते हैं। चूष (चूसने योग्य) बनाने के लिए अरेबिक गोंद या अन्य कोई खाने योग्य गोंद, अक्सर नींबू, मुलैठी, यूकेलिप्टस, और मैंथल जैसे तेज स्वादों के साथ मिलाते हैं।

पोषक महत्व

मिठाइयां क्योंकि अधिकतर शक्कर हैं, वे निश्चय ही ऊर्जा प्रदान करती हैं। यह तेजी से उपलब्ध हैं क्योंकि शक्कर जल्दी अवशोषित और चयापचयित हो जाती है। मिठाइयां खाने के तुरंत बाद, प्रयोगात्मक रूप से यह पाया गया है कि रक्त शर्करा में वृद्धि हो जाती है। यह और भोजन की रुचि को नष्ट कर सकती है। इसलिए बच्चों को, मुख्य भोजन के पहले मिठाई खाने के लिए उत्साहित नहीं करना चाहिए। मिठाइयों और दांतों के अस्थि क्षय के बीच संबंध इस अध्याय में पहले ही तथा विस्तारपूर्वक अध्याय 4 में बताया जा चुका है।

चूइंग गम

चार शताब्दी पहले मेक्सिको पहुंचे स्पेनवासियों ने देखा कि एजटेक लड़कियों के दांत असामान्य रूप से सफेद थे। उन्हें विशाल चीकू वृक्ष की रसदार शिकल (छाल) चबाने की आदत थी। जनरल सांता अन्ना ने, जिसने 1836 में एलामों की लड़ाई में ऐतिहासिक डेवी क्रॉकेट पर विजय पाई थी, इस आदत को संयुक्त राज्य अमेरिका में चलाया। बिल ग्गिली ने 1869 में, पुदीने के तेल से सुगंधित शक्कर चढ़ी शिकल को पेटेंट करवा लिया, जिसमें नींबू का तीखा स्वाद भी था। कहा जाता है कि वह वास्तव में नकली दांत बनाने के लिए किसी नए पदार्थ की खोज कर रहा था, किंतु अचानक ही उसने इसमें कंफेक्शनरी के नए रूप की संभावना देखी।

लंबे समय तक शिकल को चूइंग गम के आधार के रूप में उपयोग किया जाता रहा। चिकलेरो नाम से जाने जाने वाले साहसी आरोहियों द्वारा 60 फुट ऊंचे सपोडिला (चीकू) वृक्षों के तने पर चढ़कर शिकल निकाला जाता था। आजकल कृत्रिम रालों का आधार के रूप में उपयोग किया जाता है और उनसे चर्वणीय और बुलबुले वाले चूइंग गम बनाए जा सकते हैं। ये पानी में और लार में पूरी तरह से अघुलनशील हैं और इसलिए लगभग अनिश्चित समय तक चबाए जा सकते हैं। आवरण निश्चय ही शक्कर के साथ कुछ अवक्षेपित कैल्शियम कार्बोनेट और टिटैनियम डाइऑक्साइड के मिश्रण का है जो इसे चमकदार सफेदी देता है। स्वाद विभिन्न हो सकते हैं, किंतु 'ठंडेपन' के प्रभाव के लिए पुदीने का सत्व आवश्यक है।

शक्कर का आवरण जल्दी ही निगल लिया जाता है और दांत चिकित्सकों द्वारा दावा किया गया है कि चूंइग गम दांतों और जबड़ों को मजबूत करता है, लार को बढ़ाता है और इस प्रकार काम करता है कि तनाव घटता है। यह शायद एक अहानिकारक व्यसन है, किंतु शेष बचा हुआ चिपचिपा पिंड लगभग अविनाशी है और जहां गम चबाना व्यापक रूप से प्रचलित है, वहां प्रभावशाली संग्रहण और निपटान की समस्या पैदा करता है।

12. पतन की ओर

हल्के पेय और मादक पेय

हल्के पेय

बोतलबंद सनसनाहट

सोते या झरने का पानी, जो प्राकृतिक खनिजों से समृद्ध होता है और अक्सर देखने में चमकीला लगता है, अब यूरोप में पीने के लिए पसंद किया जाता है। लगभग दो शताब्दी पूर्व पानी को कार्बन डाइऑक्साइड द्वारा संसिक्त करके एक बुदबुदेदार द्रव बनाने की खोज की गई। ऐसा 'सोडा वाटर', अपने विशिष्ट धात्विक स्वाद के साथ ऐसे ही या व्हिस्की या जिन के साथ संगति के रूप में अभी भी लोकप्रिय है। फलों के रस मिलाकर स्वाद में विभिन्नताएं जल्दी ही अपनाई गईं और 1809 में, उपलब्ध प्रकार के कृत्रिम हल्के पेय का पहली बार व्यावसायिक उत्पादन सामने आया।

इन वायु मिश्रित पानियों की अनिवार्य विशेषताएं क्या हैं और वे कैसे प्राप्त की जाती हैं? केवल यही पर्याप्त नहीं है कि पानी में कार्बन डाइऑक्साइड की 3 से 4 मात्राएं ऊंचे दबाव के साथ डालकर सनसनाहट पैदा कर दें, बल्कि यह भी जरूरी है कि बोतल खोलने के बाद बुदबुदे काफी समय तक बने भी रहें। इसके लिए इथिलिन ऑक्साइड पॉलीमर नाम के विशेष प्रकार के रसायन बहुत कम प्रति दस लाख में 100 भाग की मात्रा में उपयोग किए जाते हैं। मीठापन देने के लिए शक्कर की मिठास काफी नहीं है क्योंकि इसकी काफी मात्रा की आवश्यकता पड़ती है और लागत अधिक आती है। इसलिए कृत्रिम मीठा-कारक, जो शक्कर से काफी अधिक मीठे होते हैं (देखिए अध्याय 4) उपयोग किए जाते हैं, अलबत्ता कानून द्वारा इनके उपयोग की अनुमति अवश्य होनी चाहिए। भारत में केवल सैकरिन की अनुमति है। यह शक्कर से 300 गुना मीठी है और प्रति दस लाख में 100 भाग तक के

मिश्रण की अनुमति है, जो साथ में उपयोग की गई 5 प्रतिशत शक्कर सहित पर्याप्त है। इसलिए मीठे पेय की 180 सीसी मात्रा की हर बोतल में 9 ग्राम शक्कर और 18 मिलिग्राम सैकरिन रहती है। अन्य देशों में, अन्य मीठा-कारकों के उपयोग की भी अनुमति है, जैसे साइक्लेमेट (शक्कर से 30 गुना मीठा) और ग्लायसिर्राइजिन (मुलेठी की जड़ से प्राप्त करते हैं और उसे अमोनिया से व्युत्पन्न रूप में उपयोग करते हैं, जो शक्कर से 50 गुना मीठा है)। यह विश्वास किया जाता है कि कार्बोनेटेड (कार्बनयुक्त) पेयों के प्यास बुझाने वाली विशेषता का आंशिक कारण पेट की गैस के कारण पेट पर पड़ने वाला हल्का दबाव है। अम्लीय पदार्थ प्यास बुझाने में सहायक पाए गए हैं, जैसे कि ताजा नींबू-पानी। इन सबमें साइट्रिक एसिड, विशेष रूप से संतरा, नींबू, नारंगी, अनन्नास और सेब जैसे फलों के स्वाद वाले पेयों के लिए सर्वाधिक लोकप्रिय है। अंगूर जैसे पेयों में प्रायः टार्टरिक एसिड का उपयोग करते हैं, जो कि वास्तव में अंगूरों में मिलता है। कोला पेयों के समान तीव्र स्वाद वाले उत्पादों में फॉस्फोरस एसिड उपयोग करते हैं, जो उन्हें अत्यधिक अम्लीय बना देता है। किसी प्यासे व्यक्ति को आकर्षित करने वाला अन्य तत्व है बादल जैसा या कुहरे जैसा दिखाव। इसे एक रुचिकर विधि से प्राप्त करते हैं। संतरा, नींबू, नारंगी के स्वादों के साथ साइट्रस तेलों (ये प्राकृतिक भी हो सकते हैं और कृत्रिम भी) को ब्रोमिनेटेड (अधात्विक तत्वों से युक्त) वानस्पतिक तेलों के साथ मिलाते हैं, जिससे लगभग पानी जैसा एक उपयुक्त आपेक्षिक घनत्व का मिश्रण मिलता है। इस मिश्रण को किसी खाद्य पायसीकारक (जैसे अरेबिक गोंद) का उपयोग करके पानी के साथ अच्छी तरह मिलाते हैं। खाद्य पायसीकारक पायस को स्थिर करने में भी सहायक होता है। स्वयं बोतल में, इस सुगंधित सामग्री के महीन बिंदु पेय में निलंबित बने रहते हैं, जिनसे एक जैसा स्वाद और वांछित बादली दिखाव दोनों ही मिलते हैं। कृत्रिम स्वाद जटिल मिश्रण होते हैं, जैसे कि अनन्नास का स्वाद 10 शुद्ध रसायनों और 7 प्राकृतिक तेलों से बना सकते हैं। स्वाद के अनुरूप रंगों का उपयोग किया जाता है, नारंगी रंग के पेय के लिए नारंगी रंग, नींबू-पेय के लिए हरा, स्ट्रॉबेरी के लिए गुलाबी पिंगल वर्णी, और अनेक कोका पेयों के लिए कैरामेल या दग्ध-शर्करा का उपयोग करते हैं। कानून द्वारा बेंजोट्स और सल्फर डाइऑक्साइड जैसे संरक्षकों के कार्बनयुक्त पेयों में उपयोग की अनुमति है, किंतु इनका उपयोग नहीं करते, क्योंकि कार्बन डाइऑक्साइड, अपनी अम्लता सहित स्वयं ही एक शक्तिशाली संरक्षक है।

विशेष गैस भरे हल्का पेय बनाने के लिए, बोतल खोलने के बाद सनसनाहट बनाए रखने में सहायक पदार्थों से युक्त शुद्ध, बर्फ जैसे ठंडे पानी में दबाव के साथ कार्बन डाइऑक्साइड मिलाते हैं। अलग से, मिठास देने वाले पदार्थ, अम्लीय पदार्थ और रंग को मिला लेते हैं। इसमें साइट्रस तेलों और ब्रोमिनेटेड वानस्पतिक

तेलों के पायस, जो पेय को बादली दिखाव देते हैं, मिलाते हैं। मिश्रण और पानी की मात्रा, को अलग अलग धाराओं से बोतल भरने वाली मशीन में भरते हैं। भरी हुई बोतलें फिर ढक्कन लगाने वाली मशीन पर पहुंचती हैं, जो हर बोतल पर धातु का क्राउन ढक्कन लगाती हैं, जिसके अंदर कार्क या प्लास्टिक का बना वॉशर लगा होता है, जो बोतल के खोले जाने तक दबाव को रोके रखता है।

उपयोग की गई बोतलें एकत्र करके और अच्छी तरह से धो और साफ करके फिर से भर दी जाती हैं। इस प्रकार हर बोतल 3 से 4 वर्षों में 35 से 40 बार उपयोग कर ली जाती है।

सनसनाहट भरे पेय क्या स्वास्थ्यकर हैं?

किसी गैसीय पेय में रहने वाली शक्कर के अतिरिक्त उससे कोई कैलोरी नहीं मिलती। पौष्टिक दृष्टि से वास्तव में यह एक खाली आहार है जो उपयोग की गई हर बोतल से अधिकतम 70 कैलोरी देता है।

कुछ घटकों पर अन्य आधारों पर टिप्पणी की आवश्यकता है। अम्लता की ऊंची मात्रा, विशेष रूप से कोला जैसे पेयों में, जिनमें फॉस्फोरिक एसिड का उपयोग किया जाता है, तब उपयुक्त नहीं है, जब आमाशय में अम्लता की घटनाएं सामान्य हों, जैसे कि भारत में। मिठास देने वाले कृत्रिम कारकों की भी अधिकाधिक आलोचना हो रही है। भारत में साइक्लेमेटों की अनुमति नहीं है। जानवरों पर प्रयोग में प्रजनन क्रिया में खराबी के प्रमाण मिले हैं और संदेह है कि वे कैंसर को भी बढ़ाते हैं। सैकरीन भी, स्वयं कार्सिनोजेन न भी हो, किंतु संदेह है कि वह ऐसा सह-कार्सिनोजेन है जो अन्य पदार्थों को प्रभावित करता है। इसका यह प्रभाव तब पता चलता है, जब इसे पान में सुगंधित मसालों में उपयोग करके पान को लंबे समय तक गाल में दबाकर रखते हैं। फिर भी पिछली आधी शताब्दी से लाखों मधुमेह-रोगियों द्वारा इसका उपयोग दर्शाता है कि यह सुरक्षित हो सकता है, जबकि कुछ रोगी दशकों तक उपयोग करते रहे हैं। बादली रूप देने के लिए उपयोग किए जाने वाले ब्रोमिनेटेड वानस्पतिक तेलों को भी तब प्रतिबंधित (उदाहरण के लिए, इंगलैंड में) कर दिया गया, जब कि पता चला कि ब्रोमाइन मानव शरीर की वसा में जमा हो जाता है।

कोला का काष्ठ फल लगभग 3 सें.मी. के आकार का होता है और ब्राजील, वेस्टइंडीज और पश्चिमी अफ्रीका में उत्पन्न होने वाले एक बड़े वृक्ष का बीज है। यह पारंपरिक रूप से स्फूर्तिदायक के रूप में सूडानियों द्वारा वैसे ही चबाया जाता था, जैसे अन्यत्र पान के पत्ते और सुपारी या तंबाकू चबाते हैं। काष्ठ फल में लगभग 2.3 प्रतिशत कैफीन होता है, जिसका सत्व पानी या अल्कोहल के साथ निकालते हैं और इस सत्व का हल्के पेयों को स्वाद देने के लिए उपयोग करते हैं। ऐसे सत्व में अतिरिक्त कैफीन भी मिलाया जा सकता है। कोला पेय की एक बोतल में लगभग

40 मिलिग्राम कैफीन रहता है, जो कि एक कप चाय या एक कप चॉकलेट (कोको) में विद्यमान मात्रा के लगभग बराबर है। चाय और कॉफी के बारे में (अध्याय 6) और कोको पर (अध्याय 11) विचार करते हुए हमने देखा है कि मध्यम रूप से उद्दीपक इतनी मात्रा में कैफीन का उपभोग शायद ही कोई हानि पहुंचाता है। फिर भी, जहां तक बच्चों का संबंध है, किसी आहारी महत्व से रहित सनसनाहट भरे पेयों का उपभोग केवल उनका पेट भरता है और भूख को मार देता है और इसलिए वांछनीय नहीं है।

पादक पेय

समझा जाता है कि विख्यात डा. स्पूनर ने "मद्यसार हीन के प्राचुर्य" के बारे में टिप्पणी की है, फिर भी अनेक देशों और अनेक जलवायुओं में समृद्धि के हर स्तर पर मादक पेयों का उपयोग होता लगता है। यदि कुछ अंतर्रोधी मानसिक प्रक्रिया निषेधों को दबा दिया जाए, तो अल्कोहल के माध्यम से, उल्लास की एक हल्की मात्रा सामान्य स्वस्थता की भावना को शायद बढ़ा सकती है। दीर्घकाल तक जीवित रहने वाले अधिकांश समाज अल्कोहल के नियमित किंतु सामान्य मात्रा में उपभोक्ता पाए गए हैं।

अल्कोहल शरीर में जलता है और इसलिए पेय में उपस्थित मात्रा के अनुपात में कैलोरी प्रदान करता है। बीयर और ताड़ी दोनों ही प्रति 100 सीसी में लगभग 40 कैलोरी देती हैं, जो प्रति गिलास लगभग 100 कैलोरी पड़ती है। मदिरा (वाइन) में 100 कैलोरी होती हैं और क्योंकि अन्य पेयों की तुलना में यह बड़ी मात्रा में पी जाती है, जैसे कि यूरोप में, इसलिए कैलोरी ग्रहण में यह काफी योगदान करती है। व्हिस्की, ज़िन और ब्रेंडी प्रति 100 सीसी में लगभग 250 कैलोरी देती है। यह लगभग उतनी ही मात्रा है जो कि एक पेग कहलाती है, जिसे गिलास में डालकर पानी या सोडा मिलाकर पिया जाता है। इससे लगभग 80 कैलोरी मिलती हैं।

केवल बीयर या ताड़ी में कैलोरी के अतिरिक्त कुछ पोषक तत्व हैं। 'बी' समूह के दो विटामिन, रिबोफ्लेविन और नायसिन तो हैं किंतु थायसिन या एसॉर्बिक एसिड बिल्कुल नहीं है। बीयर का 250 सीसी गिलास वयस्क व्यक्ति की आवश्यकता के एक दशमांश की पूर्ति करता है, जबकि ताड़ी बीयर के भी एक-चौथाई की पूर्ति करती है।

खमीरीकृत भारतीय मदिरा

ताड़ी : ताड़ का पेड़ एक परिचित दृश्य है, जिसके ऊपर विशिष्ट पंखों के आकार के ऊपर उठे पत्तों का छत्र होता है। इसका रस बहुत अधिक मीठा होता है, जिसमें 12 प्रतिशत शक्कर रहती है। रस उन तीन सहपत्रों से प्राप्त करते हैं, जो फूलों

के गुच्छे को लपेटे रहते हैं। रस प्राप्त करने के लिए सुबह भोर में या देर शाम को इन सहपत्रों के नीचे के स्थानों पर किसी तेज धारदार चीज से गहरे चीरे लगाते हैं। चीरों के नीचे मिट्टी की हंडिया बांध देते हैं, जिसमें अगले दो दिनों में एक से दो लिटर के लगभग ताड़ी या नीरा एकत्र हो जाती है। हर पेड़ से साल में 9 महीने तक बार-बार ताड़ी प्राप्त कर सकते हैं। ताड़ी में विद्यमान शक्कर का, साथ में उपस्थित एंजाइमों के माध्यम से तत्काल खमीरीकरण आरंभ हो जाता है, किंतु हंडिया में भीतर की ओर चूना पोत देने से खमीरीकरण की क्रिया विलंबित की जा सकती है। ताड़ी में एक विशिष्ट और बहुत तेज गंध होती है, और मद्यसार या अल्कोहल का स्तर 4 से 10 प्रतिशत तक हो सकता है। तेज 'किक' पाने के लिए क्लोरल हाइड्रेट मिलाते हैं, अलबत्ता यह गैरकानूनी और हानिकर दोनों है।

अरक : यह आसवित ताड़ी है जिसका स्वाद और गंध खट्टा-सा और प्रभाव तेज नशीला होता है क्योंकि इसमें 70-80 प्रतिशत मद्यसार रहता है। कुछ अन्य प्रकार के अरक भी होते हैं, जैसे खमीरीकृत चावल, खमीरीकृत मोलसिस पर आधारित, या इन दोनों के साथ ताड़ी का मिश्रण।

फेनी : यह पीले-लाल काजू फलों के खमीरीकृत रस से आसवित उत्पाद है। इस फल में 11 प्रतिशत ग्लुकोस होता है। वास्को-डि-गामा का अनुसरण करके आए पुर्तगाली व्यापारी लगभग चार शताब्दी पहले इस पेड़ को ब्राजील से भारत लाए थे। संयोग है कि ये उत्साही व्यापारी ही मूंगफली भी इस देश में लेकर आए थे। फेनी में एक विशिष्ट फेनोलिक एसिड और स्वाद होता है और इसमें 40 प्रतिशत या इससे अधिक मद्यसार रहता है।

रम : रम का विकास जमैका और वेस्ट इंडीज में अन्य स्थानों पर गन्ने के रस या मोलासिस में खमीर उठाकर किया गया, जिसे फिर आसवित करके लकड़ी के पीपों में कम से कम दो वर्ष परिपक्व होने के लिए रखा जाता था। भारत में इस परिपक्वन के लिए टीक (सागौन) और साल की लकड़ी का उपयोग करते हैं। इसकी तेज गंध का कारण इथाइल एसिटेट जैसे इस्टरों और विभिन्न एल्डेहाइड की उपस्थिति है, जबकि तीखा स्वाद लकड़ी से आसवित टेनीनों से मिलता है। इसके रंग को गहरा भूरा बनाने के लिए कैरेमल या दग्ध-शर्करा के उपयोग की भारत में अनुमति है। रम और व्हिस्की दोनों को तैयार करने में परिपक्वन की लंबी अवधि को घटाने के लिए, जो कि पूंजी के बंध जाने के कारण महंगी पड़ती है, त्वरित विधियों का उपयोग किया जा रहा है। इनमें अवरक्त (इंफ्रारेड) या पराबैंगनी (अल्ट्रा वॉयलेट) विकिरण, या ऑक्सीजन अथवा ओजोन के साथ ऑक्सीकरण शामिल हैं।

पश्चिमी मूल की मद्य या शराबें

ऐतिहासिक रूप से पश्चिमी दुनिया में विकसित अनेक प्रकार के अल्कोहल युक्त पेय, विकसित देशों में अब स्थान पा गए हैं। मूल रूप से घर में, पारिवारिक संस्थानों, में या मठों में बनने वाले ये पेय आज पारंपरिक तकनीकी को आधुनिक निर्माण विधियों में अपनाकर विशाल परिमाण में बनाए जाते हैं।

अन्न आधारित उत्पाद

बीयर का इतिहास हर सभ्यता—बेबीलोन, मेसोपोटेमिया, मिस्र, चीन के पालनों में कम से कम 6000 साल पुराना है, कभी यह केवल खमीरीकृत बार्ली होती थी। चिकित्सकीय कारणों से इसमें हॉप वाइन के शंकुफलों को मिलाने का आरंभ नौवीं शताब्दी में हुआ। बीयर निर्माण की प्रक्रिया काफी जटिल है, जिसके हर चरण और हर विवरण की, अंतिम रूप से तैयार उत्पाद में एक भूमिका है। बार्ली अर्थात जौ को पहले तो ठंडे पानी में 2-3 दिनों तक भिगोकर रखते हैं। और फिर लगभग 10 दिनों तक अंकुरण के लिए फैला देते हैं। इसके बाद अंकुरित जौ को एक भट्ठे में गर्म हवा से सुखाते हैं। फिर गर्म पानी के साथ इसका निष्कर्षण करते हैं। (इस पानी का संयोजन भी महत्वपूर्ण है), जिसके बाद सत्व को उबालते हैं और दो घंटों में धीरे धीरे शंकुफल इसमें मिलाते हैं। ठंडा और स्थिर हो जाने के बाद शंकुफलों की परत से अनुप्राणित द्रव को निथार लेते हैं और फिर उसमें ब्रूअर की यीस्ट के रूप में एंजाइमों को मिलाकर 7 से 14 दिन तक खमीर उठने देते हैं। कण नीचे बैठ जाते हैं और साफ बीयर को 6 सप्ताह तक, ठंडे तहखाने में अंतिम रूप से स्थिर होकर साफ होने के लिए रख देते हैं।

इसके बाद उसे कार्बनित करके फिर छान लेते हैं या अपकेंद्रित करते हैं जिससे बोतल में बुदबुदे प्राप्त किए जा सकें। तीखा स्वाद जो बीयर के आकर्षण का एक अंग है, शंकुफलों से मिली रालों और राल एसिडों के कारण आता है। घटिया स्वाद अवांछित प्रकार के खमीरीकरण से आता है, जिससे हाइड्रोजन सल्फाइड, एसेटिक एसिड, लैक्टिक एसिड इत्यादि उत्पन्न होते हैं। बीयर की विशेषता है बोतल उंड़ेलते हुए मिलने वाले झाग के स्रोत के रूप में सतह पर पहचाने गए सक्रिय शक्कर-प्रोटीन जो अंकुरण के दौरान उत्पन्न होते हैं। विश्वास किया जाता है कि यही सतह के तत्व कार्बन डाइऑक्साइड के उन बुलबुलों की रक्षा भी करते हैं, जो धीरे धीरे बीयर के पात्र में उठते हैं। संभवतया एल्ब्यूमिन और शंकुफलों की रालें झाग पैदा करने और उन्हें बनाए रखने में भी सहायता करती हैं।

लागर या पिल्सनर 4 से 6 प्रतिशत अल्कोहल युक्त (हल्की) बीयर है, जो सतह के बजाय तल में खमीरीकरण से बनती है और खमीरीकरण के बाद भंडारित (जर्मन भाषा में लागर का अर्थ भंडार है) करके परिपक्व की जाती है।

एल इंग्लैंड में लोकप्रिय है। इसमें सतह पर खमीरीकरण के द्वारा अल्कोहल की उच्चतर मात्रा होती है और शंकुफलों के अधिक मात्रा में उपयोग से कड़वा स्वाद आता है।

स्टाउट और अधिक कड़वी और बहुत गहरे रंग की होती है।

व्हिस्की भी इसी प्रकार अन्न से, सामान्यतया जौ से बनाते हैं। किंतु शंकुफलों का उपयोग नहीं करते। अन्न को पहले अंकुरित करके भट्टी में सुखा लेते हैं। इस भट्टी में लकड़ी या आंशिक रूप से सड़ी हुई वानस्पतिक सामग्री का उपयोग करते हैं, जो व्हिस्की के माल्ट और फिर व्हिस्की को भी अपनी गंध दे देते हैं। भट्टी में सुखाए गए माल्ट का फिर पानी के साथ सत्व निकाल लेते हैं जिससे मिलने वाले अनुप्राणित द्रव में ज्यों का त्यों या फिर छानकर खमीर उठाते हैं। इस प्रकार बना अल्कोहल, जिसके साथ साथ अन्य पदार्थ भी उत्पन्न हो जाते हैं, दो या तीन बार आसवन के द्वारा सांद्रित करते हैं। फिर इस आसव को कॉर्क से बंद लकड़ी के पीपों में धीमे धीमे परिपक्व होने के लिए चार से छह साल (कानूनी अनिवार्यता तीन वर्ष है, किंतु 12 वर्ष की अवधि तक व्यवहार में लाते हैं) रखते हैं। ऐसे परिपक्वन से अल्प मात्राओं में कई अन्य चीजें विकसित हो जाती हैं (इस्टर, एसिड, अल्कोहल, एल्डेहाइड और टैनीन), जो सब मिलकर बढ़िया व्हिस्की को उसकी मृदुता और आकर्षण देते हैं। इसके साथ ही द्रव का 20 से 25 प्रतिशत वाष्पित होकर उड़ सकता है। एक पारंपरिक विधि ओक के उन पीपों में परिपक्व करने की है जिनमें पहले शैरी रखी गई हो। कभी कभी धूमायित स्वाद के लिए जले हुए लकड़ी के छिलके मिलाए जाते हैं। **स्कॉच व्हिस्की** छने हुए अनुप्राणित द्रव से बनती है। भारत में माल्ट व्हिस्की की छाप के उत्पाद को केवल धान्य से ही बनाना पड़ता है। सम्मिश्रित व्हिस्की में कम से कम 10 प्रतिशत माल्ट व्हिस्की होनी चाहिए। शेष चुकंदर, मोलासेस या अन्य शक्कर युक्त सामग्री से होनी चाहिए।

राइ कनाडा में लोकप्रिय है। यह ऐसी व्हिस्की है जो राई धान्य (पशुओं के चारे में इसका उपयोग करते हैं) से बनाई जाती है और बिना उसे अनुप्राणित द्रव से बनाते हैं।

बोरबॉन बार्ली, मकई या गेहूं से बनती है। इन सभी आसवित उत्पादों में 40-50 प्रतिशत अल्कोहल रहता है।

वोदका बार्ली, राई, मकई या आलू से बना एक आसवित उत्पाद है। खमीरीकरण के दौरान उत्पन्न सजातीय पदार्थ आसवन के समय परिशोधन द्वारा निकाल दिए जाते हैं, जिससे बोदका वास्तव में 40 से 60 प्रतिशत अल्कोहल युक्त एक तनूकृत अल्कोहल है।

जिन आसवित अल्कोहल का सम्मिश्रण है, जिसमें विभिन्न स्वादों के प्राकृतिक अनिवार्य तेल अल्प मात्राओं में मिलाते हैं। अनेक ''मध्विराएं'' (हल्की मीठी शराबें) परिशोधित

अल्कोहल के साथ शक्कर, सुगंधित स्वादों और रंगों का सम्मिश्रण हैं, जो कभी कभी अल्कोहल के आसवन के पूर्व भी मिलाते हैं। लिक्योर (मध्विराएं) इत्र जैसी विशेषताओं से युक्त होती है, जबकि इसी प्रकार से बनाए गए **कार्डियल** में मसालों का प्रभाव होता है।

फल आधारित उत्पाद

वाइन (मदिरा) ऐसे उत्पादों के लिए एक सामान्य शब्द है जिसमें लगभग 10-15 प्रतिशत अल्कोहल रहता है जो अनेक शक्कर युक्त पदार्थों, विशेष रूप से फलों के खमीरीकरण से बनता है। अंगूर इनमें सबसे महत्वपूर्ण है, किंतु अन्य फलों (केला, नारंगी, सेब) का भी उपयोग किया जा सकता है। इसी प्रकार मांड से समृद्ध चावल जैसे पदार्थों का भी उपयोग कर सकते हैं जैसे कि जापान में चावल से 'साके' प्राप्त करते हैं। सर्वाधिक सामान्य रूप से उपयोग किए जाने वाले अंगूर **वाइटिस विनिफेरा** प्रकार के हैं जिनकी, कहा जाता है कि 5000 प्रजातियां हैं। उनमें छिलके पर ही ''वाइन यीस्ट'' सैकरोमिसेस एलिप्सोइडियस'' रहता है, इसलिए किसी अतिरिक्त एंजाइम को मिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अंगूरों में बहुत थोड़ी शक्कर (सुकरोस) होती है या बिल्कुल नहीं होती, किंतु 10-10 प्रतिशत डेक्स्ट्रोस, ग्लुकोस का एक रूप, और फ्रुक्टोस और लगभग आधा आधा प्रतिशत टार्टरिक और मैलिक एसिड होते हैं। दोनों शर्कराओं के साथ कम मात्रा में टैनीन अवश्य होना चाहिए, ओर बहुत अच्छी मदिराओं में खमीरीकरण के पूर्व गन्ने की शक्कर कभी भी मिलाई नहीं जाती। भारत में थामसन सीडलैस और ब्यूटी एंड ब्लैक मस्कट अंगूरों से अच्छी मदिरा मिलती है, किंतु अनाबे शाही और 'बंगलौर ब्ल्यू' कम उपयुक्त हैं। गहरे रंग के अंगूरों से लाल और सफेद दोनों प्रकार की मदिराएं बन सकती हैं किंतु सफेद अंगूरों से केवल सफेद मदिरा ही बनती है। मेज पर रखी जाने वाली मदिराएं 'ड्राई' (शुष्क-कम मीठी) होनी चाहिए जिसका तात्पर्य है कि उनमें एसिड की मात्रा ऊंची और अवशिष्ट शक्कर की मात्रा कम होनी चाहिए। डिजर्ट (भोजन का समापन) मदिरा 'स्वीटी' मीठी होती हैं और इसके लिए कभी कभी इसमें अंगूर की शर्करा (गन्ने की शक्कर कभी नहीं) मिलाते हैं। मामूली मदिराएं बहुत जल्दी परिपक्व होती हैं और एक साल के बाद ही बासी हो जाती हैं, जबकि उच्च स्तरीय मदिराएं बहुत धीमे परिपक्व होती हैं और अनेक वर्षों के उपरांत भी उन्नत होती रहती हैं। मदिरा में विकृति का कारण एसेटिक एसिड जीवाणु की वृद्धि है जो उसे खट्टा या सिरके जैसा स्वाद देती है, या फिर लैक्टिक एसिड जीवाणु की वृद्धि है जो तलछट को बढ़ाती और अरुचिकर स्वाद देती है। अंगूर की प्रजाति, वह भूमि जिस पर उसे उपजाया गया, उपजाए जाने वाले विशेष वर्ष की जलवायु, तापमान, समय और खमीरीकरण की विधि, और इस प्रकार के अनेक तत्व इसमें शामिल हैं। इसलिए यह आश्चर्यजनक

नहीं है कि लगभग हर देश में, जहां तक यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी विशिष्ट मदिराएं विकसित हुईं। अंगूर की बढ़िया मदिराओं का वर्गीकरण कुशल मदिरा-परीक्षकों द्वारा किया जाता है।

उदाहरण के लिए 'बर्गडी' बनाने में कैल्शियम समृद्ध भूमि पर उपजाए गए अंगूरों का उपयोग करते हैं। छिलका रहित 'चार्डनने' अंगूर सफेद मदिरा के लिए और 'पिनोत नाइर' अंगूर छिलके सहित लाल मदिरा के लिए उपयोग करते हैं। यह दिन के सर्वाधिक ठंडे समय में चुने जाते हैं, बहुत धीरे-धीरे 30^0 से. पर खमीर उठाते हैं और फिर छोटे पीपों में ठंडे तहख़ानों में दो साल तक परिपक्व होने देते हैं। 'शैम्पेन', जो कि फ्रांस के एक जिले का नाम है, इन्हीं दो प्रकार के अंगूरों का सम्मिश्रण है, जिससे अल्कोहल की मात्रा और फल के स्वाद में संतुलन मिलता है। साबुत फलों को छिलका उतारे बिना दबाते हैं, ठंडे स्थान में खमीरीकरण करते हैं और मदिरा को छान लेते हैं। इसे फिर बोतलों में 13^0 से. पर अनेक वर्षो तक दुबारा खमीरीकरण दिया जाता है जिससे उसमें बुदबुदे (दबाव के अंतर्गत कार्बन डाइऑक्साइड के बनने के कारण) 10.5 से 11 प्रतिशत अल्कोहल की ऊंची मात्रा, खट्टापन और कोमलता विकसित होती है।

शैरी को अपना नाम स्पेन के शहर जेरेज से मिला है और इसकी विशिष्ट मीठी, फल जैसी सुगंध और गहरा रंग अल्कोहल की ऊंची मात्रा, अवशिष्ट शक्कर की कम मात्रा और 4 से 6 महीनों तक 49^0 से. जैसे वास्तविक ऊंचे तापमान पर 'बेकिंग' क्रिया से मिलता है। वास्तव में कुछ स्पेनी शैरी सतही यीस्ट की भारी चादर के नीचे दो वर्ष तक परिपक्व होने के लिए छोड़ देते हैं। ''पोर्ट'' को उसका नाम पुर्तगाल के शहर ओपोर्टो से मिला है। इसका लाल रंग अंगूर के छिलकों से मिलता है, जिन्हें खमीरीकरण के दौरान बार बार उलटा-पलटा या नंगे पांवों से कुचला जाता है। जब मदिरा निकल आती है, तो रंग निकालने के लिए छिलकों को फिर से दबाते हैं। शैरी और पोर्ट को 4 से 8 साल तक ओक (बांज) के पीपों में धीरे धीरे परिपक्व करते हैं। ''मस्काटेल'' इसी नाम के अंगूरों से बनती है, जिनमें शक्कर की मात्रा भी अधिक होती है और विशिष्ट स्वाद भी होता है। किशमिश बनाने के लिए भी इन अंगूरों को पसंद किया जाता है। ''वरमाउथ'' मीठी या शुष्क हो सकती है और यह ऐसी मदिरा है जो उद्‌भिजों या मसालों से युक्त होती है। ''साइडर'' एक इंग्लिश उत्पाद है जो साइडर सेबों के खमीरीकरण से बनती है जिसे शक्कर से मीठा करके कभी कभी कार्बन युक्त भी करते हैं।

ब्रांडी आसवित मदिरा है और यह मदिरा अनेक फलों, अंगूर, सेब, चैरी या काजू से भी बनती है। प्रायः जो मदिरा अल्कोहल की शक्ति और स्वाद में औसत से कम होती है, उसे आसवित करने और फिर परिपक्व करने पर बहुत बढ़िया ब्रांडी मिलती है, किंतु इस प्रक्रिया में वर्षो बल्कि दशकों का भी समय लग सकता है।

कॉगनैक (कोन्याक) इसी नाम के फ्रांसीसी शहर के आसपास फॉस्फेट समृद्ध भूमि पर उपजाए गए अंगूरों से बनी आसवित सफेद मदिरा है।

आधुनिक मदिरा निर्माण

लाल मदिराएं कारखानों में कुचले हुए नीले अंगूरों में खमीर उठाकर (जिसमें थोड़ा सल्फर डाइऑक्साइड, पोटेशियम मेटाबाइसल्फेट या पोटेशियम बाइसल्फेट मिलाते हैं जिससे फफूंद वृद्धि रुकती है) बनाते हैं। इसमें 2 से 3 प्रतिशत मिश्रित खमीरकारक जीवाणु-समूह या इससे भी बेहतर शुद्ध सैकरोमायसेस यीस्ट प्रवर्तक से खमीर उठाने का काम लेते हैं। तीन या चार दिन बाद सारी सामग्री को पंप द्वारा कूंडों में पहुंचाते हैं जहां खमीरीकरण की क्रिया छह सप्ताह तक चलती रहती है। अब ऊपर के द्रव को तलछट से अलग निकाल लेते हैं और इसे दूसरे कुंडों में भरकर मजबूती से ढक्कन बंद कर देते हैं। इसे दो से तीन वर्ष तक परिपक्व होने के लिए रखा रहने देते हैं, किंतु हर साल के अंत पर इसे छान लेते हैं। अंतिम रूप से 'परिष्करण' देने के लिए कागज से छानते हैं। मदिरा को बोतलों में भरकर, बाजार में भेजने के पूर्व 6 महीने तक रखा रहने देते हैं। सफेद मदिरा कूंडों या पीपों में मुंह तक भरके अपेक्षाकृत ठंडे तापमान पर खमीरीकृत करते हैं। पहली बार छानने तक इसका हवा से सीमित संपर्क होने देते हैं। इसके बाद भी, एसेटिक एसिड जीवाणु की वृद्धि द्वारा अवांछित अम्लता को रोकने के लिए क्रिया को यथासंभव बंद रखा जाता है।

मदिरा और लिक्योर (मीठी शराब) का घर में निर्माण

अल्कोहल युक्त पेयों को घर में बनाने का आनंद उठाने के लिए तालिका 12.1 में कुछ विधियां जा रही हैं।

तालिका 12.1

मदिरा और मीठी शराब की विधियां

1. अंगूर की मदिरा

अक्षत अंगूर 1 + 10 कि. ग्रा.
"सैकरोमायसेस एलिप्सोइडियस"
शुद्ध कल्चर
शक्कर 2 + 1 कि. ग्रा.
पोटेशियम मेटाबाइसल्फेट
एक चाय का चम्मच
साइट्रिक एसिड 1 बड़ा चम्मच,

(क) एक सप्ताह पूर्व एक प्रवर्तक तैयार कीजिए। एक कि.ग्रा. अंगूरों को कुचल कर 500 सी सी, रस प्राप्त कीजिए। एक बड़ा चम्मच शक्कर मिलाइए। शंकु के आकार के कांच के एक फलास्क में रख कॉटन वूल

शीशे का संकीर्ण ग्रीवा युक्त शंकु के आकार का फलास्क, प्रेशर कुकर प्लास्टिक की बाल्टी, 20 लिटर शीशे या पॉलिथिलिन की कारबोइ (चौखटे द्वारा सुरक्षित बड़ी बोतल) जिसकी ग्रीवा संकीर्ण हो

पानी से आधा भरा एअर लॉक (शीशे का) डाट के लिए कॉटन वूल (रूई) डाट लगाने हेतु
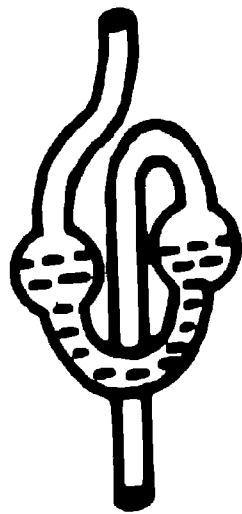
का डाट लगाकर एक प्रेशर कुकर में 10 मिनट तक जीवाणुरहित कीजिए। ठंडा कीजिए। यीस्ट पाउडर मिलाइए, डाट लगाइए और खमीर उठाने के लिए अलग रख दीजिए।

(ख) दस किलोग्राम असंबद्ध अंगूरों को प्लास्टिक की बालटी में गर्म पानी से धो लीजिए। रस निकालने वाली मशीन से या हाथ से रस निकाल लीजिए।

(ग) रस को कारबोइ में डालिए इसमें (क) तीन लिटर उबलते पानी में 2 किलोग्राम शक्कर का घोल ठंडा करके मिला दीजिए (ख) एक छोटा चम्मच पोटेशियम मेटा बाइसल्फाइड मिला दीजिए और (ग) एक बड़ा चम्मच साइट्रिक एसिड भी मिला दीजिए। अच्छी तरह से मिलाकर डाट लगा दीजिए।

(घ) छह घंटे बाद एक सप्ताह पूर्व तैयार किया गया प्रवर्तक मिलाइए। अच्छी तरह मिला लीजिए और सक्रिय खमीरीकरण के लिए 10 दिनों तक 25 से 30^0 से. पर अलग रख दीजिए।

(च) बीजों और छिलकों से अलग करने के लिए एक प्लास्टिक की बालटी में मदिरा को निथार लीजिए। इसके बाद मदिरा को फिर से कारबोइ में डाल दीजिए। ठंडे घोल के रूप में एक कि.ग्रा. शक्कर मिलाइए और एअर लॉक लगा दीजिए। अगले 15 दिन तक दूसरा खमीरीकरण होने के लिए छोड़ दीजिए।

(छ) थमे हुए ठोस से मदिरा फिर निथार लीजिए। बिल्कुल साफ मदिरा पाने

और मृत यीस्ट कोषों से अवांछित स्वाद आने से रोकने के लिए उपयुक्त अंतरालों से निथारने की क्रिया दुहराइए।

(ज) जब 3 से 4 महीने बाद खमीरीकरण रुक चुका हो, मदिरा को निर्जीवाणुकृत बोतलों में भर कर कॉर्क से बंद कर दीजिए। उबलते पानी में जीवाणुरहित कीजिए और पैराफीन वैक्स से सील कर दीजिए। इस प्रकार 6 बोतलें बनेंगी।

2. संतरे की मदिरा

संतरे	12
किशमिश	250 ग्रा.
शक्कर	750 ग्रा.
यीस्ट	1 बड़ा चम्मच
ब्रांडी	6 बड़े चम्मच

(क) संतरे छीलकर, फांकों से गूदा निकालकर मैश कर लीजिए। किसी जार में किशमिश और शक्कर के साथ रख दीजिए और 8 कप उबलता पानी डालिए। ठंडा करके यीस्ट मिला दीजिए। किसी गर्म स्थान में सक्रिय खमीरीकरण के लिए 3 दिन तक रखिए।

(ख) एक संतरे का छिलका लेकर उसे हल्का भूरा होने तक ओवन में भून लीजिए। उसके ऊपर आधा कप उबलता पानी डाल दीजिए और ठंडा होने दीजिए। इसे जार में डाल दीजिए। अच्छे से मिला दीजिए। जार को मलमल के कपड़े से ढंक दीजिए। किसी ठंडे स्थान में रखकर 3 सप्ताह तक दुबारा खमीर उठने दीजिए।

(ग) बोतलों (लगभग 6) में डाल लीजिए। हर बोतल में एक बड़ा चम्मच ब्रैंडी मिला दीजिए। निर्जीवाणुकृत कॉर्क से बंद करके 2 महीने तक परिपक्व होने दीजिए।

3. मसालेदार जिंजर

हरी अदरक	1/2 कि.ग्रा.
लौंग	एक बड़ा चम्मच
साबुत इलायचियां	24
डंडियों सहित चमकीली लाल मिर्चें	12
शक्कर	एक कि.ग्रा.
टार्टरिक एसिड	1/2 छोटा चम्मच
ब्रांडी या रम	4 बड़े चम्मच

(क) अदरक को छील लीजिए, छोटे छोटे पतले गोल टुकड़े काट लीजिए।

(ख) अदरक के टुकड़े, लौंग, इलायचियां, मिर्चें और शक्कर को एक बड़े साफ बर्तन में डाल दीजिए। एक लिटर पानी मिला दीजिए और उबाल लीजिए। आंच कम करके एक घंटे तक, जब तक कि रंग विकसित न हो जाए, सीझने दीजिए। ठंडा कर लीजिए।

(ग) टार्टरिक एसिड मिलाइए। फलालेन से रात भर रिसने दीजिए। बोतलों में भर दीजिए। हर बोतल में एक बड़ा चम्मच ब्रांडी या रम ऊपर से डाल दीजिए। समय के साथ परिपक्व होती है।

4. कॉफी रम लिक्योर

कॉफी का आसव	150 मि.लि.
शक्कर	250 ग्रा.
चुटकी भर नमक	
रम 100°प्रूफ	400 मि.लि.
कॉफी का एसेंस	30 मि.लि.
काफी रम फ्लेवर	2 बड़े चम्मच

(क) 150 मि.लि. कड़क कॉफी का आसव तैयार कीजिए। शक्कर मिलाइए।

(ख) कॉफी का एसेंस मिला लीजिए। चुटकी भर नमक और 400 मि.लि. रम मिला दीजिए जिससे 55° प्रूफ लिक्योर मिल सके।

(ग) कॉफी रम फ्लेवर डालकर मिला दीजिए।

फिर भी कुछ बिंदुओं पर जोर देना आवश्यक है। पहली विधि के लिए साबुत, पके हुए अंगूर उपयोग करने चाहिए, फिर भले ही वे सफेद हों, या नीले। सूक्ष्म जैविक प्रदूषण और सिरके की मक्खियों को रोकने के लिए हर चरण पर अत्यंत सावधानीपूर्वक सफाई अनिवार्य है। एक अच्छा खमीरीकरण कल्चर सैकरोमाइसेस एलिप्सोडियम यीस्ट किसी प्रयोगशाला, शराब के कारखाने या खाद्य की दुकान से प्राप्त करना चाहिए। किसी भी कारण से ब्रेड बनाने वाले से प्राप्त बेकर के यीस्ट का उपयोग नहीं करना चाहिए। रस के दूसरे खमीरीकरण के दौरान पात्र पूरी तरह

भरा रहना चाहिए और ऊपर एक छेद हुए नए कॉर्क से एअर लॉक करना चाहिए, जिससे गैस भी निकल सके और अवांछित सूक्ष्म जीव भी प्रवेश न कर सकें। मुख्य खमीरीकरण पूरा हो जाने और मदिरा को बोतलों में परिपक्व कर लेने के बाद, उसमें कई महीनों तक यीस्ट जमा होता रहेगा। यदि मदिरा को यीस्ट पर बहुत दिनों तक रहने दिया गया, तो एक खराब स्वाद विकसित हो सकता है। इसलिए समय समय पर निथारना जरूरी है। प्रथम दो विधियों में, अच्छी सुगंध पाने के लिए, द्वितीय खमीरीकरण के लिए चुना गया समय और उपयोग किया जाने वाला कमरा यथासंभव ठंडा होना चाहिए, किंतु आरंभिक सक्रिय खमीरीकरण घर के किसी गर्म कमरे में करना बेहतर है।

अंतिम दोनों विधियों में, मसालेदार जिंजर मदिरा और कॉफी लिक्योर के लिए अल्कोहल ब्रांडी या रम से मिलता है और उनका स्वाद कृत्रिम होता है।

अनुक्रमणिका